ज्ञान चेतना वर्ष

पढमं णाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अण्णाणी किं काही किं वा णाही सेयपावगं ।।

सबसे पहला स्थान ज्ञान का है। और उसके बाद दया अर्थात् क्रिया है। ज्ञानपूर्वक क्रिया करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अज्ञानी जिसे साध्य साधन का भी ज्ञान नही हैं, वह क्या कर सकता है ? वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है।

इस विषय को लेकर हुक्म संघ के नवम् पट्टधर १००८ आचार्य श्री रामलालजी म. सा. ने चर्तुविध संघ के उपर महती कृपा करके पिछले सात वर्ष से ज्ञान के उपर विशेष बल देते हुए अनेक आयामो के माध्यम से जो श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने चार तीर्थ बताए है, साधु साध्वी, श्रावक व श्राविका वर्ग इन सभी को ज्ञान वर्धन मे लगां दिया है। आचार्य भगवंत चाहते है की मेरा श्रावक वर्ग ज्ञानवान बनें, क्रियावान बने व अपना वर्तमान जीवन मोक्ष गामी बनावे।

इस वर्ष को तो आचार्य श्री ने "ज्ञान चेतना वर्ष" घोषित करके जो चार आयाम दिए है वास्तव में एक श्रावक को इतना ज्ञान आवश्यक है। हम शासनिष्ट के उपकारो को भूल नही सकते है। आचार्य श्री के आशीर्वाद से मुझे भी चारो आयाम लगभग पूर्ण करने का सामर्थ्य मिला हैं। आप सभी पाटक बन्धुओ से यही निवेदन करना चाहता हूं कि अ. भा. सा. समता युवा संघ ने आचार्य श्री रामेश के आव्हान को घर-घर तक पहुचाने का प्रयास किया है, और चारो आयामो को एक ही पुस्तक में संकलन करके इस पुस्तक का प्रकाशन कराया है। आप इसे कंठस्थ कर अपना जीवन ज्ञानमय और क्रियामय बनाकर कल्याण मार्ग की और प्रशस्त करे।

शुभ मंगल।

अशोक चौपड़ - (प्रतापगढ)
अध्यक्ष
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन समता युवा संघ
(प्रधान कार्यालय - रतलाम)

पुस्तक का नाम	:	ज्ञान चेतना के चार आयाम
मूल्य	:	रुपये 10 /- (अर्ध मूल्य)
संकलन कर्ता	:	सम्पलराज रांका - मुंबई
संस्करण	:	प्रथम आवृत्ती : 3000, जून 2006 द्वितीय आवृत्ती : 1500, जौलाई 2006 तृतीय आवृत्ती : 2000, अगस्त 2006
प्रकाशक एवं पुस्तक प्राप्ती स्थान	:	(1) श्री अ. भा साधुमार्गी जैन समता युवा संघ समता परिसर, हाथीराम दरवाजा, रतलाम (म. प्र) - 457 001 फोन : (0741) 2241706 (2) छाऊदेवी दुल्हराज रांका चॅरिटेबल ट्रस्ट सी-21, भारत नगर, ग्रान्ट रोड (पूर्व), मुंबई - 400 007. फोन : (022) 23074892, 23079876
मुद्रक	:	माऊली प्रिन्टर्स एण्ड आर्टस्, भायखला, मुंबई

आचार्य श्री रामेश का है फरमान।
हर गृहस्थ बन जाये क्रियावान ॥

आचार्य श्री रामेश के सपनो को पूरा करे।
9 तत्व के ज्ञाता बने, 12 व्रत धारक बने ॥

प्रकाशकीय

निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के संरक्षण में, आधुनिक युग में आचार्य १००८ श्री राम लाल जी म. सा. का विशेष योगदान है।आचार वृद्धि के प्रति आप सतत जागरुक हैं। निर्मल साधना के आप प्रतिक है। इसी संदर्भ मे ज्ञान चेतना के चार आयाम का संकलन किया गया है जिसके अन्तर्गत श्रावक श्राविकाओं के लिए समुचित जानकारी हेतु, शास्त्रीय दृष्टीकोण को मध्यनजर रखते हुए पूर्णतया सावधानी के साथ जैन दर्शन के आगमिक घरातल पर सम्पादन किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक को आचार्य भगवान व सभी सन्त महापुरुषों एवम् महासतियाँ जी म. सा. का आशिर्वाद प्राप्त हो तथा आचार्य भगवान द्वारा २००५-०६ के ज्ञान चेतना वर्ष के उपलक्ष मे यह पुस्तक कारगर सिद्ध हो, एवम् उनके संघ आवाहन,"अहो श्रावक श्राविकाओ व्रत्तधारी बनो, तत्वज्ञाता बनो" का संदेश जन-जन तक पहुँचे।

ज्ञान चेतना के चार आयाम पुस्तक का पूर्णतया ध्यान रखते हुए संकलन किया गया है, परन्तु फिर भी कोई त्रुटी एवं अशुद्धी के लिए क्षमा चाहते हैं।

समता युवा संघ (मुंबई)

हेमंत सिंगी
सुन्दरलाल बोथरा
विरेन्द्र अभाणी
शैकेन्द्र छाजेड़
महेन्द्र चोरड़िया

अ. भा. सा. जैन समता युवा संघ (रतलाम)

अशोक चिपड़
अध्यक्ष

विनोद मेहता
महामंत्री

आचार्य श्री नानेश

एक परिचय

१) आचार्य श्री नानेश का जन्म वि. स. १९७७ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया को दांता गॉव (राजस्थान) मे हुआ। आपश्री की माताजी श्रीमती श्रृंगारबाई पोखरना एवं पिता श्रीमान मोडीलालजी पोखरना थे। आपकी दीक्षा विक्रम सम्वत् १९९६ को कपासनमे हुई। आचार्य पद वि.स. २०१९ माघ कृष्णा द्वितीया को उदयपुर में प्राप्त हुआ।

२) लगभग ६० वर्ष तक संयम साधना की कठोर मर्यादाओ में रहकर मुक्ति पथ पर कदम बढाया।

३) लगभग ३८ वर्षो तक आचार्य पद पर आसीन होकर हजारो कि.मी. की पदयात्रा करके जनसाधारण को अपने मधुर, प्रेरक एवं मर्मस्पर्शी उपदेशो से लाभान्वित किया।

४) लगभग एक लाख से अधिक बलाई जाति के व्यक्तियो को व्यसन मुक्त बनाकर मानवीय गुणो में सम्पन्न किया तथा उन्हे धर्मपाल संज्ञा प्रदान की।

५) तनावयुक्त जीवन से मुक्ति पाने एवं आत्म शान्ति के लिए समीक्षण ध्यान, तथा विश्व शान्ति के लिए समता दर्शन का प्रवर्तन किया।

६) लगभग ३५० भव्य आत्माओ को प्रवर्जित कर आगार से अणगार धर्म मे प्रवेश दिया। आपके सानिध्य मे अनेकानेक भव्य आत्माओ ने श्रावक धर्म स्वीकार किया।

७) आचार्य श्री का संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था।

८) आचार्य श्री की प्रसिद्ध कृतियो में समता दर्शन और व्यवहार, समीक्षण धारा, गहरी पर्त के हस्ताक्षर, क्रोध समीक्षण, मान समीक्षण, माया समीक्षण, लोभ समीक्षण, ऐसे जीए, जिण धम्मो आदि प्रमुख हैं।

९) कर्म प्रकृति, भगवती सूत्र, आचारांग सूत्र, अन्तगडदशांग सूत्र, कल्प सूत्र आदि शास्त्रों का अनुवाद कर आगम सम्मत हृदयस्पर्शी अभिनव विवेचना प्रस्तुत की।

१०) आचार्य श्री नानेश का संलेखना संथारा पूर्वक महाप्रयाण वि. सं. २०५६ कार्तिक कृष्णा तृतीया (२७ अक्टूबर, १९९९ बुधवार) को उदयपुर (राज) मे हुआ।

चाहे जो मजबूरी हो - सामायिक स्वाध्याय जरुरी हो।

आचार्य श्री रामेश

१) आचार्य श्री रामेश का जन्म थली प्रान्त के देशनोक ग्राम (राज.) मे चैत्र शुक्ला चतुर्दशी वि. सं.२००९ मे हुआ। आपकी माताजी धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती गवराबाईजी थी। आप श्री के पिता धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्रीमान नेमचन्दजी भूरा थे।

२) अनाथी मुनि की तरह दृढ़ संकल्प के साथ माघ शुक्ला १२ सन् १९७४ देशनोक मे समीक्षण ध्यान योगी, समता विभूति श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री नानेश से प्रवज्या अंगीकार की।

३) चित्तौडगढ मे आश्विन शुक्ला द्वितीया सन् १९९० को आचार्य श्री नानेश द्वारा "मुनिप्रवर" की उपाधि से विभूषित किया गया।

४) बीकानेर मे फाल्गुन शुक्ला तृतीया सन् १९९२ को आचार्य श्री नानेश ने उत्कृष्ट मुनिचर्या, स्व पर अनुशासन की विशिष्ट क्षमता, सेवा गुण सम्पन्नता बहुज्ञता, धीरादत्त चरित्रण आदि आचार्यत्व के विशिष्ट गुणों से सम्पन्न मुनि प्रवर श्री रामलाल जी म सा को हुक्म संघ के नवम् पट्टधर के रुप मे "युवाचार्य" पद प्रदान किया।

५) अद्भूत व्यक्तित्व के धनी, कठोर संयम के पक्षधर, संयम के प्रति सजग, ज्ञानार्जन के प्रति विशिष्ट रुझान रखने वाले युवाचार्य श्री रामेश उदयपुर मे कार्तिक कृष्णा तृतिया वि. सं.२०५६, २७ अक्टूबर १९९९ को "आचार्य पद" पर विराजित हुए। श्री संघ का कुशल नेतृत्व करते हुए अभी तक लगभग १५० आत्माओ को आपने प्रवर्जित किया हैं।

६) चित्तौडगढ जिले के बावरी समाज के लोगो को नियंत्रित करने में प्रशासन को जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। ऐसे अराजग गतिविधियों मे संलग्न बाबरी समाज को प्रतिबोधित कर व्यसन मुक्त बनाकर "सीरीवाल समाज" की संज्ञा प्रदान की।

७) व्यसन मुक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत अभी तक लगभग १,००,००० लोगो को व्यसन मुक्त बनाया है।

८) आपश्री को प्रत्युत्पन मति एवं गूढ आगम सम्मत ज्ञान हेतु सन् १९९० मे "परमागम रहस्य ज्ञाता" की उपाधि से विभूषित किया गया।

९) आप श्री का हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं तथा जैन आगम के साथ ही जैनेतर साहित्य एवं ज्योतिष विज्ञान पर भी विशेष अधिकार है।

१०) लगभग २९ वर्षो से संयम की कठोर मर्यादाओ के साथ संयम पथ पर निरंतर अग्रसर।

अनुक्रम

प्रथम आयाम

(१) सामायिक सूत्र अर्थ सहित

(1) नमस्कार महामंत्र

णमो अरिहंताणं ।
णमो सिद्धाणं ।
णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं ।
णमो लोए सव्वसाहूणं ।
एसो पंच णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।।1।।

(भगवती सूत्र मंगलाचरण) (कल्पसूत्र मंगलाचरण)

मूल शब्द		अर्थ
अरिहंताणं	–	अरिहन्तो को
णमो	–	नमस्कार हो
सिद्धाणं	–	सिद्ध भगवान को
णमो	–	नमस्कार हो
आयरियाणं	–	आचार्य महाराज को
णमो	–	नमस्कार हो
उवज्झायाणं	–	उपाध्याय महाराज को
णमो	–	नमस्कार हो
लोए	–	लोक मे (अढाई व्दिप मे वर्तमान)
सव्वसाहूणं	–	सभी साधु महाराज को
णमो	–	नमस्कार हो
पंचणमुक्कारो	–	पच नमस्कार (पाच परमेष्ठियो को किया हुआ नमस्कार)
सव्वपावप्पणासणो	–	सब पापो को नाश करने वाला है
च	-	और
सव्वेसि	-	सब
मगलाणं	-	मगलो मे
पढम	-	प्रथम (प्रधान)

मंगलं	-	मंगल
हवइ	-	है

भावार्थ – श्री अरिहन्त भगवान, श्री सिद्ध भगवान, श्री आचार्य महाराज, श्री उपाध्याय महाराज और अढाई व्दीप में वर्तमान सभी साधु मुनिराज - इन पाँच परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो । उक्त पॉच परमेष्ठियो को नमस्कार सम्पूर्ण पापो मे नाश करने वाला है और सब प्रकार के लौकिक और लोकोत्तर मंगलों मे प्रधान मंगल है ।

(2) गुरु वन्दना – तिक्खुत्तो का पाठ

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं (करेमि) वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण – वन्दामि।

(रायप्पसेणी सूत्र 8)

तिक्खुत्तो	-	तीन बार
आयाहिणं	-	दक्षिण तरफ से
पयाहिणं	-	प्रदक्षिणा
करेमि	-	करता हूँ
वंदामि	-	गुणग्राम (स्तुति) करता हूँ
णमंसामि	-	नमस्कार करता हूँ
सक्कारेमि	-	सत्कार करता हूँ
सम्माणेमि	-	सम्मान देता हूँ
कल्लाणं	-	कल्याण रुप
मंगलं	-	मंगल रुप
देवयं	-	धर्म देव रुप
चेइयं	-	ज्ञानवंत अथवा सुप्रशस्त मन के हेतु रुप
पज्जुवासामि	-	सेवा करता हूँ
मत्थएण	-	मस्तक नमाकर
वंदामि	-	वन्दना करता हूँ

भावार्थ - हे पूज्य ! दोनों हाथ जोडकर दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करता हूँ । आपका गुणग्राम (स्तुति) करता हूँ । पंचांग (दो हाथ, दो घुटने और एक मस्तक - ये पाँच अंग) नमाकर नमस्कार करता हूँ, आपका सत्कार करता हूँ, आपको सम्मान देता हूँ, आप कल्याण रुप हैं, मगलरुप है, आप धर्मदेव स्वरुप हैं, ज्ञानवंत हैं अथवा मन को प्रशस्त बनाने वाले है, ऐसे आप गुरु महाराज की सेवा करता हूँ और मस्तक नमाकर आपको वन्दन करता हूँ ।

(3) इरियावहिय (इच्छाकारेणं का पाठ)

इच्छाकारेणं सदिसह भगवन् ! इरियावहिय, पडिक्कमामि, इच्छ इच्छामि पडिक्कमिउ इरियावहियाए विराहणाए, गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे हरियक्कमणे, ओसा उत्तिग पणग दग मट्टी मक्कड़ा संताणा संकमणे, जे मे जीवा विराहिया एगिदीया, बेइदिया, तेइंदिया , चउरिंदीया, पंचिदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, सघाइया संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाण सकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 572)

भगवन्	-	हे भगवान हे गुरु महाराज
इच्छाकारेणं	-	इच्छापूर्वक
सदिसह	-	आज्ञा दीजिये (कि मै)
इरियावहियं	-	ईर्यापथिकी क्रिया का (चलने से लगने वाली क्रिया का)
पडिक्कमामि	-	प्रतिक्रमण करू
इच्छ	-	प्रमाण है
इरियावहियाए	-	मार्ग मे चलने से होने वाली
विराहणाए	-	विराधना से
पडिक्कमिउ	-	प्रतिक्रमण करने की
इच्छामि	-	इच्छा करता हूँ
गमणागमणे	-	जाने आने मे
पाणक्कमणे	-	किसी प्राणी को दबाया हो
बीयक्कणमणे	-	बीज को दबाया हो
हरियक्कमणे	-	वनस्पती को दबाया हो
ओसा	-	ओस
उत्तिंग	-	कीडी नगरा
पणग	-	पॉच रंग की काई (लीलन - फूलन)
दग	-	कच्चा पानी
मट्टी	-	सचित मिट्टी (और)
मक्कडासंताणा	-	मकडी के जालो को
संकमणे	-	कुचला हो
मे	-	मैने
एगिदीया	-	एक इन्द्रिय वाले
बेइदिया	-	दो इन्द्रिय वाले
तेइदिया	-	तीन इन्द्रिय वाले
चउरिदिया	-	चार इन्द्रिय वाले

पंचिंदिया	-	पाँच इन्द्रिय वाले
जे	-	जो
जीवा	-	जीव हैं (उन्हें)
विराहिया	-	पीडित किया हो
अभिहया	-	सन्मुख आते हुए को हना हो
वत्तिया	-	धूल आदि से ढँका हो
लेसिया	-	मसला हो
संघाइया	-	इकट्ठा किया हो
संघट्टिया	-	छुआ हो
परियाविया		परिताप (कष्ट), पहुंचाया हो
किलामिया	-	किलामना उपजाई हो मृत तुल्य किया हो
उद्दविया	-	हैरान या भयभीत किया हो
ठाणाओ	-	एक जगह
ठाणं	-	दूसरी जगह
संकामिया	-	रखा हो
जीवियाओ	-	जीवन से
ववरोविया	-	रहित किया हो
तस्स	-	उसका
दुक्कडं	-	पाप
मि	-	मेरे लिए
मिच्छा	-	मिच्छा (निष्फल हो)

भावार्थ – शिष्य - हे गुरु महाराज! इच्छापूर्वक आज्ञा दीजिये कि मै ईर्यापथिकी क्रिया का प्रतिक्रमण करुँ। गुरु की अनुमति पाने पर शिष्य कहता है कि आपकी आज्ञा प्रमाण है। मैं ईर्यापथिकी क्रिया का प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ अर्थात् मार्ग में चलने से हुई विराधना से निवृत्त होना चाहता हूँ। मार्ग मे आते जाते किसी प्राणी को दबाया हो, सचित बीज तथा हरी वनस्पति को कुचला हो, ओस, कीडी नगरा, पॉचो वर्ण की लीलन-फूलन सचित जल, सचित मिट्टी और मकड़ी के जालो को रौंदा(कुचला)हो। मैने किन्हीं जीवों की हिसा की हो जैसे एक इन्द्रिय वाले - पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति, दो इन्द्रिय वाले-शंख, सीप, गिंडोला आदि, तीन इन्द्रिय वाले- कुंथुआ, जूँ, लीख, कीड़ी, खटमल, चीचड़ आदि चार इन्द्रिय वाले - मक्खी, भवरा, बिच्छू, टिड्डी, पतंगिया आदि, पॉच इन्द्रियवाले - मनुष्य, तिर्यच जलचर, स्थलचर और खेचर आदि। सन्मुख आते हुए इन्हे मारा हो, इन्हे धूल आदि से ढँका हो, जमीन पर या आपस मे रगडा हो, इकट्ठा करके इन्हे दु:ख

पहुचाया हो तथा छूकर पीडा दी हो। इन्हे क्लेश पहुचाया हों,मृत तुल्य किया हो। हैरान भयभीत किया हो, एक जगह से दूसरी जगह रखा हो,इनका जीवन नष्ट किया हो इससे होने वाले पाप मेरे लिए निष्फल हो अर्थात् जानते- अजानते विराधना आदि से कषाय द्वारा मैने पाप कर्म बॉधा है, उसके लिए मै ह्रदय से पश्चाताप करता हूँ, जिससे कि निर्मल परिणाम द्वारा पाप कर्म शिथिल हो जावे और मुझे उसका तीव्र फल भोगना न पडे।

(4) तस्स उत्तरी का पाठ

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेण, विसोहिकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावांण,कम्माण, निघायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं। अण्णत्थ ऊससिएणं, णिससिएण खासिएण, छीएणंजभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहि अगसचालेहि,सुहुमेहिं खेलसंचालेहि,सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहि,एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सगो, जाव अरिहताणं भगवंताणं णमुक्कारेण न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 778)

तस्स	-	उस पाप युक्त आत्मा को
उत्तरीकरणेणं	-	श्रेष्ठ - उत्कृष्ट बनाने के निमित्त
पायच्छित्तकरणेणं	-	प्रायश्चित करने के लिए
विसोहिकरणेणं	-	विशेष शुध्द करने के लिए
विसल्लीकरणेणं	-	शल्यो का त्याग कराने के लिए
पावांणं	-	पाप
कम्माणं	-	कर्मो का
निग्घायणट्ठाए	-	नाश करने के लिए
काउस्सग्गं	-	कायोत्सर्ग, शरीर के व्यापारो का त्याग
ठामि	-	करता हूँ
ऊससिएणं	-	उच्छ्वास अर्थात श्वास लेना
नीससिएणं	-	नि श्वास अर्थात् श्वास निकालेना
खासिएणं	-	खासी आना
छीएण	-	छीक आना
जभाइएणं	-	उबासी आना
उड्डुएण	-	डकार आना

वायनिसग्गेणं	-	अधो वायु निकालना
भमलीए	-	चक्कर आना
पित्तमुच्छाए	-	पित्त विकार से मूर्च्छा आना
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोडा-सा)
अंगसंचालेहिं	-	अग का संचार (हिलना)
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोडा - सा)
खेल संचालेहिं	-	कफ का संचार
सुहुमेहिं	-	सूक्ष्म (थोडा - सा)
दिट्ठिसंचालेहिं	-	दृष्टि का चलना
एवमाइएहिं	-	इत्यादि
आगारेहिं	-	आगारों के
अण्णत्थ	-	सिवाय दूसरे प्रकार से
मे	-	मेरा
काउस्सगो	-	कायोत्सर्ग
अभग्गो	-	अभग्न
अविराहिओ	-	अखंडित
हुज्ज	-	हो
जाव	-	जब तक
अरिहंताणं	-	अरिहत
भगवंताणं	-	भगवान को
णमुक्कारेणं	-	नमस्कार करके
न पारेमि	-	न पारुं
ताव	-	तब तक
ठाणेणं	-	काया से स्थिर रहकर
मोणेणं	-	वचन से मौन रहकर
झाणेणं	-	मन से शुभ ध्यान धर कर
अप्पाणं	-	अपने
कायं	-	शरीर को
वोसरामि	-	अलग करता हूँ

भावार्थ - ईर्यापथिकी क्रियासे लगा हुआ आत्मा का मैल मिच्छा मि दुक्कडसे कुछ अंशों मे दूर हुआ है। उसे अधिक शुद्ध और निर्मल बनाकर पाप कर्मो का नाश करने के लिए कार्योत्सर्ग करता हूँ। आत्मा को संस्कारित और प्रशस्त बनाने के लिए पापे का प्रायश्चित आवश्यक है। प्रायश्चित के लिए आत्मा शुद्ध होना चाहिये एव आत्म शुद्धि होने के लिए शल्यों (माया, निदान

और मिथ्यादर्शन) का दूर होना जरुरी है इसलिये मै शल्य दूर करके आत्मा को शुद्ध करता हूँ। फिर प्रायश्चित द्वारा आत्मा को प्रशस्त बनाकर पाप कर्मो का नाश करने के लिए काउस्सग्ग (कायोत्सर्ग) करता हूँ। शरीर के व्यापारो का त्याग काउस्सग्ग है। चूकि इस प्रकार का सर्वथा त्याग सभव नही है। इसलिए काउस्सग्ग मे जो आगार रखै जाते है वे आगार इस प्रकार है -

श्वास का लेना और निकालना, खासना, छीकना, जंभाई आना, डकार आना, अपान वायु का सूरना, चक्कर आना, पित्त प्रकोप से मूर्च्छा आ जाना, अगो का सूक्ष्म हलन चलन, कफ का सूक्ष्म संचार, दृष्टी का सूक्ष्म सचालन आदि इनके होते रहने पर भी काउस्सग्ग नही टूटता, परन्तु इनके सिवाय अन्य स्वाधीन क्रियाओ का मेरे त्याग है। अपवाद स्वरुप इन क्रियाओ के सिवाय कोई भी क्रिया मुझसे न हो और इससे मेरा उस्सग्ग सर्वथा अभग्न और अखण्डित रहे यही मेरी अभिलाषा है। नमो - अरिहंताण - शब्द द्वारा अरिहंत भगवान के नमस्कार करके काउस्सग्ग को पूर्ण न करू तब शरीर से निश्चल बनकर, वचन से मौन रहकर और मन से शुभ ध्यान धरकर सब अशुभ व्यापारो का त्याग करता हूँ।

(5) लोगस्स का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ।।1।।
उसभमजियं च वदे, सभवमभिण दणं च सुमई च।
पउमप्पहं सुपासं, जिण च चंदप्पहं वंदे ।।2।।
सुविहि च पुप्फदतं, सीयलसिज्जंसवासुपुज्ज च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ।।3।।
कुंथुं अरं च मल्लि वंदे, मुणिसुव्वयं नमि जिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमि, पासं तह वद्धमाण च ।।4।।
एवं मए अभित्थुआ, विहूयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयतु ।।5।।
कित्तियवदियमहिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्गबोहिलाभ, समाहिवरमुत्तमं दितु ।।6।।
चंदेसुनिम्मलयरा, आइच्चेसु अहिय पयासयरा।
सागरवर गंभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसन्तु ।।7।।

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 463-50

लोगस्स		लोक मे
उज्जोयगरे	-	प्रकाश करने वाले
धम्मत्थियरे	-	धर्म रुपी तीर्थ को

		वाले
जिणे	-	राग, द्वेष, को जीतनेवाले
अरिहंते	-	कर्म रुप शत्रु का नाश करने वाले
चउवीसंपि	-	चौबीसो
केवली	-	केवल ज्ञानी तीर्थकरो की
कित्तइस्सं	-	मै स्तुती करुंगा
उसभं च	-	श्री ऋषभदेव स्वामी को और
अजियं	-	श्री अजितनाथ स्वामी को
वंदे	-	वंदना करता हूँ
संभवंच	-	श्री संभवनाथ स्वामीको और
अभिणंदणं	-	श्री अभिनन्दन स्वामी को
सुमइंच	-	श्री सुमतिनाथ स्वामी को और
पउमप्पह	-	श्री पद्मप्रभ स्वामी को
सुपासं	-	श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी को और
चंदप्पहं	-	श्री चन्द्रप्रभ
जिणं	-	जिनेश्वर को
वंदे	-	वंदना करता हूँ
सुविहि च	-	श्री सुविधिनाथ स्वामी को और
पुप्फदंतं	-	श्री पुष्पदंत (सुविधिनाथ का दूसरा नाम) स्वामी को
सीअल	-	श्री शीतलनाथ स्वामी को
सिज्जंस	-	श्री श्रेयांसनाथ स्वामीको
वासुपुज्जं च	-	श्री वासुपूज्य स्वामी को और
विमलं च	-	विमलनाथ स्वामी को और
अणतं	-	श्री अनन्तनाथ स्वामी को
जिणं	-	जिन-रागद्वेष को जितने वाले
धम्म च	-	श्री धर्मनाथ स्वामी को और
संति	-	श्री शांतिनाथ स्वामी को
वंदामि	-	वंदना करता हूँ
कुंथु	-	श्री कुथुनाथ स्वामी को
अरंच	-	श्री अरनाथ स्वामी को
मल्लि	-	श्री मल्लिनाथ स्वामी को
वदे	-	वन्दना करता हूँ
मुणिसुव्वयं च	-	श्री मुनिसुव्रत स्वामी को
नमिजिण च	-	श्री नमिनाथ जिनेश्वर को और

रिट्ठनेमि	-	श्री अरिष्टनेमि (श्री नेमिनाथ) स्वामी को
पासं	-	श्री पार्श्वनाथ स्वामी को (पार्श्वनाथ)
तह	-	तथा
वद्धमाणं च	-	श्री वर्द्धमान (महावीर) स्वामीको
वंदामि	-	मैं वंदना करता हूँ
एव	-	इस प्रकार
म ए	-	मेरे द्वारा
अभित्थुआ	-	स्तुति किये हुए
विहूयरमला	-	पाप रज के मल से रहित
पहीणजरमरणा	-	बुढापे तथा मरण से मुक्त
तित्थयरा	-	तीर्थ की स्थापना करने वाले
चउवीसंपि	-	चौबीसो
जिणवरा	-	जिनेश्वर देव
मे	-	मुझ पर
पसीयंतु	-	प्रसन्न हो
कित्तिय	-	वाणी से कीर्तन किये हुए
वदिय	-	काया से वंदना किये हुए
महिया	-	मन से पूजन किये हुए
जे	-	जो
लोगस्स	-	लोक मे
उत्तमा	-	उत्तम
सिद्धा	-	सिद्ध भगवान है
ए	-	वे
आरुग्गबोहिलाभं	-	आरोग्य अर्थात् मोक्ष के लिये परभव मे सम्यक्त्व का लाभ और
समाहिवरमुत्तम	-	सर्वोत्कृष्ट भाव समाधि को
दितु	-	देवे
चदेसु	-	चन्द्रमाओ से भी
निम्मलयरा	-	विशेष निर्मल
आइच्चेसु	-	सूर्यो से भी
अहिय	-	अधिक
पयासयरा	-	प्रकाश करने वाले

सागरवरगंभीरा	-	महासमुद्र के समान गंभीर
सिध्दा	-	सिध्द भगवान
मम	-	मुझको
सिद्धिं	-	सिद्धि
दिसंतु	-	देवे

भावार्थ - (तीर्थकरों की स्तुति) स्वर्ग, नरक और मृत्यु इन तीनो लोको मे धर्म का उद्योत करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले राग - द्वेष आदि अन्तरंग शत्रुओ पर विजय पाने वाले चौबीस केवलज्ञानी तीर्थकरों की मै स्तुति करुगा । सर्वश्री ऋषभदेव स्वामी,अजितनाथजी, सभवनाथजी, अभिनन्दनजी, सुमतिनाथ,पद्मप्रभजी, सुपार्श्वनाथजी,चन्द्रप्रभजी, सुविधिनाथजी , शीतलनाथजी, श्रेयांसनाथजी,वासुपूज्यजी, विमलनाथजी, अनन्तनाथजी, धर्मनाथजी, शांतिनाथजी, कुंथुनाथजी,अरनाथजी, मल्लिनाथजी, मुनिसुव्रतजी नमिनाथजी, अरिष्टनेमिजी, (नेमिनाथजी), पार्श्वनाथजी और महावीर स्वामी इन चौबीस जिनेश्वरों की मै स्तुति करता हूँ और उन्हे नमस्कार करता हूँ। उपरोक्त प्रकार से मैने जिनकी स्तुति की है जो कर्म मल से रहित हैं, जो जरा और मरण से मुक्त है और जो तीर्थ के प्रवर्तक है वे चौबीसो जिनेश्वरदेव मुझ पर प्रसन्न हों। जिनको वाणी से कीर्तन, काया से वन्दन और मन से भावपूजन किया गया है, जो सम्पूर्ण लोक मे उत्तम हैं, और जो सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुए है, वे भगवान मुझको मोक्ष प्राप्ति करावे तथा सर्वोत्कृष्ट भाव समाधि प्रदान करे । जो चन्द्रमाओ से भी निर्मल हैं, सूर्यो से भी विशेष प्रकाशमान हैं, और स्वयम्भूरमण नामक महासमुद्र के समान गभीर है ऐसे सिद्ध भगवान मुझको सिद्धि (मोक्ष) देवे । यद्यपि राग - द्वेष रहित होने से भगवान न किसी पर प्रसन्न होते हैं, न ही कुछ देते ही है, पर उनका ध्यान करने से चित्त शुध्दि द्वारा अभिलाषित फल की प्राप्ती होती है । जिस तरह चितामणि रत्न जड होने पर भी, उससे वांछित फल की प्राप्ती होती है।

(6) ध्यान विशुद्धि का पाठ

ध्यान में आर्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो , धर्मध्यान शुक्ल ध्यान न ध्याया हो,ध्यान में मन, वचन, काया चलित हुए हो तो तस्स मिच्छमि दुक्कड़ ।

(7) करेमि भंते का पाठ

करेमि भंते ! सामाइयं, सावज्ज जोगं पच्चक्खामि जावनियम पज्जुवासामि,दुविहं तिविहेण न करेमि, न कारवेमि मणसा वयसा कायसा

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि।

(हरिभद्रीयावश्यक पृष्ठ 454)

भंते	-	हे भगवान !
सामाइयं	-	सामायिक को
करेमि	-	मै ग्रहण करता हूँ
सावज्जं	-	सावद्य (पाप रहित)
जोगं	-	व्यापार
पच्चक्खामि	-	प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ
जाव	-	जब तक ,
नियमं	-	इस नियम का
पज्जुवासामि	-	मै सेवन करता रहूँ तब तक
दुविहं	-	दो करण से
तिविहेणं	-	तीन प्रकार के योग से अर्थात्
मणसा	-	मन से
वयसा	-	वचन से
कायसा	-	काया से
न करेमि	-	सावद्य योग को न करुगा
न कारवेमि	-	न दूसरो को कराऊगा
भते	-	हे भगवान।
तस्स	-	उससे (पहले के पाप से)
पडिक्कमामि	-	मै निवृत्त होता हूँ ।
निंदामि	-	उस पाप की आत्मसाक्षी से निदा करता हूँ
गरिहामि	-	गुरु साक्षी से गर्हा निन्दा करता हूँ
अप्पाणं	-	अपनी आत्मा को उस पाप व्यापार से
वोसरामि	-	हटाता हूँ, अलग करता हूँ

भावार्थ – मै सामायिक व्रत को ग्रहण करता हूँ। (राग द्वेष से हटकर या ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे लगना ही सामायिक है। मै पाप जनक व्यापारो को त्याग करता हूँ। जब तक मै इस नियम का पालन करता हूँ तब तक म और काया इन तीनो योगो द्वारा पाप व्यापार न स्वय करुगा और न

कराऊंगा। हे स्वामिन्! पूर्वकृत पाप से मैं निवृत होता हूँ। हृदय से मै उसे बुरा समझता हुं और गुरु के सामने उसकी मैं निन्दा करता हूँ। इस प्रकार मे अपनी आत्मा को पाप क्रिया से छुडाता हूँ।

(8) णमोत्थुणं का पाठ

णमोत्थुंण अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाण, पुरिसुत्तमाणं पुरससीहाणं पुरिस - वर पुंडरिआणं पुरिसवर - गंध -हत्थीण, लोगुत्तमाणं लोगणाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाणं लोगपज्जो अगराण, अभयदयाणं चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं सरणदयाणं, जीवदयाणं बोहिदयाण धम्मदयाणं, धम्मदेसयांण,धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवर - चाउरन्त चक्कवट्टीणं दीवो ताणं सरणगई पईट्ठा अप्पडिहयवरनाणं दंसणधराण विअट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं, तिण्णाणं तारयाण बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं, सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं, सिव मयल मरुअ मणत मक्खय मव्वाबाह मपुणराविति सिद्धिगइनामधेयं ठाण संपत्तांण णमो जिणाणं जिअभयाण।

(कल्प सूत्र शक्रस्तव)		(औपपातिक सूत्र 12)
अरिहंताणं भगवंताणं	-	अरिहंत भगवान को
णमोत्थुणं	-	नमस्कार हो
आइगराणं	-	धर्म की आदि (प्रारंभ) करने वाले
तित्थयराणं	-	धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले
सयंसंबुद्धाणं	-	अपने आप ही बोध पाये हुए
पुरिसुत्तमाणं	-	पुरुषों मे श्रेष्ठ
पुरिससीहाणं	-	पुरुषों में सिंह के समान
पुरिस-वर पुंडरिआणं	-	पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान
पुरिसवर-गंध- हत्थीणं	-	पुरुषों में प्रधान गंधहस्ती के समान
लोगुत्तमाणं	-	लोक में उत्तम
लोगणाहाणं	-	लोक के नाथ
लोगहिआणं	-	लोक का हित करने वाले,
लोगपईवाणं	-	लोक के लिए दीपक के समान
लोगपज्जोअगराणं	-	लोक में उद्योत कराने वाले
अभयदयाणं	-	अभय देने वाले
चक्खुदयाणं	-	ज्ञान रुपी नेत्र देनेवाले
मग्गदयाणं	-	धर्म मार्ग का दाता
जीव दयाणं	-	संयम का ज्ञानरुपी जीवन देने वाले

सरणदयाण	-	शरण देने वाले
बोहिदयाण	-	बोध अर्थात् सम्यक्त्व देने वाले
धम्मदयाण	-	धर्म का दाता
धम्मदेसयाणं	-	धर्म के उपदेशक
धम्मनायगाण	-	धर्म के नायक
धम्मसारहीणं	-	धर्म के सारथी
धम्मवरचाउरन्त-चक्कवट्टीण-		चार गति का अन्त करनेवालेधर्मरुप चक्र को धारण करने वाले अतएव प्रधान धर्म चक्रवर्ती रुप
दीवो	-	ससार समुद्र मे द्वीप के समान
ताणं	-	रक्षक रुप
सरण	-	शरणभूत
गई	-	गति रुप
पईट्ठा	-	ससार-कूप मे गिरते हुए प्राणियो के लिये आधार रुप
अप्पडिहयवर	-	अप्रतिहत (बाधा सहित) तथा श्रेष्ठ
नाणदंसणधराण	-	पूर्ण ज्ञान दर्शनको धारणा करनेवाले
विअट्टछउमाण	-	छद्म अर्थात् घाती कर्म रहित
जिणाणं	-	स्वय राग द्वेष को जितने वाले
जावयाणं	-	औरो को जिताने वाले
तिण्णाणं	-	स्वय संसार से तिरे हुए तथा
तारयाणं	-	दूसरों को तारने वाले
बुद्धाणं	-	स्वयं बोध पाये हुए तथा
बोहयाण	-	दूसरो को बोध प्राप्त कराने वाले
मुत्ताणं	-	स्वयं धर्म बधन से छुटे हुए
मोअगाणं	-	दूसरो को छुडाने वाले
सव्वण्णुण	-	सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाले)
सव्वदरिसीणं	-	सर्वदर्शी (सब कुछ देखने वाले)
सिवं	-	निरुपद्रव,कल्याण स्वरुप
मयलं	-	स्थिर
मरुअ	-	रोग रहित
मणन्त	-	अनन्त

मक्खय	-	क्षय रहित
मव्वाबाह	-	बाधा (पीड़ा) रहित
मपुणराविति	-	पुनरागमन रहित ऐसे
सिद्धिगइ नामधेयं	-	सिद्धि गति नामक
ठाणं	-	स्थान को
संपत्तांणं	-	प्राप्त हुए
जिअभयाणं	-	भय को जीतने वाले
जिणाणं	-	जिनेश्वर सिद्ध भगवान को
णमो	-	नमस्कार हो

भावार्थ - अरिहन्त भगवान को मेरा नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले है,साधु साध्वी, श्रावक-श्राविका रुपी चार तीर्थो की स्थापना करने वाले है, दूसरों के उपदेश के बिना ही बोध को प्राप्त कर चुके है, सब पुरुषो मे उत्तम है, पुरुषों में सिंह के समान निर्भय है, पुरुषो में कमल के समान अलिप्त हैं, पुरुषो में प्रधान गन्धहस्ति के समान है, लोक में उत्तम है,लोक के नाथ है लोक के हितकारक है, लोक मे प्रदीप के समान प्रकाश करने वाले है, लोक मे अज्ञान रुप अन्धकार का नाश करने वाले है,दु'खियो को अभयदान देने वाले है, अज्ञान से अन्धे लोगों को ज्ञान रुपी नैत्र देने वाले है, मार्ग भ्रष्ट को मार्ग दिखाने वाले है, संयम या ज्ञान रुपी जीवन देने वाले है, शरणागत को शरण देने वाले है, सम्यक्त्व प्रदान करने वाले है, जिज्ञासुओ को धर्म का उपदेश करने वाले हैं, धर्म के नायक हैं धर्म के सारथी (संचालक) है, चार गति का अन्त करने वाले, धर्म रुपी चक्र को धारण करने वाले अतएव प्रधान धर्म् -चक्रवर्ती रुप है, संसार रुप समुद्र में द्वीप के समान रक्षक रुप शरण रुप, गतिरुप एवं आधारभूत है,सर्व पदार्थो के स्वरुप को प्रकाशित करने वाले श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन को अर्थात् केवल ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले है, चार घाती कर्म रुप आवरण से मुक्त है, स्वयं राग-द्वेष को जीतने वाले और दूसरो को जिताने वाले है, स्वयं संसार से पार पहुंच चुके और दूसरों को भी पार पहुंचाने वाले हैं, स्वयं ज्ञान को पाए हुए है और दूसरों को भी ज्ञान प्राप्त कराने वाले हैं, स्वयं मुक्त है और दूसरों को भी मुक्ति प्राप्त कराने वाले हैं, सर्वज्ञ हे, सर्वदर्शी हैं तथा कल्याणकारी, उपद्रव रहित, अचल (स्थिर) रोग रहित, अनन्त,अक्षय, बाधा पीडा रहित और पुनरागमन (जन्ममरण) रहित ऐसे मोक्ष स्थान को प्राप्त हैं, अथवा प्राप्त होने वाले है। ऐसे सब प्रकार के भयों को जीतने वाले जिनेश्वरों को नमस्कार हो।

9) एयस्स नवमस्स पाठ

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-मणदुप्पणिहाणे वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, तस्स मिच्छामि दुक्कड।

(हरिभद्रदियावश्यक पृष्ठ 454)

एयस्स	-	इस
नवमस्स	-	नवे
समाइयवयस्स	-	सामायिक व्रत के
पंच	-	पॉच
अइयारा	-	अतिचार
जाणियव्वा	-	जानने योग्य है, किन्तु
न समायरियव्वा	-	आचरण करने योग्य नही है
तजहा	-	वे इस तरह है
ते	-	उनकी
आलोउं	-	आलोचना करता हूँ
मणदुप्पणिहाणे	-	मन मे बुरे विचार उत्पन्न करना
वयदुप्पणिहाणे	-	कठोर या पाप जनक वचन बोलना
कायदुप्पणिहाणे	-	बिना देखे पृथ्वी पर बैठना उठना आदि
सामाइयस्स		सामायिक का समय होने से पहले ही
अणवट्ठियस्सकरणया	-	पार लेना या अनवस्थित रुप से सामायिक करना।
तस्स	-	उससे होने वाला
मि	-	मेरा
दुक्कड	-	पाप
मिच्छा	-	मिथ्या (निष्फल) हो

भावार्थ - श्रावक के बारह व्रतों मे से नवॉ व्रत सामायिक व्रत है । उसके पॉच अतिचार है जानने योग्य है, परन्तु आचरण करने योग्य नही है । उन अतिचारों की आलोचना करता हूँ, जैसे कि 1 सामायिक के समय मन मे बुरेविचार किये हो । 2 कठोर या पाप जनक वचन बोले हो । 3 अयतना पूर्वक शरीर से चलना, फिरना, हाथ, पॉव को फैलाना सकोचना आदि

क्रियाएं की हो । 4 सामायिक करनेका काल याद न रखा हो । 5 अल्पकाल तक या अनवस्थित रुप जैसे-तैसे सामायिक की हो ।

इन पॉचों अतिचारो से होने वाला मेरा पाप निष्फल हो ।

सामाइयं सम्मं काएणं, ण फासियं, ण पालियं ण तीरियं, ण किट्टियं, ण सोहियं, ण आराहियं, आणाए अणुपालियं ण भवइ तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

सामाइयं	-	सामायिक का
सम्मं	-	सम्यक्
काएणं	-	काया से
न फासियं	-	स्पर्श न किया हो
न पालियं	-	पालन न किया हो
न सोहियं	-	अतिचारो से रहित उसे शुद्ध न किया हो
न तीरियं	-	पूर्ण न किया हो
न किट्टियं	-	कीर्तन न किया हो
न आराहियं	-	आराधना न किया हो
आणाए	-	आज्ञानुसार
अणु पालियं न भवइ	-	पालन न किया हो
तस्स	-	उससे होने वाला
मि	-	मेरा
दुक्कडं	-	पाप
मिच्छा	-	मिथ्या हो

भावार्थ – सामायिक का सम्यक् प्रकार काया से स्पर्श न किया हो, उसका पालन न किया हो, अतिचार टाल कर उसकी शुद्धि न की हो, उसकी आराधना न कि हो, उसे पूर्ण न किया हो, कीर्तन न किया हो, आराधना न की हो एवं आज्ञानुसार उसका पालन न किया हो, उससे होने वाला मेरा पाप निष्फल हो ।

सामायिक में दस मन के, दस वचन, बारह काया के इन कुल बत्तीस दोषों मे से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

सामायिक में "स्त्री कथा, भत्त (भोजन) कथा, देश कथा, राज कथा इन चार कथाओ में से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छा नि दुक्कडं ।

सामायिक में आहारसंज्ञा, भयसज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा, इन

चार संज्ञाओं में से किसी भी संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, जानते-अजानते

स्त्रियो को पुरुष कथा बोलना।

मन,वचन, काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक व्रत विधि पूर्वक लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सामायिक का पाठ बोलने में काना, मात्रा अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक विपरीत पढने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक लेने की विधि

1 **निस्सही निस्सही** – सामायिक स्थान (धर्म स्थान) मे प्रवेश करते ही निस्सही निस्सही शब्द का उच्चारण अर्थात् मै पाप कार्यो का निषेध करता हूँ।

2 **प्रतिलेखन** – स्थान पूँज कर, आसन, मुखवस्त्रिका वस्त्र आदि धार्मिक उपकरणो का प्रतिलेखन।

3 **वस्त्र परिवर्तन** – भाईयो के लिए चोलपट्टा या धोती एव चादर (चोलपट्टे की लम्बाई पैर के टखने तक रहे।)

4 **वन्दन** – तिक्खुतो के पाठ से तीन बार विधि सहित वन्दना। सन्त सतियाजी म.सा विराजमान हों तो उनके सम्मुख और न हों तो उत्तर - पूर्व दिशा मे मुख करके वन्दना करें।

5 **नमस्कार महामन्त्र,** इच्छाकारेण, तस्स उत्तरी, का पाठ, (तस्स उत्तरी का पाठ बोलते समय ठाणेणं, मोणेण झाणेण अप्पाणं वोसरामि बोलना) एक लोगस्स का ध्यान करना।

6 **ध्यान** – शरीर की चचलता रहित होकर एकं लोगस्स का ध्यान। नमो अरिहन्ताण बोल कर ध्यान खोले।

7 **नमस्कार मंत्र,** ध्यान विशुद्धि का पाठ एवं एक लोगस्स का पाठ प्रकट बोलना।

8 **प्रत्याख्यान** – करेमि भन्ते के पाठ से सामायिक व्रत के प्रत्याख्यान। साधु- साध्वी या बडे श्रावक - श्राविका जो सामायिक मे है उनसे ग्रहण

करें। न हो तो स्वयं लेवे। यहाँ ध्यान रखने योग्य है कि यदि साधु-साध्वी श्रावक - श्राविका विशेष ज्ञानार्जन प्रवचन आदि मे संलग्न हो तो उन्हे अन्तराय न देते हुए स्वयं प्रत्याख्यान ले लेवें। करेमि भन्ते के पाठ मे जहाँ जावनियम शब्द आवे उसके स्थान पर जितनी सामायिक लेना हो उतना कहे।

9. **णमोत्थुणं** – बायाँ घुटना खडा करके दो बार णमोत्थुणं का पाठ। पहले णमोत्थुण मे ठाण सम्पत्ताणं एवं दूसरे णमोत्थुणं मे ठाण सम्पाविउकामाणं कहना।

एक सामायिक का समय 48 मिनिट का होता है।

सामायिक पारने की विधि

1. नमस्कार महामन्त्र
2. इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ (तस्सउत्तरी मे ठाणेण मोणेणं झाणेण दो लोगस्स का ध्यान अप्पाणं वोसरामि कहना।)
3. ध्यान - दो लोगस्स का ध्यान। णमो अरिहन्ताणं कहकर ध्यान पारना।
4. नमस्कार महामन्त्र ध्यान की विशुद्धि का पाठ लोगस्स का पाठ।
5. दो बार णमोत्थुणं (पूर्व विधि अनुसार)
6. एयस्स नवमस्स का पाठ बोलकर तीन बार नमस्कार मंत्र बोलकर सामायिक पारना।

सामायिक के बत्तीस दोष

मन के दस दोष

दोहा

अविवेग जसोकित्ती, लाभत्थी गव्व भय नियाणत्थी।
संसय रोस अविणउ, अबहुमाण ए दोसा भणियव्वा॥

1. **अविवेक** – विवेक बिना सामायिक करे तो अविवेक दोष।
2. **यशकीर्ति** – यश-कीर्ति के लिये सामायिक करे तो यशकीर्ति दोष।
3. **लाभार्थ** – धनादि के लाभ की इच्छा से सामायिक करे तो लाभ दोष।
4. **गर्व** – गर्व (अहकार) सहित सामायिक करे तो गर्व दोष।
5. **भय** – राज्यादि के अपराध के भय से सामायिक करे तो भय दोष।

6. **निदान** – सामायिक में नियाणा (निदान) करे तो निदान दोष ।
7. **संशय** – फल में सन्देह रख कर सामायिक करे तो सशय दोष ।
8. **रोष** – सामायिक मे क्रोध, मान, माया,लोभ करे तो रोष दोष ।
9. **अविनय** – विनयपूर्वक सामायिक न करे तथा सामायिक में देव, गुरु,धर्म की अविनय-आशातना करे तो अविनय दोष ।
10 अबहुमान - **बहुमान भक्ति भावपूर्वक सामायिक न कर के बेगारी के समान सामायिक करे तो अबहुमान दोष।**

(श्री जैन सिद्धात बोल सग्रह भाग तीसरा पृष्ठ 447 बोल न 764)

वचन के दोष

कुवयणसहसाकारे, सछंद सखेव कलहं च।
विगहा वि हासोऽसुद्धं, णिरवेक्खो मुणमुणा दोसा दस।

1. **कुवचन** – सामायिक मे कुवचन (कुत्सित वचन) बोले तो "कुवचन" दोष।
2. **सहसाकार** – सामायिक मे बिना विचारे बोले तो "सहसाकार" दोष ।
3. **स्वच्छन्द** – सामायिक मे राग उत्पन्न करने वाले ससार समन्धी गीत रत्यालादि गाने गावे तो "स्वच्छन्द" दोष ।
4. **संक्षेप** – सामायिक मे पाठ और वाक्य कम कर के बोले तो "सक्षेप" दोष।
5. **कलह** – सामायिक मे क्लेशकारी वचन बोले तो "कलह" दोष ।
6. **विकथा**– सामायिक मे स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा, राजकथा इन चार कथाओ में से कोई कथा करे तो "विकथा" दोष ।
7. **हास्य** – सामायिक मे हॅसी-मजाक करे तो "हास्य" दोष ।
8. **अशुद्ध** – सामायिक में पाठो का उच्चारण भली प्रकार से नही करे अथवा सामायिक मे अव्रती को आओ पधारो कह कर सत्कार-सम्मान देवे या उसे आने- जाने का कहे तो "अशुद्ध" दोष ।
9. **निरपेक्ष** – सामायिक मे उपयोग बिना बोले तो "निरपेक्ष" दोष ।
10. **मुणमुण** – सामायिक मे स्पष्ट उच्चारण न कर के गुण-गुण बोले (गुनगुनावे) तो "मुण-मुण" दोष ।

(श्री जैन सिद्धात बोल सग्रह भाग तीसरा पृष्ठ 448 बोल 765)

काया के 12 दोष

कुआसण चलासण चलदिट्ठी,
सावज्जकिरिया लंबणा-कुंचण पसारणं।

आलस्स मोडण मल विमासणं,
निद्दा वेयावच्चति बारस कायदोसा ।।1।।

1. **कुआसन** – समायिक में अयोग्य आसन से बैठे तो "कुआसन" दोष। टांसणी मार के बैठना, पॉव पर पाँव रख कर बैठना, पॉव पसार कर बैठना, अभिमान-सूचक से बैठना आदि सभी कुआसन (अयोग्य आसन) है।
2. **चलासन** – सामायिक में स्थिर आसन न रखे, आसन बदलता रहे तो "चलासन" दोष ।
3. **चलदृष्टि** – सामायिक में दृष्टि को स्थिर न रखै तो चलदृष्टी दोष।
4. **सावद्यक्रिया** – सामायिक में शरीर से सावद्य-क्रिया करे, घर की रखवाली करे, इशारा करे तो सावद्य-क्रिया दोष ।
5. **आलम्बन** – सामायिक में बिना कारण भींत आदि का सहार लेवे तो आलम्बन दोष ।
6. **आकुंचन प्रसारण** – सामायिक में बिना प्रयोजन हाथ-पॉव सकोचे पसारे तो आकुंचन प्रसारण दोष ।
7. **आलस्य** – समायिक मे अंग मोडे तो आलस्य दोष ।
8. **मोटन**–सामायिक में हाथ पॉव का कडका निकाले तो मोडण दोष ।
9. **मल** – सामायिक में मैल उतारे तो मल दोष ।
10. **विमासण** – गाल (कपोल) आदि पर हाथ लगाकर शोकासन से बैठे तो विमासण दोष अथवा सामायिक में बिना पूँजे खाज करे या बिना पूँजे चले तो विमासण दोष ।
11. **निद्रा** – सामायिक में नीद लेवे तो निद्रा दोष ।
12. **वैयावृत्य** – सामायिक में अव्रती की सेवा करे, अव्रती से सेवा करावे तथा बिना कारण व्रती से सेवा करावे तो वैयावृत्य दोष ।

(श्री जैन सिद्धांत बोल संग्रह भाग चौथा पृष्ठ 273 बोल नं 189)

(२) 24 तीर्थकर

इस अवसर्पिणी काल मे चौबीस तीर्थकर हो चुके हैं । तीर्थ का अर्थ सघ ,है। श्रावक और श्राविका को संघ कहते हैं । जो तीर्थकर होते हैं, वे इस चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं । वे सर्वदर्शी होते हैं उनके चरणो मे स्वर्ग के इन्द्र भी नमस्कार करते हैं । उनके नाम इस प्रकार है।

1	श्री ऋषभदेवजी	13	श्री विमलनाथजी

2	श्री अजितनाथजी	14	श्री अनन्तनाथजी
3	श्री सम्भवनाथजी	15	श्रीधर्मनाथजी
4	श्री अभिनन्दन जी	16	श्री शान्तिनाथजी
5	श्री सुमतिनाथजी	17	श्री कुन्थुनाथजी
6	श्री पदम प्रभजी	18	श्री अरनाथजी
7	श्री सुपार्श्वनाथजी	19	श्री मल्लीनाथजी
8	श्री चन्द्रप्रभजी	20	श्री मुनिसुव्रतजी
9	श्री सुविधिनाथजी	21	श्री नेमिनाथजी
10	श्री शीतलनाथजी	22	श्री अरिष्ठनेमिजी
11	श्री श्रेयांसनाथजी	23	श्री पार्श्वनाथजी
12	श्री वासुपुज्यजी	24	श्री महावीर स्वामीजी

भगवान ऋषभदेवजी का दूसरा नाम आदिनाथजी है। इन्हे आदिदेव भी कहते हैं । चैाबीसवे तीर्थकर भगवान श्री महावीर स्वामी जी के कई नाम है। उन्हें वीर महावीर,अतिवीर सन्मति और वर्द्धमान भी कहते है ।

(३) बीस विरहमान् तीर्थंकर

1	श्री सीमंधर स्वामीजी	11	श्री वज्रधर स्वामीजी
2	श्री युगमंधर स्वामीजी	12	श्री चन्द्रानन स्वामीजी
3.	श्री बाहु स्वामीजी	13	श्री चन्द्रबाहु स्वामीजी
4	श्री सुबाहु स्वामीजी	14	श्री भुजग स्वामीजी
5.	श्री सुजात स्वामीजी	15	श्री ईश्वर स्वामीजी
6	श्री स्वयप्रभ स्वामीजी	16	श्री नेमिप्रभ स्वामीजी
7	श्री ऋषभानन स्वामीजी	17	श्री वीरसेन स्वामीजी
8	श्री अनतावीर्य स्वामीजी	18	श्री महाभद्र स्वामीजी
9	श्री सूरप्रभ स्वामीजी	19	श्री देवयश स्वामीजी
10	श्री विशालधर स्वामीजी	20	श्री अजितवीर्य स्वामीजी

ये बीस तीर्थकर अभी महाविदेह क्षेत्र में विचर रहे है इसलिएँ इनको विरहमान कहते हैं ।

(४) भगवान महावीर के ग्यारह गणधर

1	श्री इन्द्रभूतिजी	6	श्री मण्डितपुत्रजी
2	श्री अग्निभूतिजी	7	श्री मोर्यपुत्रजी

3. श्री वायूभूतिजी
4. श्री व्यक्तस्वामीजी
5. श्री सुधर्मास्वामीजी
8. श्री अंकपितजी
9. श्री अचलभ्राताजी
10 श्री मेतार्यजी
11 श्री प्रभासजी

(९) सोलह सती

जो कष्ट आने पर भी अपने शील -धर्म को नही छोडती है अपने पति देव के सिवाय दूसरे पुरुषों को पिता तथा भाई के समान समझती है। ऐसी सतियां कई हो गई हैं।

परन्तु जिन सोलह सतियो को हम याद करते है, उनके नाम इस प्रकार हैं -

1. श्री ब्राह्मीजी
2. श्री सुन्दरी जी
3. श्री कौशल्या जी
4. श्री सीताजी
5. श्री राजमती जी
6 श्री कुन्ती जी
7. श्री द्रौपदी जी
8. श्री चन्दनबाला जी
9. श्री मृगावती जी
10. श्री पुष्पचूला जी
11. श्री प्रभावती जी
12. श्री सुभद्रा जी
13. श्री दमयन्ती जी
14. श्री सुलसा जी
15. श्री शिवादेवी जी
16. श्री पद्मावती जी

इन सोलह सतियो मे ब्राम्ही सुन्दरी, चन्दनबालाजी और राजमति बाल-ब्रम्हाचारिणी थी और बाकी सब विवाहित थी। इन सब सतियों का जीवन पढने से मालूम होगा, कि इन्होंने कितना कष्ट सहकर भी अपने धर्म की रक्षा की इसलिए ये जग की पूजनीय बन गई। सुबह उठकर जो इनका नाम लेते हैं, उनका मन पवित्र होता है और उनका चरित्र - बल बढता है।

द्वितीय आयाम

१. समकित के ६७ बोल

पहले बोले श्रद्धान 4, दूसरे बोले लिग 3, तीसरे बोले विनय के 10 प्रकार, चौथे बोले शुद्धि 3, पॉचवे बोले लक्षण 5, छठे बोल दूषण 5, सातवें बोले भूषण 5,आठवे बोले प्रभावना 8, नौवे बोले आगार 6, दसवे बोले यतना 6, ग्यारहवे बोले स्थान 6, बारहवे बोले भावना 6 । ये सभी मिला कर 67 बोल हुए । अब इनकी व्याख्या दी जाती है -

पहले बोले - श्रद्धान चार

1 परमार्थ का परिचय करे अर्थात् नव तत्व का ज्ञान प्राप्त करे ।
2 परमार्थ के जानने वालो की सेवा करे ।
3 जिसने सम्यक्त्व का वमन कर दिया (छोड दिया) हो, उसकी सगति नही करें ।
4 कुतीर्थियो की सगति से दूर रहे ।

दूसरे बोले - लिंग तीन

1 जैसे तरुण कामी पुरुष राग - रागिनी में अनुराग रखता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी मे अनुरक्त रहें ।
2 जैसे तीन दिन का भूखा मनुष्य मिष्ठान्न का भोजन रुचि सहित करता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी आदर सहित सुने ।
3 जैसे अनपढ विद्याभिलाषी को पढने की चाह रहती है और पढने का सुयोग मिलते ही हर्षित होता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी सुनकर हर्षित होवे ।

तीसरे बोले - विनय के 10 प्रकार

1 अरिहन्त भगवान् की विनय भक्ति करे ।
2 सिद्ध भगवान की विनय - भक्ति करे ।
3 आचार्य महाराज की विनय - भक्ति करे ।
4. उपाध्यायजी महाराज की विनय भक्ति करे ।
5 स्थविर महाराज की विनय भक्ति करे ।
6 कुल साधु समुदाय की विनय - भक्ति करें ।
7 गण (गच्छ) की विनय - भक्ति करे ।
8 चतुर्विध सघ (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) की विनय भक्ति करे ।

9. स्वधर्मी की विनय भक्ती करें ।
10 क्रिया वान की विनय - भक्ति करें ।

चौथे बोले - शुद्धि तीन

1. **मन शुद्धि** - मन से श्री वीताराग देव का ध्यान करें,परन्तु किसी अन्य देव को मन में नही लावे ।
2 **वचन-शुद्धि**- वचनो से श्री वीतराग देव का गुणगान करे, किन्तु किसी अन्य देव की प्रशंसा नहीं करे ।
3. **काया-शुद्धि** - काया से श्री वीतराग देव को वन्दन नमस्कार करें, परन्तु किसी अन्य देव को नहीं करें ।

पाँचवे बोले - लक्षण पाँच

1. **शम(प्रशम)** - अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का उदय नहीं होना ।
सम - शत्रु - मित्र पर समभाव रखना ।
2. **संवेग**- वैराग्य भाव, मोक्ष की अभिलाषा होना ।
3 **निर्वेद- आरम्भ** - परिग्रह से निवृत्त होना, संसार से उदासीन होना।
4 **अनुकम्पा** - दूसरे जीवों को दुःखी देख कर दया आना ।
5. **आस्था** - जिन वचन पर दृढ विश्वास रखना ।

छठे बोले - दूषण पाँच

1 **शंका** - जिन भगवान के वचनों में संदेह रखना ।
2 **कांक्षा** - अन्य मतियों का आडम्बर देख कर उनकी चाहना करना ।
3. **विचिकित्सा** - करणी के फल में सन्देह रखना अथवा साधु-साध्वी के मलिन वस्त्र देख कर घृणा करना ।
4 **पर पाखण्डी प्रशंसा** - अन्य मत वालों की प्रशंसा करना ।
5 **पर पाखण्डी संस्तव** - अन्य तीर्थियो के साथ परिचय रखना और उनकी संगति करना ।

सातवें बोले - सम्यक्त्व के भूषण पाँच

1 जिन शासन में निपुण होवे ।
2. जिन शासन की प्रभावना करे और उसके गुणो को दीपावे - प्रकट करे ।
3. जिन शासन को मानने वाले साधु, साध्वी,श्रावक-श्राविका रुप धर्म-तीर्थ की सेवा भक्ति करे ।
4 अन्य जीवो को धर्म मे स्थिर करे और जिन मार्ग मे चतुर हो ।

5. जिन-प्रवचन एव गुणवानों का आदर-सत्कार एवं महिमा करे ।

आठवें बोले - प्रभावना आठ

1 जिस काल मे जितने सूत्र उपलब्ध हो, उतने पढें और अन्य जीवो को प्रतिबोध देकर उनकी प्रभावना करे ।
2. धर्म कथा सुनाने मे चतुर हों ।
3. प्रत्यक्ष,प्रमाण हेतु दृष्टात पूर्वक अन्य मतियो से वाद करके धर्म को दीपावे - प्रभावना करें ।
4 निमित्तज्ञान से भूत, भविष्य और वर्तमान काल जाने ।
5 कठिन तपस्या कर के धर्म की प्रभावना करे ।
6. अनेक विद्याओ का जानकार होवे ।
7. प्रसिध्द व्रत (ब्रह्मचर्य आदि चार खन्ध) लेवे ।
8. शास्त्र के अनुसार कविता रच कर धर्म की प्रभावना करे ।

नौवें बोले - आगार छह

1. राजा के दबाव से अन्य तीर्थो को वन्दना करनी पडे, तो सम्यकत्व मे दोष लगता है, परन्तु भग नही होता ।
2. कुटुम्ब, जाति, पंच आदि के दबाव से अन्य तीर्थी को वन्दनादि करनी पडे,तो सम्यकत्व मे दोष लगता है, परन्तु भग नही होता ।
3 बलवान् के डर से अन्य तीर्थी को वन्दनादि करनी पडे, तो सम्यकत्व मे दोष लगता है, लेकिन सम्यकत्व भग नही होता ।
4 देव के डर से अन्य तीर्थी को वन्दनादि करनी पड़े, तो सम्यक्त्व मे दोष लगता है, लेकिन सम्यक्त्व का भग नही होता ।
5 माता, पिता, गुरु आदि के आग्रह से अन्य तीर्थो को वन्दनादि करनी पडे तो सम्यक्त्व मे दोष लगता है, परन्तु भंग नही होता ।
6 दुर्भिक्ष-काल मे आजीविका होना कठिन हो जाय और न चाहते हुए भी अन्य तीर्थी को वन्दनादि करनी पडे तो सम्यक्त्व मे दोष लगता है, परन्तु भंग नही होता ।

दसवें बोल - यतना छह

1 **आलाप**-मिथ्यात्वी से बिना कारण नही बोले और सम्यग् दृष्टि बिना बोलाये भी ज्ञान-चर्चा करे ।
2 **संलाप** - मिथ्यात्वी से विशेष भाषण नही करे और सम्यग्

बार-बार अवश्य ज्ञान चर्चा करे ।

3. **दान-मिथ्यात्वी को गुरु** - बुध्दि से दान नही देवे, अनुकम्पा दान देने की तीर्थकर भगवान की मनाई नहीं है ।
4. **मान** - मिथ्यात्वी का अनावश्यक आदर-सम्मान नही करें और सम्यक्त्वी का बहुत आदर-सम्मान करें ।
5. **वन्दना** - मिथ्यात्वी को वन्दना नहीं करे ।
6. **गुणग्राम** - मिथ्यात्वी की प्रशंसा नहीं करें और सम्यक्त्वी के गुणो की प्रशंसा करे ।

ग्याहरवें बोले - स्थान छह

1. धर्म रुपी वृक्ष की सम्यक्त्व रुपी जड है ।
2. धर्म रुपी नगर की सम्यक्त्व रुपी फाटक है ।
3. धर्म रुपी महल की सम्यक्त्व रुपी नींव है ।
4. धर्म रुपी आभूषणों की सम्यक्त्व रुपी पेटी है ।
5. धर्म रुपी वस्तुओ की सम्यक्त्व रुपी दुकान है ।
6. धर्मरुपी भोजन का सम्यकत्व रुपी थाल है ।

बारहवें बोले - भावना छह

1. जीव है और जीव का लक्षण चेतना है ।
2. जीव द्रव्य नित्य-शाश्वत है ।
3. जीव आठ कर्मो का कर्त्ता है ।
4. जीव आठ कर्मो का भोक्ता है ।
5. भव्य जीव कर्मो को क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ।
6. सम्यग्ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप ये मोक्ष के उपाय हैं ।

Sarvoj Sethia

२. पच्चीस बोल का थोकड़ा

पहले बोले गति ४

नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति और देव गति

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – गति किसे कहते है ?

उत्तर –ससारी जीव मर कर जहॉ जाते है उसे गति कहते है।

प्रश्न – नरक गति किसे कहते है ?

उत्तर –नरकगति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीवो की गति को नरक गति कहते है । जो जीव अत्यन्त पाप कर्म करते है, वे मरकर नरक में जाते है, जहॉ उन्हे घोर कष्टो का सामना करना पडता है, उसे ही नरकगति कहते है।

प्रश्न – तिर्यच गति किसे कहते है ?

उत्तर – तिर्यच गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीवो की गति तिर्यच गति है । जो जीव झूठ बोलते है, छल-कपट करते है, व्यापार मे धोखा देते है, वे मरकर प्राय पशु पक्षी आदि की योनि में ही जाते है। उसे तिर्यच गति कहते है।

प्रश्न – मनुष्य गति कहते है ?

उत्तर – मनुष्य गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त जीवो की गति को मनुष्य गति कहते है । जो जीव स्वभाव से भद्र, विनयवान् और दयालु होते है, वे मरकर प्राय मनुष्य होते है, उसे ही मनुष्य गति कहते है।

प्रश्न – देवगति किसे कहते है ?

उत्तर –देवगति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवो की गति को देव गति कहते है । जो सराग सयमादि पालते है वह प्राय देव होते है ।

दूसरे बोले जाति ५

एकेन्द्रिय, व्दीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय

प्रश्न – जाति किसे कहते है ?

उत्तर – जिसमे जीव का जन्म हो अर्थात् समान इन्द्रिय वाले जीवो के समूह को जाति कहते है।

1 जिसके सिर्फ स्पर्श इन्द्रिय ही हो, उसे एकेन्द्रिय जाति कहते है, जैसे मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव।

2 जिन जीवों के स्पर्श और जिह्वा ये दो इन्द्रयाँ हो उसे व्दीन्द्रिय जाती कहते हैं, जैसे सीप, शंख आदि।

3 जिन जीवो के स्पर्श जिह्वा और नासिक ये तीन इन्द्रियाँ हो, उन्हे त्रिन्द्रीय कहते है, जैसे- जूँ, लीक, चींटी आदि।

4 जिन जीवों के स्पर्श, जिव्हा, नासिका और नेत्र चार इन्द्रिया हो उन्हें चौरेन्द्रिय कहते है। जैसे मक्खी, मच्छर, भवरा आदि।

5. जिन जीवों के स्पर्श, जिह्वा, नासिका, नेत्र और श्रोत्र ये पाँचो इन्द्रियाँ हो, उन्हे पंचेन्द्रिय जाति कहते है, जैसे मनुष्य, पशु-पक्षी, नारकीय तथा देवता आदि।

तीसरे बोले काया ६

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय।

प्रश्न – काय किसे कहते हैं ?

उत्तर – काय का अर्थ समूह है, पुद्‌गलों का समूह होने से पृथ्वी आदि शरीर को भी काया कहते है।

पृथ्वीकाय – पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे - मिट्टी, हिंगलु, हडताल, पत्थर, नमक, धातु, हीरा, पन्ना आदि

अपकाय – पानी ही जिन जीवो का शरीर है, जैसे-बरसात, ओस, धुअर, कुआ, बावडी, समुद्र आदि का पानी।

तेउकाय – अग्नि ही जिन जीवो का शरीर है, जैसे-झाल की अग्नि, बिजली की अग्नि, उल्कापात आदि

वाउकाय – हवा ही जिन जीवो का शरीर है, जैसे उक्कलिया वायु, मंद्रालिया वायु, धनवायु, तनवायु पूर्वादि की वायु आदि।

वनस्पति – वनस्पति ही जिन जीवो का शरीर है, जैसे - वृक्ष, लता, फल, फूल, शाक, भाजी गेहूँ, धान आदि। 1 बादर वनस्पति के दो भेद - **प्रत्येक और साधारण** एक शरीर में एक जीव हो उसे प्रत्येक कहते हे। जैसे आम, अगुर, मुग, मोठ, वड़, पीपल, गेहूँ, धान। **जिन जीवों के आहार, आयु, श्वासोच्छवास और काय ये साधारण (समान अथवा एक) हो उसको साधारण वनस्पति कहते हैं। जैसे जमीचंद, काई, उगता हुआ अंकुरादि।**

त्रसकाय – त्रसनामकर्म के उदय से, जो जीव सर्दी, गरमी आदि से बचने के लिये चल-फिर सकते है, उनको त्रस काय कहते है। जैसे बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय।

चौथे बोले इन्द्रियाँ ५

श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय

प्रश्न – इन्द्रियॉ किसे कहते है ?

उत्तर – इन्द्र का अर्थ आत्मा।जिसके माध्यम से छद्मस्थ आत्मा शब्द, रुप, रस, गध, स्पर्श का ज्ञान कराती है, उसे इन्द्रिय कहते है।

पॉचवें बोले पर्याप्ति ६

आहार पर्याप्ति शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोश्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति

प्रश्न – पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर – आहारादि के पुद्‌गलो को ग्रहण करने तथा उन्हे आहार शरीरादि रुप मे परिणमाने की आत्म शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते है।

छठे बोले प्राण १०

1. श्रोतेन्द्रिय बलप्राण 2. चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण 3. घ्राणेन्द्रिय बलप्राण 4. रसनेन्द्रिय बलप्राण 5. स्पर्शनेन्द्रिय बलप्राण 6. मनोबलप्राण 7. वचन बलप्राण 8. काय बलप्राण 9. श्वासोश्वास बलप्राण 10. आयुष्य बलप्राण

प्रश्न – प्राण किसे कहते है ?

उत्तर – जीवित रहने एव इन्द्रियादि की प्रवृत्ति करने के कारण भूत जीवकी शक्ति विशेष को प्राण कहते है। जिसके आधार से जीव टिका रहे उसे भी प्राण कहते है।

सातवें बोले शरीर ५

औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस् और कार्मण

प्रश्न – शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो समय-समय पर जीर्ण-शीर्ण होकर क्षीण होता जाता है, उसे शरीर कहते है।

प्रश्न – औदारिक शरीर किसे कहते है ?

उत्तर – औदारिक शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त शरीर तथा उदार-अर्थात् स्थूल पुद्‌गलो से बने हुए शरीर को औदारिक शरीर कहते है।

प्रश्न – वैक्रिय शरीर किसे कहते है ?

उत्तर – वैक्रिय शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त शरीर को अर्थात् जिस

शरीर से विविध क्रियाएँ (छोटे-बड़े, एक अनेक आदि नाना प्रक
के रुप बनाने की शक्ति) होती है, तथा वैक्रिय पुद्‌गलों से बना
शरीर उसे वैक्रिय शरीर कहते है।

प्रश्न – आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर – आहारक शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त, आहारक पुद्‌गलों से बना हुआ शरीर आहारक कहलाता है।

प्रश्न – आहारक शरीर कौन, कब और कैसा बनाते हैं ?

उत्तर – आहारक लब्धि से युक्त छट्ठे गुणस्थान वर्ती 14 पूर्व धारी मुनिराज प्राणी दया, तीर्थकरों की ऋद्धि का दर्शन, सूक्ष्म पदार्थो को समझने एवं संशय निवारण इन चार कारणो से मूल शरीर से अति विशुद्ध स्फटिक के समान निर्मल आहारक पुद्‌गलों का पुरुषाकार पुतला निकालते हैं। इसकी अवगाहना जघन्य देशोन एक हाथ, उत्कृष्ट परिपूर्ण एक हाथ की होती है।

प्रश्न – तैजस शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर – तैजस शरीर नामकर्म के उदय से तैजस पुद्‌गलों से बना शरीर तैजस शरीर कहलाता है। यह उष्मारुप और आहार को पचाकर उसे रसादि मे परिणत करने मे सहायक है व तेजोलब्धि का हेतु है।

प्रश्न – कार्मण शरीर किसे कहते है ?

उत्तर – कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त क्रमो को धारण करनेवाली पेटि को कार्मण शरीर कहते हे। तैजस् व कार्मण ये दो शरीर सभी संसारी जीवो में होते है।

आठवें बोले योग १५

1. सत्य मनोयोग 2. असत्य मनोयोग 3. मिश्र मनोयोग 4. व्यवहार मनोयोग 5. सत्यभाषा 6. असत्य भाषा 7. मिश्र भाषा, 8. व्यवहार भाषा 9. औदारिक काययोग 10. औदारिक मिश्र काययोग 11. वैक्रिय काययोग, 12. वैक्रिय मिश्र काययोग 13 आहारक 14. आहारक मिश्र काययोग 15. कार्मण काययोग।

प्रश्न – योग किसे कहते हैं ?

उत्तर – मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं।

नौवें बोले उपयोग १२

पाँच ज्ञान– आभिनिबोधिक (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यायज्ञान और केवलज्ञान। तीनअज्ञान–मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभगज्ञान

। चारदर्शन-चक्षु दर्शन,अचक्षु दर्शन,अवधि दर्शन और केवलदर्शन ।

प्रश्न – उपयोग किसे कहते है ?

उत्तर - ज्ञान दर्शन मे होती हुई आत्म प्रवृत्तिको उपयोग कहते है ।

दसवें बोले ८ कर्म

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य नाम, गोत्र और अन्तराय

प्रश्न – कर्म किसे कहते है ?

उत्तर - मिथ्यात्व , अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से जिन कार्मण वर्गणा रुप पुदगलो का आत्मा के साथ बध होता है, उसे कर्म कहते है । इसके 8 भेद हैं ।

1 **ज्ञानावरणीय कर्म** – जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढॉकता है ।

2 **दर्शनावरणीय कर्म** – जो आत्मा की देखने की शक्ति को ढॉकता है।

3 **वेदनीय कर्म** – जिस कर्म के फल से सुख-दु ख भोगा जाता है ।

4 **मोहनीय कर्म** – जिस कर्म से आत्मा धर्म से विमुख हो, पाप मे प्रवृत्त हो, क्रोध,मान, माया और लोभ मे समय व्यतीत करे, जिससे आत्मा मोहित (सत्, असत्, के ज्ञान से शून्य) हो जाए ।

5 **आयु कर्म** – जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियो मे रुका रहे ।

6 **नामकर्म** – जिस कर्म से आत्मा गति आदि नाना पर्यायो का धारण करे या अनुभव करे (शरीर आदि बने या जो जीवके अमूर्तत्व गुण को प्रगट न होने दे ।

7 **गौत्रकर्म** – जिस कर्म से जीव ऊँच-नीच कुलो मे उत्पन्न हो ।

8 **अतराय कर्म** – जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपयोग, और वीर्य मे विघ्न उपस्थित हो जाते है ।

ग्यारहवें बोले गुणस्थान १४

1. मिथ्यात्व गुणस्थान 2. सास्वादन गुणस्थान 3. सम्यग मिथ्या (मिश्र) गुणस्थान 4. अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान 5. देशविरति श्रावक गुणस्थान 6. प्रमादी साधु गुणस्थान 7. अप्रमादी साधु गुणस्थान 8. नियट्टि बादर गुणस्थान 9. अनियट्टि बादर गुणस्थान 10. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान 11. उपशांत मोहनीय गुणस्थान 12. क्षीण मोहनीय गुणस्थान 13. सयोगी केवली गुणस्थान 14. अयोगी केवली गुणस्थान ।

प्रश्न –जीवो की क्रमशः उन्नत अवस्थाओ को जैन शास्त्र में क्या कहते है

उत्तर – गुणस्थान । (जीव स्थान)

प्रश्न – गुणस्थान की परिभाषा क्या है ?

उत्तर - मोह कर्म के क्षय, उपशम और क्षयोपशम से तथा योग (मन, वचन और काय की प्रवृत्ति) के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र रुप आत्मा के गुणो मे जो तरतम भाव आता है, उसको गुणस्थान कहते है । आत्मा के क्रमिक विकास को भी गुणस्थान कहते हैं ।

बारहवें बोले पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय और २४० विकार

श्रोतेन्द्रिय के तीन विषय और बारह विकार – जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द ।

ये तीन शुभ और 3 अशुभ,इन 6 पर राग और 6 पर द्वेष इस प्रकार 12 विकार

चक्षुरिन्द्रिय के पॉच विषय और साठ विकार – काला, नीला, लाल, पीला और सफेद ।

ये पॉच सचित्त, 5 अचित्त, 5 मिश्र, ये 15 शुभ 15 अशुभ । इन 30 पर राग और 30 पर द्वेष । इस प्रकार 60 विकार ।

घ्राणेन्द्रिय के दो विषय और बारह विकार – सुरभिगध, दुरभिगध ।

ये 2 सचित्त, 2 अचित्त, 2 मिश्र इन 6 पर राग और 6 पर द्वेष, इस प्रकार 12 विकार ।

रसनेन्द्रिय के पॉच विषय और साठ विकार – तीखा, कडवा, कषायला, खट्टा और मीठा ।

ये 5 सचित्त, 5 अचित्त, 5 मिश्र ये 15 शुभ और 15 अशुभ 30 पर राग और 30 पर द्वेष । इस प्रकार 60 विकार ।

स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय और 96 विकार – कर्कश, कोमल, गुरु लघु, शील, उष्ण, शीत,रुक्ष और स्निग्ध ।

ये 8 सचित्त, 8 अचित, 8 मिश्र ये 24 शुभ और 24 अशुभ । 48 पर राग, 48 पर द्वेष, इस प्रकार 96 विकार ।

टिप्पणी : विकारों के स्वरुप को इस प्रकार समझा जा सकता है । यथा श्रोतेन्द्रिय के तीन विषय जीव शब्द अजीव शब्द एव मिश्र शब्द तीन शुभ एव तीन अशुभ यानी जीव शब्द शुभ जीव शब्द अशुभ, अजीव शब्द शुभ अजीव शब्द अशुभ मिश्र शब्द शुभ मिश्र शब्द अशुभ ।

[illegible] 6 पर राग एव 6 पर द्वेष अर्थात

पहला विकार	-	जीव शब्द शुभ पर राग
दूसरा विकार	-	जीव शब्द शुभ पर द्वेष
तीसरा विकार	-	जीव शब्द अशुभ पर राग
चौथा विकार	-	जीव शब्द अशुभ पर द्वेष
पॉचवा विकार	-	अजीव शब्द शुभ पर राग
छट्ठा विकार	-	अजीव शब्द शुभ पर द्वेष
सातवॉं विकार	-	अजीव शब्द अशुभ पर राग
आठवॉं विकार	-	अजीव शब्द अशुभ पर द्वेष
नौवा विकार	-	मिश्र शब्द शुभ पर राग
दसवॉं विकार	-	मिश्र शब्द शुभ पर द्वेष
ग्यारहवॉं विकार	-	मिश्र शब्द अशुभ पर राग
बारहवॉं विकार	-	मिश्र शब्द अशुभ पर द्वेष

यह बात ध्यान देने याग्य है कि राग एव द्वेष ही विकार हैं एव इनके गुड़ने पर ही विकार की सज्ञा बनती है।

यथा - चक्षुइन्द्रिय मे काले वर्ण के बारह विकार इस प्रकार समझे जा सकते है।

1 काला सचित शुभ पर राग
2 काला सचित शुभ पर द्वेष
3 काला सचित अशुभ पर राग
4 काला सचित अशुभ पर द्वेष
5 काला अचित शुभ पर राग
6 काला अचित शुभ पर द्वेष
7 काला अचित अशुभ पर राग
8 काला अचित अशुभ पर द्वेष
9 काला मिश्र शुभ पर राग
10 काला मिश्र शुभ पर द्वेष
11 काला मिश्र अशुभ पर राग
12 काला मिश्र अशुभ पर द्वेष

काले के समान ही नीले, लाल, पिले एव सफेद रग के लिए सभ्रम लेना चाहिए इसी तरह से शेष इन्द्रियों के विकारों के सम्बन्ध मे जान लेना चाहिए।

प्रश्न – विषय किसे कहते है ?

उत्तर – इन्द्रियो के द्वारा जीव जिन शब्द, रुप आदि को ग्रहण करता है,उसे विषय कहते है।

प्रश्न – विकार किसे कहते है ?

उत्तर – विषयो पर होनेवाली राग-द्वेष परिणति को विकार कहते है।

तेरहवें बोल मिथ्यात्व के १० भेद

1. जीव को अजीव श्रध्दे तो मिथ्यात्व 2. अजीव को जीव श्रध्दे तो मिथ्यात्व 3. धर्म को अधर्म श्रध्दे तो मिथ्यात्व 4. अधर्म को धर्म श्रध्दे तो मिथ्यात्व 5. साधु को असाधु श्रध्दे तो मिथ्यात्व 6. असाधु को साधु श्रध्दे तो मिथ्यात्व 7. संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रध्दे तो मिथ्यात्व 8. मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रध्दे तो मिथ्यात्व 9. आठ कर्मो से मुक्त को अमुक्त श्रध्दे तो मिथ्यात्व 10. आठ कर्मो से अमुक्त को मुक्त श्रध्दे तो मिथ्यात्व।

प्रश्न – मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर –मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव, अजीव आदि जो तत्व जैसे हैं,वैसा नही मानना न्यूनाधिक मानना तथा विपरीत मानना मिथ्यात्व है।

चौदहवें बोले छोटी नवतत्व के ११५ भेद

नव तत्वों के नाम – 1. जीव तत्व 2. अजीव तत्व 3. पुण्य तत्व 4. पाप तत्व 5. आश्रव तत्व 6. संवर तत्व 7. निर्जरा तत्व 8. बंध तत्व 9 मोक्षतत्व।

नव तत्वों के भेद – जीव के 14, अजीव के 14, पुण्य 9, पाप के 18, आस्त्रव के 20, संवर के 20, निर्जरा के 12, वध के 4, मोक्ष के 4, कुल मिलाकर 115 भेद हुए।

प्रश्न – तत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – वस्तु के (जीव, अजीव आदि के) वास्तविक स्वरुप को तत्व कहते है।

जीव के १४ भेद

सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
वादर एकेन्द्रय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
द्वीन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
त्रीन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
चतुरिन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
असन्नी पंचेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
सन्नी पंचेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त

प्रस्न – जीव किसे कहते हैं?

उत्तर –जो द्रव्य प्राण और भाव प्राण को धारण करता है अर्थात् चेतन

लक्षण से युक्त है उसे जीव कहते है।

प्रश्न – सूक्ष्म जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जो सूक्ष्म पृथ्वी, पानी आदि शरीरधारी जीव है, उनको ही सूक्ष्म जीव कहते है। वे जीव सारे लोक मे व्याप्त हैं। उनकी आयु पूर्ण होने पर ही उनकी मृत्यु होती हैं। उनको कोई किसी भी शस्त्र से नही मार सकता। आग उन्हे जला नही सकती और न ही पानी उन्हे गला सकता है। असंख्यात सूक्ष्म पृथ्वी कायिक आदि जीवो के शरीर इकट्ठे हो जाने पर भी छद्मस्थ को दिखाई नही देते है।केवलज्ञानी ही इन्हे देख सकते है। सूक्ष्म नामकर्म का उदय एकन्द्रिय मे ही होता है।

प्रश्न – बादर एकेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर – बादर नाम कर्म के उदय से जो स्थूल शरीरधारी जीव है, उनको बादर एकेन्द्रिय कहते है। वे सारे लोक मे व्याप्त नही है। वे आख से या यंत्र की सहायता से देखे जा सकते हैं। उन पर शस्त्र का प्रभाव पडता है। वे दूसरो के लिये भी अनुकूल प्रतिकूल होते हैं। पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय आदि पांचो स्थावरो मे वे होते है। सचित्त मिट्टी, पानी, लीलोतरी आदि के रुप मे जिनका शरीर हम प्रतिदिन देखते है, वे बादर एकेन्द्रिय जीव है। एकेन्द्रिय जीव सुक्ष्म और बादर दोनो ही होते है। किन्तु बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय सभी जीव बादर ही होते है।

प्रश्न – पर्याप्त और अपर्याप्त किसे कहतें है ?

उत्तर –जिस जीव की जितनी पर्याप्तियॉ कही गई है, उन सभी पर्याप्तियो को पूर्ण कर लेने पर वह जीव पर्याप्त कहलाता है। एकेन्द्रिय जीव को आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छवास ये चार पर्याप्तियॉ होती है। जब जीव इनको पूरा कर लेता है,तब वह पर्याप्त कहलाता है। जब तक वह आहार, शरीर और इन्द्रिय इन तीनो को पूर्ण कर श्वासोच्छवास पर्याप्ति को पूरा नही किया होता है, तब तक वह अपर्याप्त कहलाता है। ऐसे ही द्वीन्द्रियादि जीवो को भी जानना।

प्रश्न – संज्ञी और असंज्ञी किसे कहते है ?

उत्तर – जो मनवाले है, उनको संज्ञी कहते है और जिनके मन नही है, उनको असज्ञी कहते है। मन पचेन्द्रियो के ही होता है इसलिए जिन पंचेन्द्रिय जीवो के मन हैं, वे सज्ञी कहलाते है। जैसे-गर्भज मनुष्य और तिर्यच, औपपातिक देव या नारकीय जीव, जिन जीवो के मन नही है, वे असज्ञी कहलाते है, जैसे एकइन्द्रिय, बेइन्द्रिय,

तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय समूच्छिर्म मनुष्यादि के जीव एवं बिना गर्भ से उत्पन्न तिर्यच पंचेन्द्रिय जीव ।

अजीव के १४ भेद

अरुपी अजीव के दस भेद

(1) धर्मास्तिकाय के तीन भेद – स्कंध, देश और प्रदेश

1) धर्मास्तिकाय का स्कध 2) धर्मास्तिकाय का देश 3) धर्मास्तिकाय का प्रदेश

(2) अधर्मास्तिकाय के तीन भेद - स्कंध, देश और प्रदेश

4) अधर्मास्तिकाय का स्कध 5) अधर्मास्तिकाय का देश 6) अधर्मास्तिकाय का प्रदेश

(3) आकाशस्तिकाय के तीन भेद - स्कंध, देश और प्रदेश

7) आकाशस्तिकाय का स्कंध 8) आकाशस्तिकाय का देश 9) आकाशस्तिकाय का प्रदेश

और दसवां काल । ये दस भेद अरुपी अजीव के होते हैं । रुपी पुदगल के चार भेद हैं –

1) स्कंध 2) स्कध का देश 3) स्कंध के प्रदेश 4) परमाणु पुदगल ये कुल 14 भेद अजीव के होते है ।

प्रश्न – अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर – अस्तिकाय अर्थात् प्रदेश काय अर्थात् समुह यानि प्रदेशो के समूह को अस्तिकाय कहते है ।

प्रश्न – धर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर –जीव और पुद्गल जिस द्रव्य की सहायता से हलन-चलन करतेहै, उस द्रव्य का नाम धर्मास्तिकाय है, जैसे मछली के हलन-चलन मे पानी सहायक होता है । यह द्रव्य चलने की प्रेरणा नही देता है, परन्तु चलायमान पदार्थ का सहायक होता है ।

प्रश्न – अधर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीव और पुद्गलों की स्थिति मे सहायक द्रव्य का नाम अधर्मास्तिकाय है, जैसे थके हुए पथिक को ठहरने मे छाया उपकारक होती है । यह द्रव्य स्थिर होते हुए पदार्थ का सहायक है जाता है ।

प्रश्न – आकाशास्तिकाय किसे कहते है ?

उत्तर – जो सब द्रव्यों को जगह देता है उसे आकाशास्तिकाय कहते है । जैसे दूध, शक्कर को और पानी नमक को स्थान देता है । इसके

दो भेद होते है - लोकाकाश और अलोकाकाश । लोकाकाश मे सभी द्रव्य रहे हुए है जबकि अलोकाकाश मे आकाश के सिवाय और कोई द्रव्य नही है क्योकि हलन-चलन मे सहायता करने वाला धर्मास्तिकाय द्रव्य लोकाकाश तक ही सीमित है ।

प्रश्न – आकाशास्तिकाय के कितने भेद है ?

उत्तर – आकाश तो अनादि अनत अखड एक द्रव्य है, लेकिन लोकाकाश (जहाँ सभी द्रव्य रहते है) और अलोकाकाश (सिर्फ आकाश) की अपेक्षा इसके दो भेद है ।

प्रश्न – काल द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर – जो द्रव्यो के परिणमने में सहायक हो अर्थात् नये-पुराने, छोटे-बडे आदि की पहचान जिस द्रव्य से होती है, उसे काल द्रव्य कहते है। समय, आवलिका मुहूर्त, प्रहर, दिन-रात, मास, वर्ष आदि व्यवहार इसी द्रव्य के आधार से किये जाते है ।

प्रश्न – काल द्रव्य को आस्तिकाय क्यो नही कहा जाता है ?

उत्तर – काल अप्रदेशी होने अर्थात् प्रदेशो का समूह रुप न होने से काल द्रव्य को अस्तिकाय नही कहा गया है ।

प्रश्न – पुद्गलास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमे वर्ण, गध, रस, स्पर्श हो जो सडन-गलन स्वभाव वाला हो उसे पुद्गल कहते हैं तथा पुद्गलो के समूह को पुद्गलास्तिकाय कहते है । संसार मे हम जिन पदार्थो को देखते है, वे सब पुद्गल है ।सडना - गलना बिखरना और एकत्रित होना, ये सब क्रियाएँ पुद्गलो मे होती है । जब तक जीव के साथ इसका सम्बन्ध बना रहा है, तब तक इनके साथ सचित्त का व्यवहार किया है । जीव के सम्बन्ध छुटते ही ये अपने असली स्वरुप मे अचित्त रह जाते है, जैसे निर्जीव शरीर । यह द्रव्य संसारी जीवो की प्रवृत्तियो में विशेष सहायक होता है ।

प्रश्न – प्रदेश किसे कहते है ?

उत्तर - प्रदेश वह सूक्ष्म भाग कहलाता है, जिसके दूसरे भाग की कल्पना भी न की जा सकती हो और स्कध के साथ अवयव रुप से मिला हुआ हो ।

अनेक प्रदेश मिल के **देश** कहलाते है और अनेक देशो का समूह **स्कन्ध** कहलाता है । देश भी स्कन्ध से मिले हुए ही होते है, स्वतत्र नही रहते ।

प्रश्न – परमाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर - पुद्‌गल के अति सूक्ष्म भाग को, जिसका फिर हिस्सा न किया जा सके, परमाणु कहते है । **परमाणु** और **प्रदेश** मे यही अन्तर है कि प्रदेश अपने देश और स्कंध से मिले हुए होते है जबकि परमाणु उससे पृथक होता है । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के प्रदेश पृथक नहीं हो सकते है । अत इन द्रव्यो मे परमाणु नही कहा गया है । रुपी अजीव द्रव्य मे ही परमाणु होते है । इनको हम ऑख से या किसी यंत्र के सहारे से भी नही देख सकते है ।

पुण्य के ९ भेद

1 **अन्न पुण्य** - अन्न देने से पुण्य होता है । 2. **पान पुण्य** - पानी देने से पुण्य होता है । 3 **लयन पुण्य** - जगह देने से पुण्य होता है । 4 **शयन पुण्य** - शय्या, पाट, पाटला आदि देने से पुण्य होता है । 5. **वस्त्र पुण्य** - वस्त्र देने से पुण्य होता है । 6 **मन पुण्य** - शुभ मन रखने से पुण्य होता है । 7 **वचन पुण्य** - शुभ वचन बोलने से पुण्य होता है । 8. **काय पुण्य** - शरीर द्वारा सेवा तथा विनय करने से पुण्य होता है । 9. **नमस्कार पुण्य** - गुणवान को नमस्कार करने से पुण्य होता है ।

प्रश्न – पुण्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो आत्मा को पवित्र करे और जिससे प्राणियो को सुख की प्राप्ति हो, उसे पुण्य कहते है ।

पाप के १८ भेद

1. **प्राणातिपात** - जीवों की हिंसा करना । 2.**मृषावाद** - झूठ बोलना 3. **अदत्तादान** - चोरी करना । 4. **मैथुन** - कुशील सेवन करना । 5. **परिग्रह**- धन – सग्रह की लालसा करना । 6. **क्रोध** - रोष करना । 7. **मान** - अहंकार करना । 8. **माया** - छल - कपट करना । 9. **लोभ** - लालच, तृष्णा बढाना 10. **राग** - स्नेह, प्रीति करना । 11. **द्वेष** - वेर 12. **कलह** - क्लेश करना 13.**अभ्याख्यान** - झूठा कलंक चढाना 14. **पैशुन्य** - चुगली करना । 15. **पर–परिवाद** - दुसरो की निंदा करना । 16. **रति – अरति** - मनोज्ञ वस्तुओ पर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ वस्तुओं पर नाराज होना । 17. **माया–मृषावाद** - छल - कपट के साथ झूठ बोलना । 18. **मिथ्यादर्शन शल्य** - कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रध्दा रखना ।

प्रश्न – पाप किसे कहते है ?

उत्तर – जो आत्मा को मलिन करे, जो अशुभ योगो से बधे और दु ख पूर्वक भोगा जाय उसे पाप कहते है ।

आस्रव के २० भेद

1. **मिथ्यात्व** - असत्य विचार करे तो आस्त्रव । 2. **अव्रत** - प्रत्याख्यान नही करे तो आस्त्रव । 3. **प्रमाद** - पाच प्रमाद का सेवन करे, सो आस्त्रव । 4. **कषाध** - क्रोध, मान, माया और लोभ का सेवन करे सो आस्त्रव । 5.**अशुभ योग प्रवर्तावे** सो आस्त्रव । 6. **प्राणातिपात** - जीव हिसा करे सो आस्त्रव । 7. **मृषावाद** - झूठ बोले सो आस्त्रव । 8. **अदत्तादान** - चोरी करे सो आस्त्रव । 9. **मैथुन** - कुशील सेवे सो आस्त्रव । 10. **परिग्रह** - धन सग्रह करे सो आस्त्रव । 11. **श्रोत्रेन्द्रिय** - वश मे नही रखे सो आस्त्रव । 12. **चक्षुरेन्द्रिय** - वश मे नही रखे सो आस्त्रव । 13. **घ्राणेन्द्रिय** - वश मे नही रखे सो आस्त्रव । 14. **रसनेन्द्रिय** - वश मे नही रखे सो आस्त्रव । 15. **स्पर्शनेन्द्रिय** - वश मे नही रखे सो आस्त्रव । 16. **मन** – वश मे नही रखे सो आस्त्रव । 17. **वचन** - वश मे नही रखे सो आस्त्रव । 18. **काया** - वश मे नही रखे सो आस्त्रव । 19. **भड** - उपकरण अयतना से लेवे और रखे सो आस्त्रव । 20. **सुई** - कुशाग्र मात्र कोई भी वस्तु असावधानी से लेवे और रखे सो आस्त्रव ।

प्रश्न – आस्त्रव तत्व किसे कहते है ?

उत्तर – जिस क्रिया द्वारा आत्मा मे शुभ, अशुभ कर्म आते है उसे आस्त्रव कहते है । जीव रुपी तालाब मे कर्म रुपी पानी आस्त्रव रुपी नालो द्वारा आता है ।

संवर के २० भेद

1. **समकित** सवर । 2. **व्रत पच्चक्खाण** करे, सो सवर । 3. **प्रमाद** नही करे, सो सवर । 4. **कषाय नही करे, सो सवर** । 5. **शुभ योग** प्रवर्तावे तो सवर । 6. **प्राणातिपात** विरमण जीव हिंसा न करे, सो सवर । 7. **मृषावाद** - विरमण झूठ नही बोले, सो सवर । 8. **अदत्तादान** विरमण चोरी नही करे, सो सवर । 9. **मैथुन** विरमण कुशील नही सेवे, सो सवर । 10. **परिग्रह** - विरमण मूर्च्छा सग्रह नही रखे, सौ सवर । 11. **श्रोत्रेन्द्रिय** - वश मे करे, सो सवर । 12 **चक्षुन्द्रिय** - वश मे करे, सो सवर । 13. **घ्राणेन्द्रिय** - वश मे करे, सो सवर । 14. **रसनेन्द्रिय** - वश मे रखे सो सवर । 15. **स्पर्शनेन्द्रिय** - वश मे रखे सो सवर । 16. **मन** - वश में रखे सो सवर । 17. **वचन** - वश मे रखे

सो सवर । **18. काया** - वश में रखे सो संवर । **19. भंड** - उपकरण यतना से लेवे और रखे, सो संवर । **20. सुई** - कुशाग्र मात्र यतना से लेवे और यतना से रखे सो, सवर ।

प्रश्न – संवर किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभकर्मो का आना रुकता है, उसे सवर कहते है । जीव रुपी तालाब मे आस्त्रव रुपी नालो द्वारा आता हुआ कर्म रुपी पानी सम्यक्त्व, व्रत, प्रत्याख्यानादि द्वारा रुकता है ।

निर्जरा के १२ भेद

1. **अनशन** (उपवास आदि) 2. **ऊनोदरी** (कम खाना), 3 **भिक्षा चर्या** (साधुवृत्ति के अनुसार भिक्षा मांगना) 4 **रस–परित्याग** (घृतादि का त्याग), 5 **कायक्लेश** (आसनादि लगाना) 6. **प्रतिसंलीनता** (इन्द्रियो को वश मे करना) 7. **प्रायश्चित** (दण्ड लेना) 8 **विनय** (विनय करना) 9. **वैयावृत्य** (सेवा करना) 10 **स्वाध्याय** (पढाना-पढना) 11 **ध्यान** (योगाभ्यास करना) 12 **कायोत्सर्ग** (काया को ध्यान मे स्थिर रखना)

प्रश्न – निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा पर लगे हुए कर्मो का आंशिक रुप से अलग होना निर्जराहै। उपवास करना,भूख से कम खाना, स्वादिष्ट पदार्थो का त्याग करना, दूसरो की सेवा करना, ज्ञान की उपासना करना आदि 12 प्रकार के तप से आत्मा निर्मल बन कर सिद्धी को प्राप्त कर लेती है। निर्जरा के दो भेद - सकाम और अकाम । सकाम निर्जरा ही मुक्ति को प्राप्त करने मे सहायक बनती है ।

बंध के ४ भेद

1. प्रकृति बंध 2. स्थिति बंध 3. अनुभाग बंध 4. प्रदेश बंध

प्रश्न – बंध तत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – कषाय व योग के कारण आत्मा के साथ कर्म पुदगलो के मिलने को बध कहते है। जैसे दूध और पानी, लोहपिण्ड ओर अग्नि एकमेक हो जाते है, वेसे ही आत्मप्रदेश के साथ कर्मो के मिलने को वंध कहते है । आठ कर्मो के स्वभाव को **प्रकृति बंध** कहते हे । आठ कर्मो के काल परिमाण को स्थिति वध कहते हे । आठ कर्मो के तीव्र

मदादि रस को अनुभाग बध कहते है। कर्म पुद्गलो के दल का आत्मा के साथ बध होना **प्रदेश बध** कहलाता है ।

प्रकृति बध और **प्रदेश बध** का कारण योग है तथा स्थिति बध और अनुभाग बध का कारण कषाय ।

मोक्ष के ४ भेद

1. सम्यक् दर्शन 2. सम्यक ज्ञान 3. सम्यक् चारित्र और

4. सम्यक् तप ।

सम्यक् दर्शन - जिनेश्वर भगवान के वचनो पर शुद्ध श्रद्धा रखना ।
सम्यक् ज्ञान - श्रद्धापूर्वख सच्चे ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते हैं ।
सम्यक् चारित्र - दर्शन और ज्ञान पूर्वक सत् आचरण करना ।
सम्यक् तप - आत्मशुद्धि के लिए विशिष्ट अनुष्ठान करना ।

प्रश्न – मोक्ष किसे कहते है ?

उत्तर - जब आत्मा सर्वथा कर्म रहित होकर जन्म-मरण के बधन से मुक्त हो जाती है तो उसे मोक्ष कहा जाता है । मोक्ष दशा मे न शरीर रहता है और न शरीर मे काम आनेवाले ससारी भोग ही रहते है । उस समय यही जीव आत्मा परमात्मा बन जाता है । निर्जरा मे कर्मो का नाश अधूरा रहता है, जबकि मोक्ष मे कर्मो का पूर्णतया नाश हो जाता है । यही इन दोनो मे भेद है ।

पन्द्रहवें बोले आत्मा ८

1. द्रव्य आत्मा 2. कषाय आत्मा 3. योग आत्मा 4. उपयोग आत्मा 5. ज्ञान आत्मा 6. दर्शन आत्मा 7. चारित्र आत्मा 8. वीर्य आत्मा

1 **द्रव्य आत्मा** - त्रिकालवर्ती, असख्य प्रदेशी, द्रव्य रुप आत्मा ।
2 **कषाय आत्मा** - क्रोध, मान, माया, लोभ रुप कषाय युक्त आत्मा ।
3 **योग आत्मा** - मन, वचन और काया रुप योग युक्त आत्मा ।
4 **उपयोग आत्मा** - पाच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन रुप उपयोग विशिष्ट आत्मा ।
5 **ज्ञान आत्मा** - मतिज्ञानादि (साकारोपयोग) रुप ज्ञान युक्त आत्मा ।
6 **दर्शन आत्मा** - चक्षुदर्शनादि (निराकारोपयोग)रुप दर्शन युक्त आत्मा ।
7 **चारित्र आत्मा** - सामायिक चारित्र आदि रुप चारित्र विशिष्ट आत्मा।
8 **वीर्य आत्मा** - उत्थान रुप वीर्य युक्त आत्मा ।

सोलहवें बोले दण्डक २४

सात नारकी का एक दंडक । सात नेरयिक पृथ्वियों मे रहते है उन पृथ्वियों के नाम धम्मा, वंशा, शीला, अंजणा, रिड्डा, मघा और माघवई।

इनके गोत्र-रत्ना-प्रभा, शर्करा-प्रभा, बालुका-प्रभा, पंक-प्रभा, धूम-प्रमा, तमः-प्रभा और तमस्तमः-प्रभा ।

दस भवनपतियों के दस दंडक उनके नाम - 1. असुरकुमार 2. नागकुमार 3. सुवर्णकुमार 4. विद्युतकुमार 5. अग्निकुमार 6. द्वीपकुमार 7. उदधिकुमार 8. दिशाकुमार 9. पवनकुमार 10. स्तनितकुमार ।

पांच स्थावरों के पांच दण्डक । पांच स्थावरों के नाम पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ।

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक ; तीन विकलेन्द्रियों के नाम - द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ।

तिर्यच पंचन्द्रिय का एक दण्डक, मनुष्य का एक दण्डक वाणव्यन्तर देवता का एक दण्डक, ज्योतिषी देवता का एक दण्डक, वैमानिक देवता का एक दण्डक ।

ये सब चौबीस दण्डक हुए । (1+10+5+3+1+1+1+1+1=24) ।

प्रश्न - दण्डक किसे कहते है ?

उत्तर - अपने किये गये कर्मो का जहाॅ दण्ड भोगा जाता है,वे स्थानदण्डक कहे जाते है ।

प्रश्न -विकलेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिनकी पॉचो इन्द्रियॉ पूरी न मिली हो । जैसे बेइन्द्रिय , तेईन्द्रिय, चउइन्द्रिय आदि कही-कही एकेन्द्रिय को भी विकलेन्द्रिय माना गया हैं ।

प्रश्न - तिर्यंच पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - तिर्यच गति वाले ऐसे जीव, जिन्हें पॉचो इन्द्रियॉ पूरी मिली हो जैसे मछली, पशु, पक्षी, सर्प, नेवला आदि ।

सत्रहवें बोले लेश्या ६

1. कृष्ण लेश्या 2. नील लेश्या 3. कापोत लेश्या 4. तेजो लेश्या 5. पद्म लेश्या, 6. शुक्ल लेश्या ।

प्रश्न - लेश्या किसे कहते है ?

उत्तर – आत्मा के शुभाशुभ परिणामो को लेश्या कहते है ।

छह लेश्या का दृष्टान्त

यदि जामुन के वृक्ष पर फल लगे हुए हो और उनको खाने की इच्छा हो तो कृष्ण लेश्या वाला वृक्ष की जड काटकर फल खाना चाहेगा । नील लेस्या वाला बडी-बडी शाखाए काटकर फल खाना चाहेगा। कापोत लेश्या वाला छोटी 2 शाखाए काटकर फल खाना चाहेगा । तेजो लेश्या वाला फलो के गुच्छे तोडकर फल खाना चाहेगा ।पद्म लेश्या वाला सिर्फ पके हुए फलो को तोडकर खाना चाहेगा । शुक्ल लेश्या वाला धरती पर पडे हुए फल खाकर ही सतोष कर लेगा ।

इन छह लेश्याओ मे पहले की तीन अशुभ और अधर्म लेश्याएँ है । इन लेश्याओ मे अशुभ गति का बध पडता है । शेष तीन लेश्याये शुभ व धर्म-लेश्याये है । इन लेश्याओ मे शुभ गति का बंध पडताहै।

अठारहवें बोले दृष्टि ३

1. सम्यक् दृष्टि 2. मिथ्या दृष्टि 3. मिश्र दृष्टि ।

प्रश्न – दृष्टि किसे कहते है ?

उत्तर – यद्यपि दृष्टि शब्द का अर्थ नेत्र ज्योति या देखने की शक्ति होता है, परन्तु प्रस्तुत प्रकरण मे दृष्टि का अर्थ मान्यता या सिद्धात है । देव, गुरु धर्म एव जीवादि तत्व विषयक श्रद्धाविशेष को दृष्टि कहते है ।

सम्यक् दृष्टि - वीतराग देव की वाणी पर श्रद्धा रखने वाला ।

मिथ्या दृष्टि - वीतराग वाणी को देशत या सर्वत मिथ्या मानता है ।

मिश्र दृष्टि - वीतराग वाणी के प्रति न रुचि हो न अरुचि हो ।

उन्नीसवें बोले ध्यान ४

1. आर्तध्यान 2. रौद्र ध्यान 3. धर्म ध्यान और 4. शुक्ल ध्यान

प्रश्न– ध्यान किसे कहते है ?

उत्तर - एक वस्तु या विषय परमन को स्थिर करना ध्यान है। पहले के दोनो ध्यान अशुभ है और शेष दोनो शुभ है ।

बीसवें बोले षट्द्रव्यों के ३० भेद

षट् द्रव्य के नाम : **1. धर्मास्तिकाय 2. अधर्मास्तिकाय 3. आकाशास्तिकाय 4. काल द्रव्य 5. जीवास्तिकाय 6. पुद्गलास्तिकाय।**

1. धर्मास्तिकाय के 5 भेद

धर्मास्तिकाय को पॉच बोलों से जाना जाता है - 1 **द्रव्य से** एकद्रव्य 2 **क्षेत्र से** सम्पूर्ण लोक प्रमाण 3. **काल से** - आदि अंत रहित 4. **भाव से** - वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित, अर्थात् अरुपी अजीव शाश्वत लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशी है।5. **गुण से** - चलन गुण। पानी में मछली का दृष्टात्। जैसे पानी के आधार से मछली चलती है वैसे ही जीव और पुद्गल दोनो धर्मास्तिकाय के आधार से चलते हैं।

2. अधर्मास्तिकाय के 5 भेद

अधर्मास्तिकाय को 5 बोलो से जाना जाता है। 1. **द्रव्य से** - एक द्रव्य। 2. **क्षेत्र से** - सम्पूर्ण लोक प्रमाण। 3. **काल से**- आदि अंत रहित। 4 **भाव से** - वर्ण नही, गंध नही, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरुपी अजीव शाश्वत लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशी हैं। 5. **गुण से** - स्थिर गुण थके हुए पथिक को छाया का दृष्टांत। जैसे थके हुए पथिक को छाया का आधार है, उसी तरह ठहरे हुए जीव और पुद्गल को अधर्मास्तिकाय का आधार है।

3. आकाशास्तिकाय के 5 भेद

आकाशास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है। 1 **द्रव्य से** - एक द्रव्य। 2. **क्षेत्र से** - लोकालोक प्रमाण। 3 **काल से** - आदि अन्त रहित। 4. **भाव से** - वर्ण, गंध रस और स्पर्श रहित। अरुपी, अजीव शाश्वत सर्वव्यापी और अनन्त प्रदेशी है। 5. **गुण से** - स्थान देने का गुण। भीत में खुँटी का दृष्टात। जैसे खुँटी को भींत स्थान देने में सहायक है। वैसे ही धर्मास्तिकायादि पॉच द्रव्यो को आकाशस्तिकाय स्थान देने में सहायक है।

4. काल के 5 भेद

काल द्रव्य को पॉच बोलो से जाना जाता है। 1 **द्रव्य से** - अनन्त द्रव्य। 2. **क्षेत्र से**- अढ़ाई द्वीप प्रमाण। 3. **काल से** - आदि अत रहित। 4. **भाव से** - वर्ण, गध और स्पर्श रहित। अरुपी शाश्वत और अप्रदेशी है। 5 **गुण से** - वर्तन गुण। नये को पुराने और पुराने को नष्ट करे। कपड़े को कैची का दृष्टात। प्रदेश रहित होने से काल अस्तिकाय नहीं है।

5. जीवास्तिकाय के 5 गुण

जीवस्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है। 1 **द्रव्य से** - अनन्त जीव द्रव्य। 2 **क्षेत्र से** - सम्पूर्ण लोक प्रमाण। 3 **काल से** - आदि अत रहित। 4 **भाव से** - वर्ण, गध और स्पर्श रहित। अरुपी शाश्वत, लोकव्यापी और अनन्त प्रदेशी है। एक आत्मा आश्रित शरीर व्यापी एवं असख्यात प्रदेशी है। 5 **गुण से** - उपयोग गुण। चन्द्रमा का दृष्टात। जैसे कितने ही बादलो के द्वारा ढक जाने पर भी चन्द्रमा का कुछ कुछ प्रकाश रहता है। उसी प्रकार कितने भी क्रमो का आवरण आजाने पर भी जीव मे उपयोग का कुछ न कुछ अश अनावृत्त रहता है।

6. पुद्गलास्तिकाय के 5 भेद

पुद्गलास्तिकाय को 5 बोलो से जाना जाता है। 1 **द्रव्य से** - अनन्त द्रव्य। 2 **क्षेत्र से** - सम्पूर्ण लोक प्रमाण। 3 **काल से** - आदि अत रहित। 4 **भाव से** - रुपी अर्थात् वर्ण, गध, रस और स्पर्श युक्त। अजीव शाश्वत और सख्यात-असख्यात एव अनन्त प्रदेशी है। 5 **गुण से** - सडन गलन गुण। बादल का दृष्टात। बादल की तरह पुद्गल भी मिलते और बिखरते है।

प्रश्न – द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर - भूत, भविष्य और वर्तमान तीनो काल मे रहेन वाल गुण और पर्यायो का जो आधार होता है , उसे द्रव्य कहते है।

प्रश्न – लोक किसे कहते है ?

उत्तर – जिसमे धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य हों उसे लोक कहते है।

प्रश्न – अलोक किसे कहते है ?

उत्तर – जिसमे आकाश के सिवाय अन्य द्रव्य का अस्तित्व न हो उसे अलोक कहते है।

प्रश्न – गुण किसे कहते है ?

उत्तर – जो द्रव्य के आश्रित हो, द्रव्य के सब अशो मे हर समय हो उसे गुण कहते है।

इक्कीसवें बोले राशि २

1. जीव राशि 2. अजीव राशि

प्रश्न – राशि किसे कहते है ?

उत्तर - समूह, वर्ग या ढेर को राशि कहते है। जीव राशि के 563 भेद और अजीव राशि के 560 भेद होते है।

* जीव के भेद पेज न 84 पर देखे।

बाइसवें बोले श्रावक के १२ व्रत

1. **पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत** मे श्रावक त्रस जीवो की हिंसा करे नहीं, करावे नही, मन, वचन और काया से । त्रस जीवो को मारने का त्याग करे,स्थावर की मर्यादा करे।
2. **दूसरे स्थूल मृषावद विरमण** मे श्रावक - मोटा (स्थूल) झूठ बोले नही,बोलावें नही, मन वचन और काया से ।
3. **तीसरे स्थूल अतादान विरमण व्रत** मे श्रावक मोटी चोरी करे नहीं, करावे नही, मन, वचन और काया से ।
4. **चौथे स्थूल परदार-विवर्जन एवं स्वदार-संतोष रुप मेथुन** विरमण **व्रत** मे श्रावक पर-स्त्री का सेवन का त्याग करे और अपनी स्त्री मे मर्यादा करे ।
5. **पांचवाँ स्थूल परिग्रह परिमाण विरमण व्रत** मे श्रावक परिग्रह की मर्यादा करे ।
6. **छठे, दिशा परिमाण व्रत** मे श्रावक छहो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊँची-नीची दिशाओ की मर्यादा करे ।
7. **सातवें उपभोग, परिभोग, परिमाण, व्रत** में श्रावक 26 बोल की मर्यादा करे, 15 कर्मादान का त्याग करे ।
8. आठवे - श्रावकजी अनर्थदण्ड का त्याग करे ।
9. **नौवें सामायिक व्रत** मे श्रावक प्रतिदिन शुध्द सामायिक करे ।
10. **दसवें देशावकाशिक व्रत** मे श्रावक देशावकाशिक पौषध करे । दया करे, संवर करे, चौदह नियम चितारे ।
11. **ग्यारहवें पौषधोपवास व्रत** मे श्रावक प्रतिपूर्ण पौषध करे ।
12. **बारहवें अतिथि संविभाग व्रत** मे श्रावक प्रतिदिन चौदह प्रकार की वस्तुओ में से जो निर्दोष हो, देवे ।

तेइसवें बोले साधुजी के पांच महाव्रत

1. **अहिंसा महाव्रत** - पहले महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकारसे जीव हिंसा करे नही । करावे नही और करते हुए को भला जाने नही मन-वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से) ।
2. **सत्य महाव्रत** - दूसरे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से झूठ बोले नही, बोलावे नही, बोलते हुए को भला जाने नही, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से) ।
3. **अचौर्य महाव्रत** - तीसरे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार

से चोरी करें नही, करावें को नही, करते हुए को भला जाने नही,मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।

4. **ब्रह्मचर्य महाव्रत** - चौथे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवे नही, सेवावे नही, सेवते हुए की भला जाने नही, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।

5 **अपरिग्रह महाव्रत** - पाचवे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से परिग्रह रखें नही, रखावें नही, रखते हुए को भला जाने नही, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।

प्रश्न – व्रत और महाव्रत में क्या अन्तर है।

उत्तर - गृहस्थ जीवन की मर्यादा मे रहकर अपनी शक्ति के अनुसार अहिसादि बारह अणुव्रतो का पालन व्रत कहलाता है। घर-बार को भी छोडकर सर्वथा निर्दोष रुप से अहिसादि व्रतो को पूर्ण पालन करना महाव्रत कहलाता है। श्रावक अणुव्रती कहलाता है और पंच महाव्रतधारी साधु या साध्वी महाव्रतधारी होते है। सक्षेप मे कहा जाय तो दोषो की पूर्ण निवृत्ति को महाव्रत कहते है और आशिक निवृत्ति को अणुव्रत या देश विरति कहते है।

चौबीसवें बोले भांगा ४९ का जाणपणा

नौ अक 11,12,13,21,22,23,31,32,33 इसमें प्रथम ाक करण और दूसरा अंक योग रुप है।

11 आंक एक ग्यारह का भग उपजे नौ। एक करण एक योग ो कहना।

1 करुगा नहीं मन से 2 करुगा नही वचन से, 3 करुगा नही काया से, 4 कराऊगा नही मन से। 5 कराऊगा नही वचन से 6 कराऊगा नही काया से, 7 अनुमोदना दूगा नही मन से, 8 अनुमोदना दूंगा, नही वचन से, 9 अनुमोदना दूगा नही काया से।

12 आक एक बारह से भंग उपजे नौ। एक करण दो योग से कहना।

1 करुगा नही - मन से, वचन से।
2 करुगा नही - मन से, काया से।
3 करुगा नही - वचन से, काया से।
4 कराऊगा नही - मन से वचन से।

5 कराऊगा नही - मन से, काया से।
6. कराऊंगा नही - वचन से, काया से।
7. अनुमोदूंगा नही - मन से वचन से।
8 अनुमोदूंगा नही - मन से, काया से।
9. अनुमोदूंगा नहीं - वचन से, काया से।

13. आंक एक तेरह का भंग उपजे तीन। एक करण तीन योग से कहना।

1 करुंगा नही - मन से, वचन से काया से।
2. कराऊंगा नही - मन से, वचन से काया से।
3. अनुमोदूगा नही - मन से, वचन से काया से।

21 आंक एक इक्कीस का भंग उपजे नौ। दो करण एक योग से कहना।

1 करुंगा नही, कराऊगा नहीं - मन से।
2. करुंगा नही, कराऊंगा नही - वचन से।
3 करुंगा नही, कराऊंगा नही - काया से।
4. करुंगा नही, अनुमोदूंगा नहीं - मन से।
5. करुंगा नही, अनुमोदूंगा नही - वचन से।
6 करुंगा नही, अनुमोदूंगा नहीं - काया से।
7. कराऊगा नही, अनुमोदूगा नही - मन से।
8 कराऊगा नही, अनुमोदूगा नहीं - वचन से।
9. कराऊंगा नही, अनुमोदूगा नही - काया से।

22. आंक एक बाईस का भंग उपजे नौ। दो करण, दो योग से कहना।

1. करुंगा नही, कराऊंगा नही - मन से, वचन से।
2 करुंगा नही, कराऊंगा नही - वचन से, काया से।
3. करुगा नही, कराऊगा नही - काया से, मन से।
4. करुंगा नही, अनुमोदूंगा नही - मन से, वचन से।
5. करुगा नही, अनुमोदूंगा नही - वचन से, काया से।
6. करुगा नही, अनुमोदूंगा नही - काया से, मन से।
7 कराऊगा नही, अनुमोदूगा नही - मन से, वचन से।
8. कराऊगा नहीं, अनुमोदूगा नही - वचन से, काया से।
9 कराऊगा नही, अनुमोदूगा नही - मन से, काया से।

23. आंक एक तेईस का भग उपजे तीन। दो करण तीन योग

से कहना ।

1 करुगा नही, कराऊगा नही, मन से, वचन से, काया से ।
2 करुगा नही, अनुमोदूंगा नही, मन से, वचन से, काया से ।
3 कराऊंगा नही, अनुमोदूंगा नही, मन से, वचन से, काया से ।

31 आक एक इकतीस का भंग उपजे तीन । तीन करण योग से कहना ।

1 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूगा नही मन से ।
2 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूंगा नही वचन से ।
3 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूगा नही काया से ।

32. आंक एक बत्तीस का भग उपजे तीन । तीन करण दो योग से कहना ।

1 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूगा नही,मन से, वचन से।
2 करुगा नही, कराऊगा नही,अनुमोदूगा नही,वचन से,काया से।
3 करुगा नही, कराऊगा नही,अनुमोदूगा नही,मन से,काया से।

33. आंक तैसीस का भंग उपजे एक । तीन करण तीन योग से कहना ।

1 करुगा नही, कराऊगा नही, अनुमोदूगा नही मन से,वचन से काया से ।

प्रश्न : भंग किसे कहते है ?
उत्तर श्रावक के प्रत्याख्यान करने के विकल्प को भग कहते है ।

पच्चीसवें बोले चारित्र ५

1. सामायिक चारित्र 2. छेदोपस्थानीय चारित्र 3. परिहार विशुध्द चारित्र, 4. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र 5. यथाख्यात चारित्र ।

प्रश्न - चारित्र किसे कहते है ?
उत्तर - जिसके पालन से कर्मो का आना रुके और आत्मा शुध्द बने, उसे चारित्र कहते है ।

तृतीय आयाम

श्रावक - प्रतिक्रमण सूत्र

(अर्थ भावार्थ सहित)

स्थानक मे म. सा. विराजमान हों तो उन्हे तिक्खुत्तो के पाठ से 3 बार वन्दना करें। यदि म. सा. विराजमान न हो तो उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुंह करके अपने गुरुदेव की आज्ञा लेकर चउवीसत्थव करे। चउवीसत्थव में नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ कह कर काउस्संग करे। काउस्सग दो लोगस्स मन में कहें तथा णमो अरिहताणं कह कर काउस्स पारे। फिर नवकार मंत्र और ध्यान का पाठ कहें और लोगस्स प्रगट बोले। बायां घुटना खडा करके दो णमोत्थुणं बोलें। दूसरे णमोत्थुण में सपताणं के स्थान पर संपाविउकामाणं कहें। फिर खडे होकर प्रतिक्रमण की आज्ञा है ऐसा बोलकर तीन बार तिक्खुतो के पाठ से वंदना करके खडे होकर इच्छामि णं भते का पाठ बोले।

।। इच्छामि णं भंते का पाठ ।।

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भुणुण्णाए समाणे देवसियं पडिक्कमण ठाएमि, देवसियणाणदंसणचरित्ताचरित्ततव अइयारचिंतणत्थं करेमि काउस्सग।

मूल शब्द		अर्थ
इच्छामि	-	मैं इच्छा करता हू
णं	-	(यह अव्यय है, वाक्य अलकार मे आता है)
भंते	-	हे पूज्य ! हे भगवन् !
तुब्भेहिं	-	आपकी
अब्भणुण्णाए समाणे	-	आज्ञा होने पर
देवसियं पडिक्कमणं	-	दिन सम्बन्धी प्रतिक्रमण को
ठाएमि	-	करता हूं
देवसिय	-	दिवस सम्बन्धी
नाण दंसण	-	ज्ञान, दर्शन (श्रद्धान)
चरित्ताचरित्त	-	देशव्रत (श्रावक धर्म)
तव	-	तप (इनके)

अइयार	–	अतिचारो (दोषों) का
चितणत्थं	–	चिन्तन करने के लिये
करेमि	–	करता हूं
काउस्सग	–	कायोत्सर्ग को

भावार्थ – हे भगवन् ! मै आपकी आज्ञा होने पर दिन मे लगे हुए दोषों से निवृत्त होना चाहता हू । दिन मे जो ज्ञान, दर्शन, देशव्रत तथा तप मे अतिचार लगे हो, उनका स्मरण करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूं ।

।। इच्छामि ठामि का पाठ ।।

इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं जो मे देवसियो अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचितिओ,अणायारो, अणिच्छिअव्वो, असावगपाउग्गो नाणे तह दंसणे चरित्ताचरित्ते, सुए, समाइए, तिण्हं गुत्तीण, चउण्हं कसायाणं, पचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं चउण्ह सिक्खावयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छा मिं दुक्कडं ।

कायोत्सर्ग के पहले इच्छामि ठाइउ काउस्सग्ग और कायोत्सर्ग मे इच्छामि आलोउ तथा अन्य स्थानो पर इच्छामि पडिक्कमिउ बोलना चाहिये ।

इच्छामि ठाइउं	–	मैं करने की इच्छा करता हू
काउस्सग्गं	–	एक स्थान मे स्थिर रहने रुप कायोत्सर्ग को
जो मे	–	जो मैने
देवसिओ	–	दिन सम्बन्धी
अइयारो कओ	–	अतिचार (दोष) किया हो
काइओ	–	काया सम्बन्धी
वाइओ	–	वचन सम्बन्धी
माणसिओ	–	मन सम्बन्धी
उस्सुत्तो-सूत्र	–	विपरीत कथन किया हो
उम्मग्गो	–	उन्मार्ग (जैन-मार्ग से अर्थात आत्मकल्याण के मार्ग से विपरीत) का कथन किया हो
अकप्पो	–	अकल्पनीय (नही कल्पने योग्य)
अकरणिज्जो	–	नही करने योग्य कार्य किया हो
दुज्झाओ	–	दुष्ट ध्यान किया हो
दुव्विचितिओ	–	दुष्ट चिन्तन किया हो

अणायारो	–	अनाचार का सेवन किया हो - नियमों का सर्वथा भग किया हो
अणिच्छिअव्वो	–	इच्छा नही करने योग्य पदार्थ की इच्छा की हो
असावग पाउग्गो	–	श्रावकवृत्ति से विरुद्ध काम किया हो
नाणे	–	ज्ञान मे
तह	–	तथा
दंसणे	–	दर्शन मे
चरित्ताचरित्ते	–	देशव्रत (श्रावकव्रत मे)
सुए सूत्र	–	सिद्धान्त में
समाइए	–	समताभाव रुप सामायिक मे
तिण्ह गुत्तीणं	–	तीन गुप्ति (मन, वचन, काया वश मे रखना) की
चउण्हं कसायाणं	–	चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) की
पंचण्हमणुव्वयाणं	–	पांच अणुव्रत (स्थूल हिसा का त्याग, स्थूल, मृषावाद - असत्य का त्याग, स्थूल अदत्तादान - चोरी का त्याग, स्वदार - सन्तोष परदार विवर्जन रुप मैथुन सेवन का त्याग, परिग्रह का परिमाण) की
तिण्हं गुणव्वयाणं	–	तीन गुणव्रत (दिग्व्रत, उपभोग परिभोग परिमाण व्रत, अनर्थदण्ड त्याग व्रत) की
चउण्हं सिक्खावयाणं	–	चार शिक्षाव्रत (सामायिक, देशावकाशिकव्रत, पौषधोपवास व्रत, अतिथीसविभाग व्रत) की
वारसविहस्स	–	इस प्रकार बारह प्रकार के
सावगधम्मस्स	–	श्रावक - धर्म की
ज खंडियं	–	जो देश से खंडना की हो
ज विराहियं	–	जो सर्वथा विराधना की हो
तस्स मिच्छा मि दुक्कड	–	मेरे वे सव पाप निष्फल हो.

भावार्थ – मे स्थिर चित्त होकर कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हू। मैने मन-वचन काया से जो कोई अति-चार किया हो, सूत्र-विरुद्ध भापण किया हो, जैन-मार्ग से प्रतिकूल आचरण किया हो, अकल्पनीय काम किया हो, नहीं

करने योग्य काम किया हो, आर्तध्यान और रौद्रध्यान किया हो, नियमो का सर्वथा भग किया हो, अयोग्य वस्तु की इच्छा की हो, श्रावक धर्म से विपरीत काम किया हो, मेरी आत्मा मे दुष्ट विचार उत्पन्न हुए हो, आत्मा ज्ञान, दर्शन, देशव्रत, सूत्र तथा सामायिक विषयक अतिचार सेवन किया हो, मन, वचन, काया को वश मे न रखा हो, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायो का दमन न किया हो । पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार श्रावक के बारह व्रतो का एक देश खडन तथा सर्वदेश विराधना की हो तो इससे उत्पन्न हुए मेरे सब पाप निष्फल हो ।

।। ज्ञान के अतिचारों का पाठ ।।

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तजहा-सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार आगमरुप ज्ञान के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ ज वाइद्ध, वच्चामेलिय, हीणक्खरं, अच्चक्खर, पयहीणं, विणयहीण, जोगहीण, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्ण दुट्ठुपडिच्छिय, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए सज्झाए, सज्झाए न सज्झाइय, भणतां गुणता विचारतां ज्ञान और ज्ञानवत पुरुषो की अविनय आशातना की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

आगमे	–	आगम
तिविहे	–	तीन प्रकार का
पण्णत्ते	–	कहा गया है
तं जहा	–	जैसा कि
सुत्तागमे	–	सूत्रागम-मूलपाठ का रुप आगम
अत्तागमे	–	अर्थरुप आगम
तदुभयागमे	–	शब्द और अर्थ इन दोनो रुप आगम
ज	–	जो
वाइद्ध	–	सूत्र के अक्षर उलट पलट पढे हो
वच्चामेलिय	–	# एक ही शास्त्र में अलग-अलग स्थानों आये हुए समान अर्थ वाले पाठो को स्थान पर लाकर पढा हो अथवा अस्थान मे विराम लियाहो या अपनी बुद्धि से शास्त्र के समान सूत्र बना कर आचाराग आदि

में डाल कर पढे हो ।

अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र 13 मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरीकृत टीका के अनुसार अर्थ है ।

हीणक्खर	–	हीन अक्षर युक्त पढा हो
अच्चक्खरं	–	अधिक अक्षर युक्त पढा हो
पयहीणं	–	पदहीन पढा हो
विणयहीणं	–	विनय - रहित पढा हो
जोगहिणं	–	योग हीन (मन, वचन, काया इन तीनो की एकाग्रता से रहित) पढा हो
घोसहीणं	–	* उदात आदि स्वर रहित पढा हो

* स्वर के तीन भेद है उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ।उच्चेरुपलभ्यमान उदात्त नीचैरनुदात्त , समवृत्या स्वरित ।

अर्थात् - ऊचे स्थान से बोले जाने वाला उदात्त और नीचे स्थान से बोले जाने वाला अनुदात्त तथा समान स्थान से बोले जाने वाला स्वरित स्वर कहलाता है ।

जो स्वर जिस स्थान से बोला जाना चाहिये, उसको उस स्थान से न बोलना घोषहीन अतिचार है । अथवा जिस शब्द का जैसा उच्चारण है उसको उस उच्चारण रहित बोलना भी घोषणा हीन अतिचार है।

# सुट्ठुदिण्णं	–	शिष्य में शास्त्र ग्रहण करने की जितनी शक्ति हो, उससे अधिक पढाया हो तथा स्वय पढा हो
दुट्ठुपडिच्छिय	–	आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो
अकाले कओ	–	जिन सूत्रो का जो काल शास्त्र मे स्वाध्याय के लिये कहा है, उससे दूसरे काल में उन
सज्झाओ	–	सूत्रो का स्वाध्याय किया हो
काले न कओ सज्झाओ	–	काल मे स्वाध्याय न किया हो
असज्झाए सज्झाइय	–	अस्वाध्याय काल मे स्वाध्याय किया हो
सज्झाए न सज्झाइयं	–	स्वाध्याय काल मे स्वाध्याय न किया हो
तस्स	–	उससे उत्पन्न हुआ

भावार्थ – मूल पाठ रुप, अर्थरुप और मूलपाठ - अर्थ-रुप इस तरह तीन प्रकार के आगम-ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो उसकी मै आलोचना करता हू । यदि सूत्र के अक्षर उलट-पलट पढे हो, एक ही शास्त्र मे अन्य स्थानो पर दिये गये गये एकार्थक सूत्रो को एक स्थान पर लाकर पढे हो अथवा अस्थान मे विराम लिया हो या आचारादि सूत्रो मे स्वमति...

उसके सदृश सूत्र बनाकर प्रक्षेप कर पढे हो, हीनाधिक अक्षर पढे हो, कही पदहीन पढा हो, उदात्तादि स्वर रहित पढा हो, शक्ति से अधिक पढाया हो या पढा हो, आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो, अस्वाध्याय के समय स्वाध्याय किया हो, स्वाध्याय के समय स्वाध्याय न किया हो तथा पढते समय,मनन करते समय, विचारते समय, ज्ञान तथा ज्ञानवन्त पुरुषो की अविनय-आशातना की हो तो मेरा सब पाप निष्फल हो ।

हरिभद्रीयावश्यक - भाष्य पृष्ठ 731 पर सुष्ठु दत्त गुरुणा दुष्ठु प्रतीच्छित कलुषितान्तरात्मना अर्थात् गुरु के द्वारा अच्छे भाव से दिये हुए ज्ञान को शिष्य ने कलुषित भाव से ग्रहण किया हो, ऐसा अर्थ है किन्तु यह अर्थ करने से ज्ञान के अतिचार चौदह के बजाय तेरह ही रह जायेगे ।

मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा विरचित, आगमोदय समिति द्वारा विक्रम सम्वत् 1676 मे प्रकाशित हरिभद्रीयावश्यक टिप्पणी के पृष्ठ 107 मे शका समाधान करके नीचे लिखे अनुसार खुलासा किया है -

शका - ये चौदह पद तभी पूरे हो सकते है जब सुट्‌ठुदिण्ण दुट्‌ठुपडिच्छिय ये दो पद अलग-अलग अशातना (अतिचार) के रुप मे गिने जाये किन्तु यह ठीक नही है क्योकि सुट्‌ठुदिण्ण-सुष्ठु दत्त का अर्थ है ज्ञान को भली प्रकार देना किन्तु यह आशातना (अतिचार) नही है ।

समाधान – यह शका तभी हो सकती है, जब सुट्‌ठु (सुष्ठु) शब्द का अर्थ शोभन या भली प्रकार किया जाय किन्तु यहा इसका अर्थ यह नही है । यहा इसका अर्थ अतिरेक-अधिक है अर्थात् थोडे ज्ञान के योग्य पात्र को उसकी योग्यता एव शक्ति से अधिक ज्ञान पढाया हो, ऐसा करना ज्ञान की आशातना (अतिचार) है ।

।। दर्शन सम्यक्त्व का पाठ ।।

अरिहतो मह देवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो । जिणपण्णत्तं तत्त, इअ सम्मत्त मए गहियं ।।1।।

परमत्थसथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि । वावण्णकुदसणवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा ।।2।।

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउ-शका, कखा,वितिगच्छा, परपासडपससा, परपासंडसथवो, इस प्रकार श्री समकितरत्न पदार्थ के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ – 1. वीतराग के वचन मे शंका की हो, 2. परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3. धर्म के फल मे सन्देह किया हो, 4.परपाखण्डी की प्रशसा की हो, 5. परपाखण्डी का परिचय किया हो । मेरे सम्यक्त्व रुप रत्न पर मिथ्यात्वरुपी रज मैल लगा हो तो तस्समिच्छा मि दुक्कड ।

अरिहतो – अरिहत भगवान

मह	–	मेरे
देवो	–	देव हैं
जावज्जीवाए	–	जीवन पर्यन्त
सुसाहुणो	–	उत्तम (निर्ग्रन्थ) साधु
गुरुणो	–	गुरु है
जिणपण्णत्तं	–	जिनेन्द्र कथित
तत्तं	–	तत्व (धर्म) है
इअ	–	इस प्रकार
सम्मत्तं	–	सम्यक्त्व
मए	–	मैने
गहियं	–	ग्रहण किया है
परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठ		जीवादि नव पदार्थो का सम्यग्ज्ञ
परमत्थ सेवणा वावि	-	जिन्होने भली प्रकार जीवादि तत्वों
		को जान लिया है, उनकी सेवा तथा
		गुणकीर्तन करने रुप तथा
वावण्णकुदंसण	–	सम्यक्त्व से भ्रष्ट और मिथ्यादृष्टि
वज्जणा य		जीवो की सगति त्याग करने रुप
सम्मत्तसद्दहणा	–	सम्यक्त्व की श्रद्धा मेरे हो
इअ	–	इस प्रकार
सम्मत्तस्स	–	सम्यक्त्व के
पंच	–	पाच
अइयारा	–	अतिचार
पेयाला	–	प्रधान
जाणियव्वा	–	जानना चाहिये, किन्तु
न समायरियव्वा	–	आचरण नही करना चाहिये
तं जहा	–	वे अतिचार निम्न प्रकार से है
ते आलोउ	–	उनकी आलोचना करता हूं
संका	–	वीतराग के वचन मे शंका की हो
कखा	–	जो मार्ग वीतराग कथित नहीं है,
		उसकी कांक्षा- चाहना की हो ।
वितिगच्छा	–	धर्म के फल मे सन्देह किया हो
परपासडपसंसा	–	पर पाखण्डी (अन्यतीर्थी) की [illegible]
परपासडसंथवो	–	पर पाखण्डी का परिचय [illegible]

भावार्थ – जीवन पर्यन्त मेरे अरिहत तो देव है, निर्ग्रन्थ गुरु है तथा ीतराग कथित धर्म है, इस प्रकार मैने सम्यक्त्व को ग्रहण किया है एव ुझको जीवादि पदार्थो का परिचय हो, भली प्रकार जीवादि तत्त्वो को तथा सेद्धांत के रहस्य को जानने वाले साधुओ की सेवा प्राप्त हो, सम्यक्त्व से ्रष्ट तथा मिथ्यात्वी जीवो की सगति कदापि न हो, ऐसी सम्यक्त्व के विषय ो मेरी श्रद्धा बनी रहे। जो मैने वीतराग के वचन मे शका की हो, जो धर्म ीत-राग से कथित नही है उसकी चाह की हो, धर्म के फल मे सन्देह किया ो, या साधु-साध्वी आदि महात्माओ के वस्त्र, पात्र, शरीर आदि को मलिन ेखकर घृणा की हो , परपाखण्डी की प्रभावना देखकर उसकी प्रशसा की ो तथा पर पाखण्डी से परिचय किया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हू मेरा वह सब पाप निष्फल हो।

॥ बारह व्रतों के अतिचार ॥

पहला स्थूल प्राणातिपात-विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ – 1. रोषवश गाढा बधन बांधा हो, 2. गाढा घाव (डाला) घाला हो, 3. अवयव (चाम आदि) का छेद किया हो, 4. अधिक भार भरा हो, 5. भात पानी (भक्तपान) का विच्छेद किया हो, जो मे # देवसियो ऋइयारो कन्रो तस्स मिच्छा मि दुक्कड अर्थात् जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार किया हो तो उससे उत्पन्न हुआ मेरा पाप निष्फल हो।

प्रतिदिन शाम के प्रतिक्रमण मे देवसियो, सुबह के प्रतिक्रमण मे राईओ, पाक्षिक (पक्खी के) प्रतिक्रमण मे पक्खिाओ, चौमासी प्रतिक्रमण मे चउम्मासिओ और सवत्सरी प्रतिक्रमण मे सवच्छरिओ बोलना चाहिये।

दूजा स्थूल मृषावाद – विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ – 1. सहसाकार से किसी के प्रति कूडा आल (झूठा दोष) दिया हो, 2 एकान्त मे गुप्त बात-चीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, 3. अपनी स्त्री के मर्म (गुप्त बात) प्रकाशित किये हों, 4. मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, 5. झूठा लेख लिखा हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

तीजा स्थूल अदत्तादान-विरमण-व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ – 1. चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, 2. चोर को सहायता दी हो, 3. राज्यविरुद्ध काम किया हो, 4. कूडा तोल कूड़ा माप किया हो, 5. वस्तु में भेल-सम्भेल की हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

चौथा स्थूल * स्वदार संतोष परदार विवर्जनरुप मैथुन विरमण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं # 1इत्तरियपरिग्गहिया से गमन किया हो, 2 अपरिग्गहिया से गमन किया हो, 3 अनंगक्रीडा की हो, 4 पराये का विवाह कराया हो, 5 कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो, इन अतिचारो में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

* स्त्री को स्वपतिसतोष पर - पुरुष - विवर्जनरुप बोलना चाहिये ।

शका - परा - स्वस्त्रियो भिन्ना दारा. परदारा , तेषां विवर्जन परदारविवर्जन अर्थात् अपनी विवाहिता स्त्री से भिन्न सब स्त्रिया पर स्त्री है । उन सबका त्याग करना परस्त्री-त्याग कहलाता है । इस व्याख्या से वेश्या, विधवा, पासवान, कन्या आदि परस्त्री है । फिर उनके सेवन को यहा अनाचार न कहकर अतिचार क्यो कहा है ?

उत्तर - उपासकदशाङ्ग की टिका मे लिखा है - अतिचारतोऽस्यातिक्रमादिभि अर्थात् इत्तरियपरिग्गहियागमण और अपरिग्गहियागमण को यहा जो अतिचार कहा है से, अतिक्रमण आदि की अपेक्षा से है । तात्पर्य यह है कि अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार से व्रत एकदेश खडित होता है और अनाचार से सर्वथा भग हो जाता है । परस्त्री सेवन का सकल्प करना अतिक्रम है, उद्योग करना व्यति-क्रम है और आलाप, सलाप आदि करना अतिचार है । यहा अतिचार का प्रकरण हैं, अत. इत्तरियपरिग्गहियागमण का अतिचार रुप अर्थ यह है - थोडे काल के लिये अपनी बनाने के लिये तथा अल्पवयवाली अर्थात् जिसकी उम्र सभी भोग योग्य नही हुई है, ऐसी अपनी विवाहिता स्त्री से गमन करने के लिये आलाप, सलाप आदि करना तथा अपरिग्गहियागमन का अतिचार रुप व्यर्थ है - वेश्या आदि के साथ रमण करने के लिये तथा जिस कन्या के साथ सगाई तो हो चुकि है किन्तु अभी विवाह नही हुआ है, ऐसी कन्या के साथ गमने करने के लिये आलाप, सलाप आदि करना सुई-दोरा के न्याय से सेवन करने पर व्रत सर्वथा भग हो जाता है । इसलिये इन अतिचारो से बचने के लिये वेश्या, पासवान, विधवा आदि किसी भी परस्त्री के साथ एकान्त मे या दुष्ट भाव से आलाप, सलाप नही करना चाहिये, न मार्ग मे साथ चलना चाहिये ।

जहा-जहा स्त्री शब्द आया है, वहा-वहा स्त्रियो को पुरुष शब्द बोलना और समझना चाहिये क्योकि पुरुष का त्याग करना स्त्री के लिये और स्त्री का त्याग करना पुरुष के लिये मैथुन विरमण व्रत कहलाता है ।

अपरिग्गहिया-अपरिगृहता के साथ गमन (मैथुन) किया हो, ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये तथा स्त्री को इत्तरियपरिग्गहिय इत्वरपरिगृहित (थोड़े काल के लिये पति-रुप स्वीकार किया हुआ) और अपरिग्गहिय अपरिगृहित(पतिरुप स्वीकार नहीं किये हुए जार वगैरह) पुरुष से गमन किया हो, ऐसा बोलना चाहिये ।

पांचवा स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं - 1. खेतवत्थु का परिमाण अतिक्रमण (उल्लघन) किया हो, 2. हिरण्य सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. धनधान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. दोपद-चोपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो,

.. कुविय धातु (कासी, पीतल, ताम्बा, लोहा आदि धातु का तथा इनसे बने ए बर्तन आदि और शय्या, शासन, वस्त्र आदि घर सम्बन्धी वस्तुओ) का रिमाण अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा ो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

छटे दिशिव्रत के विषय मे जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ - 1. ऊची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2. नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र बढ़ाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से पथ का सन्देह पडने पर आगे चला हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सातवा उपभोग परिभोग-परिमाण व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ 1. पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त पडिबद्ध का आहार किया हो, 3. अपक्क (अपक्व) का आहार किया हो, 4. दुपक्व (दुष्पक्त) का आहार किया हो, 5. # तुच्छौषधि का आहार किया हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

जिसमें खाने योग्य अश तो थोडा हो और अधिक फेकना पडे, उसे तुच्छौषधि कहते है जैसे मूग की कच्ची फली, सीताफल, गन्ना (गडेरी) आदि ।

पन्द्रह कर्मादान सम्बन्धी जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ - 1. इगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दन्त-वाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रसवाणिज्जे, 6 केसवाणिज्जे, 10. विसवाणीज्जे, 11. जतपीलणकम्मे, 12 निल्लछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. सरदह-तलाय सोसणया, 15. असईजणपोसणया इन मे से कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

अधिक हिसा वाले धन्धो से आजीविका चलाना कर्मादान है अथवा जिन धन्धो से उत्कट ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का बन्ध होता है उन्हे कर्मादान कहते है । ये श्रावक के जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नही हैं ।

पन्द्रह कर्मादान

1. **इगालकम्मे (अगारकर्म)** - जगल को खरीद कर व ठेके लेकर कोयले और बेचने का धन्धा करना अगार-कर्म है । इसमे छ काय का वध होता है ।

2. **वणकम्मे (वनकर्म)** - जगल को खरीद कर वृक्षो को काटकर बेचना और इससे आजीविका करना वनकर्म है।

3. साडीकम्मे(शाकटिक कर्म) – वाहन सहित गाडी, तागा, इक्का, [illegible] बनाने और बेचने का धन्धा कर आजीविका करना शाकटिक कर्म है।

4. भाडी कम्मे (भाडी कर्म) – गाडी आदि से दूसरो का सामान [illegible] पर ले जाना तथा बैल, घोडे आदि को भाडे देना इस प्रकार भाड़े [illegible] आजीविका करना भाटी कर्म है।

5. फोडी कम्मे (स्फोटक कर्म) – हल, कुदाली, सुरग आदि से [illegible] खान आदि फोडना और निकले हुए पत्थर आदि को बेचकर आजीवि[illegible] करना अथवा जमीन खोदने का ठेका लेकर जमीन खोदना और इ[illegible] प्रकार आजीविका करना स्फोटक कर्म है। खेती करना स्फोटक कर्म न[illegible] है।

6.दंत वाणीज्जे (दंत वाणीज्य) – हाथी दांत,शंख,चर्म,चामर आदि खरीदने बेचने का धन्धा कर आजीविका करना दन्त वाणिज्य है। ये धन्धे करने वाले लोग हाथीदांत आदि निकालने वालो को पहले से इनके लिये अग्रिम मूल्य दे देते हैं और वे लोग हाथी आदि की हित्ता कर हाथी दात आदि लाकर देते है। इस प्रकार ये व्यापार महा हिंसाकारी है।

7. लक्खवाणिज्जे (लाक्षा वाणिज्य) - लाख का क्रय विक्रय कर आजीवि[illegible] करना लाक्षा वाणिज्य है। इसमे त्रस जीवों की बड़ी हिंसा होती है।

8. रस वारिगज्जे (रस वाणिज्य) मदिरा आदि बनने और वेचने का कलाल आदि का घन्घा कर आजीविका करना रस वाणिज्य है। मदिरा बनाने मे हिसा तो होती ही है किन्तु इसके पीने से अन्य वहुत से दोषं का होना सम्भव है।

9.केस वाणिज्जे (केश वाणिज्य) दासी को खरीद कर दूसरी जगह अधिक मूल्यों में बेचने का धन्धा करना केश वाणिज्य है।

10. विस वाणिज्जे (विष वाणिज्य) विष शंखिया आदि वेचने का धन्धा करना विष वाणिज्य है। इसमे बहुत जीवों की हिसा होती है।

11. जंतपीलण कक्मे (यन्त्र पीडन कर्म) तिल ईख आदि पीलने के [illegible] कोल्हू, चरखिये आदि से तिल आदि पीलने का धन्धा करना यन्त्र[illegible] कर्म है। उस समय मे प्राय यही यत्र प्रसिद्ध थे। आज के युग के [illegible] पोषक जितने भी यन्त्र है, उनको भी उपलक्षण से यन्त्र पीड़न कर्म मे शामिल किया जा सकता है।

12. निल्लंछण कम्मे (निर्लाच्छन) – बैल घोड़े आदि को नपुंस[illegible]

का धन्धा करना निर्लाछन कर्म है ।

13.दवग्गि दावणया (दावाग्नि दापनता) – क्षेत्रादि साफ करने के लिये जगल मे आग लगा देना दावाग्नि दापनता है । इसमे लाखो जीवो की हिसा होती है ।

14. सरदह तलाय सोसणया (सरोह्रद तडाग शोषणता)–गेहू आदि धान बोने के लिये सरोवर ह्रद और तालाब को सुखाना सरोह्रद तडाग शोषणता है ।

15. असई जण पोसणया (असती जन पोषणता) आजीविका के लिए दुश्चरित्र स्त्रियो का पोषण करना असती जन पोषणता है ।

आठवें अनर्थदंड–विरमणव्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ–1 कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2 भंड – कुचेष्टा की हो, 3 मुखरी वचन बोला हो, 4 अधिकरण यानी हिसाकारी उपकरणो का सग्रह किया हो, 5 उपभोग परिभोग अधिक बढ़ाया हो, इन अतिचारो में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

नवे सामायिक व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ–1–3 मन, वचन और काया के अशुभ योग प्रवर्त्ताये हो, 4 सामायिक की स्मृति न की हो, 5 समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि डुक्कडं ।

दशवे देशावकाशिक–व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं–1 नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मगाई हो, 2 भिजवाई हो, 3 शब्द करके चेताया हों, 4 रुप दिखा करके अपने भाव प्रकट किये हो, 5 कङ्कर आदि फेक कर दुसरे को बुलाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

ग्यारहंवा प्रतिपूर्ण–पोषध व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ–1 पौषध मे शय्या–सथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2 प्रमार्जन (पडिलेहणा) न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3 उच्चार–पासवण की भूमि को देखी न हो अथवा अच्छी तरह से न देखी हो 4 पूजी न हो या अच्छी तरह से मुझे न पूजी हो, 5. उपवासयुक्त पौषध का सम्यक प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

बारहवे अतिथिसविभाग–व्रत के विषय जो कोई अतिचार लगा

आलोउं–1अचित्त वस्तु सचित पर रखी हो 2 अचित वस्तु सचित से ढांकी हो, 3 साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, 4 दान नही देने की बुद्धि से अपनी वस्तु दूसरे कही हो, 5 ईर्ष्या भाव से दान दिया हो, इन अतिचारो मे से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

।। संलेखना के पांच अतिचारों का पाठ ।।

अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंचअइयार जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगा संसप्पओगे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

अपच्छिम	–	अन्तिम
मारणान्तिय	–	मरण समय सम्बन्धी
संलेहणा	–	संलेखना - कषाय ओर शरीर कृश(दुबला)करने के लिए जो तप विशेष होता है वह सलेखना है।
इहलोगासंसप्पओगे	–	इस लोक मे राजा चक्रवर्ती आदि के सुख की कामना करना ।
परलोगासंसप्पओगे	–	परलोक मे देवता इन्द्र आदि के सुख की कामना करना ।
जीवियासंसप्पओगे	–	महिमा प्रशसा फैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने का आकाशा करना ।
मरणासंसप्पओगे	–	कष्ट होने पर शीघ्र मरने की इच्छा करना ।
कामभोगासंसप्पओगे	–	कामभोग की अभिलाषा करना ।

भावार्थ – हे भगवन् ! मेरे मरण समय मे होने वाली सलेखना के विषय मे कोई दोष लगा हो, मैने राजा चक्रवर्ती आदि के इस लोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, देव इन्द्र आदि के परलोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, देव इन्द्र आदि के परलोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, दु ख से व्याकुल होकर शीघ्र मरने की अभिलाषा की हो तथा काम भोग की अभिलाषा की हो तो मै उसकी आलोचना करता हूं । मेरा वह सब पाप निष्फल हो ।

|| अठारह पापस्थान का पाठ ||

अठारह पापस्थान आलोउ-पहला प्राणातिपात, दूजा मृषावाद, तीजा अदत्तादान, चौथा मैथुन, पांचवां परिग्रह, छठा क्रोध, सातवां मान, आठवा माया, नवा लोभ, दसवा राग, ग्यारहवा द्वेष, बारहवा कलह, तेरहवां अभ्याख्यान, चौदहवां पैशुन्य, पन्द्रहवा, परपरिवाद, सोलाहवा रति-अरति, सतरहवा माया मृषवाद, अठारहवा मिथ्यादर्शन शल्य, इन अठारह पाप स्थानो में से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो और सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

प्राणातिपात	-	जीवाहिसा, प्राणियो का वध
मृषावाद	-	असत्य, झूठ
अदत्तादान	-	चोरी, (बिना दिये ग्रहण करना)
मैथुन	-	अब्रह्मचर्य, कुशील
परिग्रह	-	मूर्छा ममत्व, धनादिक द्रव्य
क्रोध	-	रोष, गुस्सा, कोप
मान	-	अहङ्कार, घमण्ड
माया	-	छल, कपट
लोभ	-	लालच, तृष्णा
राग	-	माया और लोभजन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम (राग)
द्वेष	-	क्रोध और मानजन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम (द्वेष)
कलह	-	क्लेश, भगडा
अभ्याख्यान	-	झूठा आल देना, कलङ्क लगाना
पैशुन्य	-	दूसरे की चुगली करना, दोष प्रगट करना
परपरिवाद	-	दूसरे की निन्दा करना, दूसरे की बुराई करना
रति	-	बुरे कार्यो मे चित्त का लगना
अरति	-	ध्यान सयम आदि मे चित्त का नही लगना
माया मोसो	-	कपट सहित झूठ बोलना

मिथ्यादर्शनशल्य	–	अतत्त्व में तत्त्व और तत्त्व मे अतत्त्व की श्रद्धा होना, श्रद्धा का विपरीत होना ।

।। इच्छामि खमासमणो का पाठ ।।

इच्छामि खमासमणो वंदीउं जावणिज्जाए निसीहिआए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि अहोकायं कायसंफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलताणं बहुसुमेणं भे दिवसो वइक्कंतो जत्ता भे जवणिज्जं च भे खामेमिखमासमणो ! देवसिअं वइक्कमं आवस्सियाए पडिक्कमामि । खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वय दुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालिआए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसियो अइयारो कओ, तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामिगरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

इच्छामि	–	मैं चाहता हूँ
खमासमणो	–	हे क्षमावान् श्रमण !
वंदिउं	–	वन्दना करना
जावणिज्जाए	–	शक्ति के अनुसार
निसीहिआए	–	अपने शरीर को पाप क्रियासे हटाकर
अणुजाणह	–	आज्ञा दिजिए
मे	–	मुक्ते
मिउग्गहं	–	परिमित भूमि (अवग्रह) में प्रवेश करने की
निसीहि	–	पापक्रिया को रोक कर
अहो कायं	–	(आपके) चरणो को
काय संफास	–	मस्तक से स्पर्श करता हू, मेरे छूने से
खमणिज्जो	–	क्षमा के योग्य है
भे	–	आपको
किलामो	–	बाधा हुई हो
अप्प किलताणं	–	अल्प देह ग्लानि वाले
बहुसुभेणं	–	बहुत शुभ क्रियाओं से
भे	–	आपका
दिवसो	–	दिन
वइक्कंतो	–	व्यतीत हुआ है ?

जत्ता	–	सयम यात्रा
भे	–	आपकी (निर्बाध है ?)
जवणिज्जं	–	मन तथा इन्द्रियो की पीडा से रहित है ?
च	–	और
भे	–	आपका शरीर
खामेमि	–	खमाता हू
खमासमणो	–	हे क्षमाश्रमरग !
देवसियं	–	दिवस सम्बन्धी
वइक्कमं	–	अपराध को
आवस्सियाए	–	आवश्यक क्रिया करने मे जो भी विपरीत अनुष्ठान हुवा हो, उससे
पडिक्कमामि	–	निवृत होता हू
खमासमणाण	–	क्राप श्रमाश्रमण की
देवसिआए	–	दिवस सम्बन्धो
आसायणाए	–	आशातना द्वारा
तित्तीसत्रयराए	–	तेतीस मे से किसी भी
जं किचि	–	जिस किसी
मिच्छाए	–	मिथ्याभाव से की हुई
मणदुक्कडाए	–	दुष्ट मन से की हुई
वयदुक्कडाए	–	दुवचन से की हुई
काय दुक्कडाए	–	शरीर की दुष्ट चेष्टा से की हुई
कोहाए	–	क्रोध से की हुई
माणाए	–	मान से की हुई
मायाए	–	माया से की हुई
लोहाए	–	लोभ से की हुई
सव्व कालियाए	–	सर्व काल से की हुई
सव्व मिच्छोवयाराए	–	सर्व मिथ्या आचरण से पूर्ण
सव्व धम्माइक्कमणाए	–	पाच समिति, तीन गुप्ति रूप धर्मो का उल्लघन करने वाली
आसायणाए	–	आशातना से
जो	–	जो
मे	–	मैने
देवसिओ	–	दिवस सम्बन्धी

अइयारो	–	अतिचारो का सेवन
कओ	–	किया हो
तस्स	–	उसका
खमासमणो	–	हे क्षमाश्रमणे ।
पडिक्कामामि	–	प्रतिक्रमण करता हूं
निंदामि	–	(उसकी) निदा करता हू
गरिहामि	–	गुरु साक्षी से विशेष निन्दा करता हूं
अप्पाणं	–	(आशातना करने वाली) अपनी आत्मा
वोसिरामि	–	त्याग करता हूं अर्थात् पाप व्यापार से अलग करता हूं ।

भावार्थ – हे क्षमावान् श्रमण ! मै अपने शरीर को पाप क्रिया से हटा कर शक्ति के अनुसार वन्दन करना चाहता हूं । इसलिये मुझको परिमित भूमि (अवग्रह) मे प्रवेश करने की आज्ञा दिजिए । पापक्रिया को रोक कर मै आपके चरण को अपने मस्तक से स्पर्श करता हूं । मेरे छूने से आपको बाधा हुई हो तो उसे क्षमा कीजिये । आपने अल्पग्लान अवस्था में रहकर बहुत शुभ क्रियाओ से तो दिवस बिताया है ? आपकी संयम यात्रा तो निर्बाध है ? और आपका शरीर, मन तथा इन्द्रियो की पीड़ा से तो रहित है ? हे क्षमावान् श्रमण ? मै आपको दिवस सम्वन्धी अपराध के लिये खमाता हू और आवश्यक क्रिया करने मे जो विपरीत अनुष्ठान हुआ है उससे निवृत होता हू । आप क्षमाश्रमण की दिन में हुई, तेतीस मे से किसी भी आशातना द्वारा मैंने जो दिवस सम्वन्धी अतिचार सेवन किया हो, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हू तथा किसी मिथ्याभाव से की हुई दुष्ट मन, वचन और काया से की हुई, क्रोध मान, माया लोभ से की हुई आशातना के द्वारा जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतिचार सेवन किया हो, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हू तथा सर्वकाल सम्बन्धी सर्व मिथ्या आचारणो से परिपूर्ण और सव प्रकार से धर्म का उल्लघन करने वाली आशातना से जो मैने दिवस सम्वन्धी अतिचार किया हो, हे क्षमाश्रमण । उससे मै निवृत होना हूं, उसकी मै निदा करता हूं, विशेष निन्दा करता हूं गुरु के सामने निन्दा करता हू, और आत्मा के पाप सम्वन्धी व्यापारो से निवृत्त होना हू ।

।। समुच्चय पाठ ।।

इस प्रकार 14 ज्ञान के, 5 दर्शन (सम्यकत्व) के, 60 बारह व्रत

के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखना के-इन 99 अतिचारो मे से किसी भी अतिचार का जानते अजानते मन, वचन, काया से सेवन कियो हो, कराया हो, करते को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

।। तस्स सव्वस्स का पाठ ।।

तस्स सव्वस्स देवासियस्स अइयारस्स दुब्भासियदुच्चिंतियदुचिट्ठियस्स आलोयन्तो पडिक्कमामि ।

तस्स	–	उस
सव्वस्स	–	सर्व
देवसियस्स	–	दिवस सम्बन्धी
अइयारस्स	–	अतिचार की
दुब्भासिय दुच्चिंतिय	–	दुर्वचन, दुष्ट विचार तथा काया द्वारा किये
दुचिट्ठियस्स	–	गये दुष्ट व्यवहार को
आलोयंतो	–	आलोचना करता हुआ
पडिक्कमामि	–	निवृत होता हू ।

भावार्थ – दुर्वचन बोल कर, मन मे बुरे विचार उत्पन्न करके तथा काया द्वारा दुष्ट व्यवहार (प्रवृत्ति) करके दिन मे जो मैने अतिचार किये हो, उनकी आलोचना करता हुआ उन पापों से मै निवृत्त होता हू ।

।। चत्तारि मंगलं का पाठ ।।

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धामंगलं, साहू मगल, केवलिपण्णत्तो धम्मो मगलं । चत्तारि लोगुत्तमा अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धालोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलीपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो । चत्तारिशरण पवज्जामि, अरिहंते शरणंपवज्जामि, सिद्धेशरणं पवज्जामि, साहू शरण पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि ।

अरिहंतो का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओ का शरणा, केवलीपरूपित दया धर्म का शरणा ।

चार शरणा, दु:ख हरणा और न शरणा कोय ।
जो भवि, प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय ।

चत्तारी	–	चार
मगल	–	मंगल है

अरिहंता मंगलं	–	अरिहंत मंगल है
सिद्धा मंगलं	–	सिद्ध मंगल है
साहू मंगलं	–	साधु मंगल हैं
केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं	–	केवली प्ररुपित धर्म मंगल है
चत्तारी लोगुत्तमा	–	चार पदार्थ लोक-उत्तम है
अरिहंता लोगुत्तमा	–	अरिहंत लोकोत्तम है
सिद्धा लोगुत्तमा	–	सिद्ध लोकोत्तम हैं
साहू लोगुत्तमा	–	साधु लोकोत्तम है
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो	–	केवली प्ररुपित धर्म लोकोत्तम है
चत्तारि शरणं	–	चार शरणों को
पवज्जामि	–	प्राप्त होता हू (ग्रहण करता हू)
अरिहंते शरणं	–	अरिहंत भगवान् की शरण
पवज्जामि	–	प्राप्त होता हूं
सिद्धे शरणं पवज्जामि	–	साधुओ की शरण को प्राप्त होता हू
साहू शरणं पवज्जामि	–	साधुओं की शरण को प्राप्त होता हू
केवलीपण्णत्तं धम्मं	–	केवली प्ररुपित धर्म की
शरणं पवज्जामि	–	शरण को प्राप्त होता हू

भावार्थ : इस लोक मे अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररुपित धर्म ये चार मंगल है तथा लोक में श्रेष्ठ हैं। मै इन चारो की शरण लेता हू।

॥ दंसण समकित का पाठ ॥

दंसणसम्मत्त-परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि।
वावण्णकुदंसणवज्जणा य सम्मत सद्दहणा ॥

एव समणोवासएणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा परपासंडसंथवो, इन पाच अतिचारो में से जो कोई अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

॥ बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ ॥

पहला अणुव्रत-थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण त्रस जीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पचेंदिय जान के पहिचान के संकल्प करके उनमें स्वसम्बन्धी शरीर के भीतर में पीडाकारी, सापराधी को छोड निरपराधी को

ाकुट्टी (हनने) की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविह तिविहेण–न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे पहले थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा ाजहा ते आलोउ – बधे वहे छविच्छेए, अइभारे भत्तपाणविच्छेए तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

अणुव्रत	–	महाव्रत की अपेक्षा छोटा व्रत
थूलाओ	–	स्थूल-मोटा
पाणाइवायाओ	–	प्राणातिपात जीव हिसा से
वेरमण	–	निवृत्त होना, अलग होना
पच्चक्खाण	–	त्याग
पेयाला	–	प्रधान
बधे	–	बाधना
वहे	–	निर्दयता से पीटना, गहरा घाव करना
छविच्छेए	–	शरीर की चमडी का छेदन करना
अइभारे	–	अधिक भार लादना
भत्तपाणविच्छेए	–	खाने - पीने मे रुकावट डालना

भावार्थ – मै स्वसम्बन्धी शरीर से पीडाकारी अपराधी जीवो को छोडकर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय त्रस जीवो की हिसा सकल्प करकेमन, वचन और काया से न करुगा, न कराऊगा । जो मैने किसी जीव को बन्धन से बाधा हो, चाबुक लाठी आदि से मारा हो, पीटा हो, किसी जीव के चर्म का छेदन किया हो, अधिक भार लादा हो तथा अन्न पानी का विच्छेद किया हो तो वे मेरे सब पाप निष्फल हो ।

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, कन्नालीए, गोवालिए, भोमालीए, णासावहारो (थापणमोसो), कूडसक्खिजे (कूड़ी साख) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चखाण, जावज्जीवाए दुविह तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा एव दूजा स्थूल मृषावाद वेरमणं व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउं–सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमन्तभेए, (स्त्रियो को सदार के स्थान पर सभत्तार बोलना), मोसोवएसे, कूडलेहकरणे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

मुसावायाओ	–	मृषावाद से

कन्नालीए	–	कन्या, वर आदि मनुष्य सम्बन्धी झू
गोवालीए	–	गाय, भैस आदि पशु सम्बन्धी झू
भोमालीए	–	भूमि सम्बन्धी झूठ
णासावहारो	–	धरोहर को दबाना अथवा धरो- के विषय में
(थापणमोसो)	–	झूठ बोलना
कूडसक्खिज्जे	–	झूठी साक्षी देना
सहसब्भक्खाणे	–	बिना विचारे किसी पर झूठा आ- लगाना
रहस्सभक्खाणे	–	एकान्त मे मत्रणा (सलाह) करते हुए व्य- पर झूठा आरोप लगाना
सदारमंतभेए	–	अपनी स्त्री के गुप्त विचार प्रकट कर-
मोसोवएसे	–	झूठा उपदेश देना
कूडलेहकरणे	–	झूठा लेख लिखना

भावार्थ – मै जीवनपर्यन्त मन, वचन, काया से स्थूल झूठ नही बोलू- न बोलाऊंगा, कन्या-वर के सम्बन्ध मे गाय, भैस आदि पशुओ के विष- तथा भूमि के विषय मे कभी असत्य नही बोलूंगा। किसी की रखी हुई धरो- (सौंपी हुई रकम) को नही दबाऊंगा और न धरोहर को हीनाधिक बता- तथा किसी की झूठी गवाही नही दूंगा। यदि मैंने किसी पर झूठा आ- लगाया हो, एकांत मे मंत्रणा करते हुए व्यक्तियो पर झूठा आरोप लगाया हो, अपनी स्त्री के गुप्त विचार प्रकाशित किये हों, मिथ्या उपदेश दिया हो, झू- लेख लिखा हो तो मेरे वे सब पाप निष्फल हों।

तीजा अणुव्रत थूलाओ अदिण्णदाणाओ वेरमणं, खात खन कर, गांठ खोल कर, ताले पर कुंची लगा कर, मार्ग में चलते को लूट कर, प- हुई घणियाती मोटी वस्तु जान कर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पडी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए, दुविहं तिविहेणं – न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्ताद- वेरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलो- तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुल्लकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

अदिण्णादाणाओ	–	अदता से - स्वामी की बिना आज्ञा वस्तु को लेने से
निर्भ्रमी	–	शका रहित
तेनाहडे	–	चोर की चुराई हुई वस्तु को लेना
तक्करप्पओगे	–	चोर को सहायता देना
विरुद्ध रज्जाइक्कमे	–	विरुद्ध राज्य का अतिक्रम(उल्लघन) करना, लडाई के समय विरुद्ध राज्य मे बिना आज्ञा आना जाना
कूडतुल्लकूडमाणे	–	झूठा तोल (बाट) रखना तथा झूठा गज आदि का माप रखना
तप्पडिरुवग ववहारे	–	अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु को मिलाना । उत्तम वस्तु को दिखलाकर निष्कृष्ट वस्तु - देना।

भावार्थ – मै किसी के मकान मे खात लगाकर अर्थात् भीत फोडकर, गाठ खोलकर, ताले पर कुची लगाकर अथवा ताला तोडकर किसी की वस्तु नही लूगा, मार्ग मे चलते हुए को नही लूटूगा, किसी की मार्ग में पडी हुई मोटी वस्तु को नही लूगा इत्यादि रुप से सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पडी हुई शका रहित वस्तु के उपरान्त स्थूल चोरी को मन, वचन ,काया से न करुगा और न कराऊगा । यदि मैने चोरी की वस्तु ली हो, चोर को सहायता दी हो, या चोरी करने का उपाय बतलाया हो, लडाई के समय विरुद्ध राज्य मे आया-गया होऊ, झूठा तोल व माप रखा हो अथवा उत्तम वस्तु दिखाकर खराब वस्तु दी हो तो मै इन कृकत्यो (बुरे कामो) की आलोचना करता हू और चाहता हू कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो ।

चौथा अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ वेरमण #सदारसतोसिए, अवसेसमेहुणविहि पच्चक्खामि जावज्जीवाए देव देवी सम्बन्धी दुविह तिविहेण– न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, तथा मनुष्य तिर्यच सम्बन्धी एगविह एगविहेण – न करेमि कायसा, एव चौथा स्थूल स्वदार सतोष, परदार विवर्जन रुप मैथुन वेरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोउ इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे अनगक्रीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

स्वदार सतोष ऐसा पुरुष को बोलना चाहिए और स्त्री को स्वपति सतोष ऐसा बोलना चाहिए । जिसको सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवन का त्याग हो, उसका सदारसन्तोसिए

अवसेस मेहुं विहि के स्थान पर सव्वप्पगार मेहुणं बोलना चाहिए।

सदारसंतोसिए – अपनी विवाहिता स्त्री में संतोष [illegible]

अवसेस मेहुणविहिं – अन्य समस्त प्रकार के मैथुन सेवन [illegible]

पच्चक्खामि – त्याग करता हू

एगविहं एगविहेणं – एक करण, एक योग से

इत्तरिय परिग्गहिया गमणे– कुछ समय के लिए अपने अधीन [illegible] इत्वरपरिगृहिता कहलाती है उसके [illegible] क्रीडा करने के लिए आलाप-संलाप [illegible] करना अथवा अल्पवय वाली अर्थात् जिसकी उम्र अभी भोग योग्य नहीं हुई है ऐसी विवाहिता स्त्री से गमन करना,

अपरिग्गहिय गमणे – वेश्या, अनाथ, कन्या ,विधवा, कुल[illegible] आदि अपरिगृहिता कहलाती है। इनके [illegible] क्रीडा करने के लिये आलाप-संलाप [illegible] करना अथवा जिस कन्या के सगाई [illegible] तो हो चुकी है किन्तु अभी विवाह नहीं हुआ है, ऐसी कन्या के साथ गमन करना अतिचार है क्योकि वह अपनी होने पर भी अपरिगृहीता है।

अनंगक्रीड़ा – काम सेवन के प्राकृतिक अंग के सिवा अन्य अगो से जो कि काम सेवन [illegible] अनंग है,क्रीडा करना अनंग क्रीडा है स्वस्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के [illegible] मैथुन क्रिया वर्ज कर अनुराग से [illegible] आलिगन आदि करने वाले का [illegible] होता है। इसलिये यह अतिचार [illegible] है।

परविवाह करणे – अपना और अपनी सन्तान के [illegible] दूसरों का विवाह कराने [illegible] होना

[illegible] – [illegible]

भावार्थ – [illegible]

रखकर शेष सब प्रकार के मैथुन-सेवन का त्याग करता हू अर्थात देव-देवी सम्बन्धी मैथुन का सेवन मन, वचन, काया से करुंगा और न करवाऊंगा तथा मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी मैथुन सेवन काया से न करुगा। यदि मैने इत्वारिकापरिगृहीता अथवा अपरिगृहिता से गमन करने के लिये आलाप सलापादि किया हो, प्रकृति के विरुद्ध अंगो से काम-क्रिडा करने की चेष्टा की हो, दूसरे के विवाह कराने का उद्यम किया हो, कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो तो मै इन दुष्कृत्यों की आलोचना करता हू कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो।

पांचवां अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं खेत्तवत्थु का यथा परिमाण, हिरण्ण सुवण्ण का यथा परिमाण, धन-धान्य का यथा परिमाण, दुपय-चउप्पय का यथा परिमाण, कुविय धातु का यथा परिमाण किया है जो परिमाण किया है उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एवं पाचवा स्थूल परिग्रह परिनाण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोउं-खेत्तवत्थुप्पनाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे, धणधणप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

खेतवत्थुप्पवाणाइक्कमे –

हिरण्णसुवण्ण-प्पमाणाइक्क

धण धण्णप्पमाणाइक्कमे –

दुपयचउप्पय प्पमाणाइक्कमे

कुवियप्पमाणाइक्कमे –

हाथी, घोडा, चौपाये आदि धन, धान्य तथा सोना, चांदि के सिवाय ... पीतल, तांबा, लोहा, आदि धातु तथा इनसे बने हुए बर्तन आदि और ... आसन, वस्त्र आदि घर सम्बन्धी वस्तुओ का मैने जो परिमाण किया है ... उपरांत मै सम्पूर्ण परिग्रह का मन, वचन, काया से जीवनपर्यंत त्याग करता हूँ। यदि मैंने खेत, महल, मकान का परिमाण उल्लंघन किया हो, सोना, ... के परिमाण का उल्लंघन किया हो, दास-दासी आदि द्विपद और हाथी, घोडे आदि चतुष्पद की संख्या के परिमाण का उल्लंघन किया हो, सोना, चांदी के सिवाय दूसरे द्रव्यो (शय्या, आसन, बर्तन, वस्त्र आदि) की मर्यादा का उल्लंघन किया हो तो मै उसकी आलोचना करता हूं और चाहता हू कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो।

छठा दिशिव्रत उड्ढदिसि का यथा परिमाण, अहोदिसि का यथा परिमाण, तिरियदिसि का यथा परिमाण एवं यथा परिमाण किया है, उसके उपरांत स्वेच्छा काया से आगे जाकर पांच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा, एवं छठे दिशिव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा-तंजहा ते आलोउं -उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, खितवुड्ढी, सइअन्तरद्धा, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

उड्ढदिसि	-	ऊर्ध्व(ऊची) दिशा के परिमाण (मर्यादा)
प्पमाणाइक्कमे	-	का उल्लघन करना
अहोदिसि	-	अधो (नीची) दिशा के परिमाण
प्पमाणाइक्कमे	-	का उल्लघन करना
तिरियादिसि प्पमाणाइक्कमे	-	तिरछी दिशा के परिमाण का उल्लघन करना।
खित्तवुड्ढी	-	क्षेत्र बढाना
सइअन्तरद्धा	-	क्षेत्र परिमाण मे सदेह होने पर ... चलना

ऊची, नीची, तिरछी दिशाओ के उल्लघन को यहा अतिचार कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि - मर्यादा की हुई भूमि से बाहर जाने की इच्छा कर रहा है लेकिन बाहर गया नही है, तब तक अतिचार है, बाहर चले जाने पर अनाचार है।

सातवां व्रत–उवभोगपरिभोगविहि पच्चक्खायमाणे 1. उल्लणियाविहि, 2. दंतणविहि, 3. फलविहि, 4. अब्भंगणविहि, 5. उवट्टणविहि, 6 मज्जणविहि, 7 वत्थविहि, 8विलेवणविहि, 9 पुप्फविहि, 10 आभरणविहि, 11 धूवविहि, 12 पेज्जविहि, 13 भक्खणविहि, 14 ओदणविहि, 15 सूपविहि, 16 विगयविहि, 17 सागविहि, 18 माहुरविहि, 19 जीमणविहि, 20 पाणीयविहि, 21 मुखवासविहि, 22 वाहणविहि, 23 उवाणहविहि, 24 सयणविहि, 25 सचित्तविहि, 26 दव्वविहि, इन 26 बोलो का यथा परिमाण किया है, इसके उपरान्त उवभोगपरिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविह तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा एव सातवां उवभोग परिभोग दुविहे पण्णत्ते तजहा–भोयणाओ य, कम्मओ य, भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउं, सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया कम्मओ य णं समणोवासएण पण्णरस कम्मादाणाइ जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तंजहाते आलोउं इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लछणकम्मे, दवग्गिदावणया सरद्दहतलायसोसणया, असई जण पोसणया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(1) उल्लणियाविहि	–	शरीर पोछने के अगोछे आदि वस्त्रो को काम में लाने की मर्यादा करना।
(2) दतणविहि	–	दातो को साफ करने के लिये दतौन आदि पदार्थो की मर्यादा करना।
(3) फलविहि	–	आवला आदि फल से बाल धोने की मर्यादा करना।
(4) अब्भंगणविहि	–	शरीर पर मालिश करने के लिये तैलादि द्रव्यो की मर्यादा करना।
(5) उवट्टणविहि	–	शरीर पर उबटन (पीठी आदि) की

		मालिश करने की मर्यादा कर[illegible]
(6) मज्जणविहि	–	स्नान के लिये स्नान की स[illegible] और जल का परिमाण करन[illegible]
(7) वत्थविहि	–	वस्त्र की मर्यादा करना ।
(8) विलेवणविहि	–	चन्दनादि का लेपन करने की म[illegible] करना ।
(9) पुप्फविहि	–	फूलों की तथा फूलमाला की म[illegible] करना ।
(10) आभरणविहि	–	आभूषणों की मर्यादा करना ।
(11) धूपविहि	–	धूप के द्रव्यो की मर्यादा करना ।
(12) पेज्जविहि	–	पीने की वस्तुओ की मर्यादा कर[illegible]
(13) भक्खणविहि	–	घेवर आदि पक्वान्न की मर्यादा करना।
(14) ओदणविहि	–	रन्धे हुए चावल (भात), गेहूं (धू[illegible] आदि की मर्यादा करना ।
(15) सूपविहि	–	मूंग, चना आदि की दाल की मर्[illegible] करना ।
(16) विगयविहि	–	घी, तेल, दूध, दही आदि की मर्यादा करना ।
(17) सागविहि	–	वथुआ आदि शाक की मर्यादा करना।
(18) माहुरविहि	–	मधुर फलो की मर्यादा करना ।
(19) जीमणविहि	–	बड़ा, पकौडी, पूरणपोली, रोटी [illegible] जीमने के द्रव्यों की मर्यादा करना ।
(20) पाणीयविहि	–	पीने के लिये पानी की मर्या[illegible]
(21) मुखवासविहि	–	लौंग, इलायची, सुपारी आदि [illegible] सुगन्धित करने वाली वस्तु [illegible] करना ।(उपासकदशा[illegible]
(22) वाहणविहि	–	हाथी, घोड़े, रथ आदि [illegible] करना ।
(23) उवाणहविहि	–	[illegible] के जूते, [illegible] मर्यादा करना ।
(24) [illegible]विहि	–	[illegible]

		करना।
(25) सचित्ताविहि	–	सचित्त वस्तुओ की मर्यादा करना ।
(26) दव्वविहि	–	खाने-पीने के काम आने वाले सचित्त या अचित्त पदार्थ जो ऊपर केनियमो से बचे हुए है, उनकी मर्यादा करना। (धर्म सग्रह अधिकार 2 श्लोक 34 टीका)
उवभोग	–	जो पदार्थ एक बार भोगने मे आता है, जैसे अन्न-जल आदि
परिभोग	–	जो पदार्थ अनेक बार भोगने मे आता हैं, जैसे वस्त्र, आभूषण इत्यादि

उवभोग परिभोग शब्दो का उपर्युक्त अर्थ भगवती शतक 7 उद्देश्य मे 2 तथा हरिभद्रयावश्यक अध्ययन 6 सूत्र 7 में मिलता है । उपासकदशांग प्रथम अध्ययन सूत्र 7 मे इनका अर्थ उपर्युक्त भी किया है और इस प्रकार भी किया है । बार-बार भोगे जाने वाले पदार्थ उपभोग और एक ही बार भोगे जाने वाले पदार्थ परिभोग कहलाते है ।

दुविहे	–	दो प्रकार का
पण्णते	–	कहा गया है
तजहा	–	वह इस प्रकार
भोयणाओ	–	भोजन की अपेक्षा से
य	–	और
कम्मओ	–	कर्म की अपेक्षा से
समणोवासएणं	–	श्रावक के
पच अइयारा	–	पाच अतिचार
जाणियव्वा	–	जानने योग्य है
न समायरियव्वा	–	आचरण करने योग्य नही
सचित्ताहारे	–	#मर्यादा से अधिक सचित्त वस्तुका भोजन करना
सचित्तपडिबद्धाहारे	–	सचित्त वृक्षादि से सम्बद्ध (लगे हुए) गोद, पके फल आदि खाना
अप्पउलिओ	–	अग्नि से बिना पकी वस्तु का आहार करना ।
सहिभक्खणया	–	जिसमें जीव के प्रदेशो का सम्भव हो, ऐसी तत्काल पीसी हुई या मर्दन की हुई वस्तु का भोजन करना ।

दुप्पउलिओसहि भक्खणया - अधपकी हुई वस्तु का भोजन [illegible]

तुच्छोसहिभक्खणया - तुच्छ ओषधि (जिसने सारा [illegible] है उस वस्तु) का भक्षण करना

सचित्त त्यागी श्रावक का सचित्त वस्तु जैसे नमक, पृथ्वी, [illegible] आदि का आहार करने के लिये उद्यत होना तथा सचित्त वस्तु का परिमाण [illegible] का परिमाण कये हुए पदार्थो के उपरान्त सचित्त वस्तु को खाने के लिये [illegible] सचित्ताहार अतिचार है ।

भावार्थ- मैंने शरीर पौछने के अंगोछे आदि वस्त्र का, दतौन करने [illegible] आवला आदि फल से बाल धोने का, तेल आदि की मालिश करने का [illegible] करने का, स्नान करने के जल का, वस्त्र पहनने का, चन्दनादि का लेपन [illegible] का, पुष्प सूंघने का, आभूषण पहनने का, धूप जलाने का, दूध आदि पीने [illegible] चावल गेहूं आदि का, मूंग आदि की दाल का, दूध-दही आदि विगय का, [illegible] का, मधुर रस का, जीमने का, पीने के पानी का, इलायची, लोग इत्यादि [illegible] को सुगन्धित करने वाली वस्तुओ का, घोडा हाथी, रथ आदि सवारी का, [illegible] आदि पहनने का, पलंग आदि पर सोने का, सचित्त वस्तु के सेवन [illegible] इनसे बचे हुए बाकी के सब पदार्थो का, जो परिमाण (मर्यादा) किया है, [illegible] सिवाय उपभोग तथा परिभोग में आनेवाली सब वस्तुओ का त्याग करता [illegible] जीवन-पर्यन्त उनका मन, वचन, काया से सेवन नहीं करुगा । [illegible] परिभोग दो प्रकार का है - भोजन, (भोग्य पदार्थ) सम्बन्धी और कर्म [illegible] व्यापारो से भोग्य पदार्थ की प्राप्ति होती है उन वाणिज्य) सम्बन्धी । [illegible] सम्बन्धी उपभोग परिभोग के पाच और कर्म सम्बन्धी उपभोग-परिभोग [illegible] पन्द्रह, इस तरह कुल बीस अतिचार होते हे । वे निम्न प्रकार [illegible] आलोचना करता हू । यदि मैने 1 मर्यादा से अधिक सचित्त वस्तु [illegible] किया हो, 2 सचित्त वृक्षादि के साथ लगे हुए गोद आदि पदार्थो [illegible] किया, 3 अग्नि से बिना पकी हुई वस्तु का भोजन किया हो, 4 [illegible] का भोजन किया हो, 5 तुच्छ औषधि का भक्षण किया हो [illegible] [illegible] वर्णन पहले कर आये है, उनका यदि सेवन [illegible] [illegible] आलोचना करता हू और चाहता हू कि मेरे सब पाप [illegible]

अण्णत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण–न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं आठवा अणड्डादड विरमण व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा तजहा ते आलोउं–कंदप्पे कुक्कुइए, मोहरिए, सजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइरित्ते, तस्स मिच्छा मि दुक्कड । /

अणड्डादंड	–	बिना प्रयोजन ऐसे काम करना, जिसमे जीवो की हिसा होती है अथवा जीवो को पीडा होती है।
अवज्फाणा	–	आर्तध्यान और रौद्रध्यान के वश होकर इष्ट सयोग
यरिए	–	अनिष्ट वियोग की चिन्ता करना तथा किसी प्राणी को हानि पहुचाने आदि का विचार करना ।
पमायायरिए	–	अनर्थ प्रमादपूर्वक आचरण करना अर्थात् मद्य # विषय, कषाय, निद्रा और विकथा मे लगे रहना तथा प्रमाद से काम करना, जिससे जीवो की हिसा होती है, जैसे बिना देखे चलना-फिरना, वस्तु को उठाना, रखना, पानी, तेल, घी, आदि के बर्तनो को उघाडा रखना इत्यादि ।
हिसप्पयाणे	–	(अनर्थ) जिनसे जीवो की घात होती है, ऐसी तलवार, बन्दूक, कुदाली, फावडा आदि वस्तुए को देना ।

मज्ज विषय कसाया, निद्दा विगहा य पचमी भणिया । एए पच पमाया जीव पमाया जीव पाडेति ससारे ॥1॥

भावार्थ : मद्य, विषय, कषाय, निद्रा ओर विकथा ये पाच प्रमाद जीव को ससार मे गिराते है ।

पावकम्मोवएसे	–	(अनर्थ) जिन कामो से जीव की हिसा होती है, ऐसे मकान बनवाने, वृक्ष कटवाने आदि का उपदेश देना।
कन्दप्पे	–	काम उत्पन्न करने वाली कथाए करना, भड-वचन बोलना ।
कुक्कुइए	–	दूसरो को हसाने के लिए भाडो की

		तरह हंसी-दिल्लगी करना व [illegible] की नकल करना।
मोहरिए	–	ढीठता से निरर्थक बोलना।
संजुत्ताहिगरणे	–	पूरी तरह काम देने वाले ऊखल मूसल, शिला, लोढा, तलवार [illegible] हिसाकारी हथि-यार या औजार [illegible] प्रयोजन से अधिक संग्रह करना।
उपभोगपरि भोगाइरित्त	–	उपभोग और परिभोग मे आने वाले खानेपीने, पहनने आदि की वस्तुओं का अधिक संग्रह करना।

भावार्थ – बिना प्रयोजन दोषजनक काम करने का नाम अनर्थदण्ड है। इसके चार भेद है - अपध्यान, प्रमाद-चर्या, हिसादान और पापोपदेश। इष्ट संयोग, अनिष्ट वियोग की चिन्ता करना तथा दूसरो को हानि पहुंचाने आदि का विचार करना अपध्यान है। असावधानी से काम करना, धार्मिक कार्यो को त्याग कर दूसरे कार्यो में लगे रहना प्रमादचर्या है। दूसरो को हल ऊखल, मूसल, तलवार, बन्दूक आदि बिना प्रयोजन हिंसा के उपकरण देना हिंसादान है। मकान बनाने आदि पाप कार्यो का दूसरो को उपदेश देना पापोपदेश है। मैं इन चारो प्रकार के अनर्थदंड का त्याग करता हूं। (अपनी आत्मरक्षा के लिये राजा की आज्ञा से, जाति के तथा परिवार के कुटुम्ब के मनुष्यो के लिए, यक्ष, भूत आदि देवो के वशीभूत होकर अनर्थदण्ड का सेवन करना पड़ा तो इनका आगार रखता हू।) इन आगारो के सिवाय मै जीवन भर अनर्थदण्ड का मन-वचन-काया से स्वय सेवन नहीं करुंगा और न कराऊंगा। यदि मैने काम जागृत करने वाली कथाए की हो। भाडो की तरह दूसरों को हसाने के लिए हसी-दिल्लगी की हो या दूसरो की नकल की हो, निरर्थक बकवाद किया हो, तलवार, ऊखल, मूसल, आदि हिसाकारी हथियार या औजारो का निष्प्रयोजन संग्रह किया हो, मकान बनाने आदि पापकारी [illegible] उपदेश दिया हो, अपनी तथा कुटुम्बियो की आवश्यकताओ के सिवा [illegible] अन्न आदि का संग्रह किया हो तो मै उनकी आलोचना करता हूं [illegible] आशा [illegible] कि मेरे सब पाप निष्फल हो।

सद्दहणा प्ररुपणा तो है सामायिक का अवसर आये सामायिक करुं तब फरसना करके शुद्ध होऊं एवं नवमें सामायिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणीहाणे कायदुप्पणीहाणे सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सावज्जं	–	पाप युक्त
जोगं	–	मन, वचन, काया की प्रवृत्ति का
पच्चक्खामि	–	त्याग करता हूं
जावनियम	–	नियम पर्यन्त
पज्जुवासामि	–	उपासना करता हू, सेवन करता हू
सद्दहणा	–	श्रद्धा, रुचि
प्ररुपणा	–	विवेचना (प्रतिपादन करना)
मणदुप्पणिहाणे	–	मन मे बुरे विचार उत्पन्न करना
वयदुप्पणिहाणे	–	कठोर या पापजनक वचन बोलना
कायदुप्पणीहाणे	–	बिना देखे पृथ्वी पर बैठना - उठना आदि
सामाइयस्स सइ अकरणया	–	सामायिक करने का काल - विस्मरण करना
सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया	–	सामायिक का समय होने से पहले ही लेना (समाप्त करना)

भावार्थ – मैने मन, वचन, और काया की दुष्ट प्रवृत्ति को त्याग कर जितने काल का नियम किया है, उसके अनुसार मै सामायिक का पालन करुगा। मन मे बुरे विचार उत्पन्न नही होने से, कठोर या पापजनक वचन नही बोलने से काया की हलने-चलने आदि क्रिया को रोकने से आत्मा मे जो शाति उत्पन्न होती है, उसको सामायिक कहते है। इसलिए मै नियमपूर्वक मन, वचन, काया से पापजनक क्रिया न करुगा और न दूसरो से कराऊगा। यदि मैने सामायिक के समय मन मे बुरे विचार किये हो, कठोर या पापजनक वचन बोले हो, अयतना-पूर्वक शरीर से चलना-फिरना, हाथ-पांव को फैलाना, संकोचना आदि क्रियाए की हो, सामायिक करने का काल याद न रखा हो तथा अल्प - काल तक या अनवस्थित रुप से जैसे-तैसे ही सामायिक की हो तो मै उसकी आलोचना करता हू और चाहता हू कि मेरे सम्पूर्ण पाप निष्फल हो।

दसवां देशावगाशिक व्रत–दिनप्रति प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक

छहों दिशा में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी हो, उसके उपरान्त आगे जाने का तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेण - न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। जितनी भूमिका की हद रखी है, उसमें जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है, उसके उपरान्त उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं - न करेमि मणसा, वयसा, कायसा, एवं दशवें देसावकाशिक व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए रुवाणुवाए, बहिया पुग्गलपक्खेवे, तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

जाव अहोरत्तं	–	एक दिन रात पर्यन्त
आणवण प्पओगे	–	मर्यादा किये हुए क्षेत्र से आगे की सचित्तादि वस्तु को मंगाना
पेसवण प्पओगे	–	परिमाण किये हुए क्षेत्र से आगे की वस्तु को मंगवाने के लिये या लेन-देन करने के लिए अपने नौकर आदि मनुष्य को भेजना
सद्दाणुवाए	–	सीमा से बाहर के मनुष्य को अपने पास बुलाने के लिए अपना या पदार्थ का रुप दिखाना
रुवाणुवाए	–	सीमा से बाहर के मनुष्यों को खास करके या और किसी शब्द के द्वारा अपना ज्ञान कराना।
बहियापुग्गल पक्खेवे	–	सीमा से बाहर के मनुष्यों को बुलाने के लिए कंकर आदि फेकना

भावार्थ - छटे दिशव्रत में जो दिशाओं का परिमाण किया गया है, देसावकाशिक व्रत मे उसका प्रतिदिन संकोच किया जाता है, उस संकोच किये गये दिशाओं के परिमाण से बाहर के क्षेत्र में जाने का तथा दूसरो को भेजने का त्याग करता हूं। एक दिन और एक रात तक, परिमाण की गई पूर्वादि छह दिशाओं से आगे न स्वयं जाऊंगा और न दूसरो को भेजूंगा। जितने क्षेत्र की मर्यादा की है, उसमे द्रव्यादि का जितना परिमाण किया है, उस परिमाण के सिवाय उपभोग-परिभोग निमित्त से भोगने का त्याग करता हू। मन, वचन, काया से इनका सेवन नही करुंगा। यदि मैंने मर्यादा से वाहर की कोई वस्तु मगाई हो, मर्यादा से वाहर के क्षेत्र में किसी वस्तु को मंगाने के लिये या लेन-देन करने के लिये किसी को भेजा हो मर्यादा से वाहर के क्षेत्र मे रहने वाले

नुष्य को शब्द करके अपना ज्ञान कराया हो, मर्यादा से बाहर के मनुष्य को लाने के लिये अपना या पदार्थ का रुप दिखाया हो या ककर आदि फेककर अपना ज्ञान कराया हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूँ और चाहता हू कि रे वे सब पाप निष्फल हो।

ग्यारहवां पडिपुण्ण पौषधव्रत–असणं पाण खाइमं साइम का पच्चक्खाण, अबभ सेवन का पच्चवक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चखाण, मालावन्नगविलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमुसलादिक सावज्ज जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा ऐसी मेरी सद्दहणा परुपणा तो है पौषध का अवसर आये पौषध करु तब फरसना करके शुद्ध होऊ एव ग्यारहवा प्रतिपूर्ण पौषध व्रत का पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोऊं - अप्पडिलेहिय, दुप्पडिलेहिय, सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिय दुपमज्जिय सेज्जासंथारए, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमि, अपमज्जिय दुप्पमज्जियं उच्चारपासवण भूमि, पोसहस्स, सम्म अण्णुपालणया, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

असण	–	दाल, रोटी, भात, आदि अन्न वस्तु तथा दूध आदि विगय
पाण	–	जल धोवन आदि पीने की वस्तु
खाइम	–	फल-मेवा औषधि आदि
साइम	–	लोंग सुपारी, इलायची, चूर्ण आदि भोजन के बाद खाने लायक स्वादिष्ट पदार्थ
अबभ सेवन	–	मैथुन सेवन
अमुक मणिसुवर्ण	–	मणि, मोती तथा सोने-चादी के आभूषण आदि
माला	–	फूलमाला
वन्नग	–	सुगन्धित चूर्णादि
विलेवण	-	चन्दन आदि का लेप
सत्थ	–	तलवार आदि शस्त्र
मुसलादि	–	मूसल आदि औजार
सावज्जजोग	–	पाप सहित व्यापार

अप्पडिलेहिय	–	सोने के लिए कुश कम्बल आदि का जो संस्तारक
दुप्पडिलेहिय	–	आसन है उसको नही देखा हो या अच्छी तरह न
सेज्जासंथार	–	देखा हो
अप्पमज्जिय	–	सोने के लिए कुश, कम्बल आदि का जो संसतारक
दुप्पमज्जिय	–	आसन है उसका प्रमार्जन (पडिलेहण) नही किया हो
सेज्जासंथारए	–	या अच्छी तरह न किया हो
अपडिलेहिय-	–	मल-मूत्र त्याग करने की भूमि को नही देखा हो या
दुप्पडिलेहिय	–	असावधानी से देखा हो
उच्चारपासवणभूमि अप्पमज्जियदुप्प	–	मल-मूत्र त्याग करने की भूमि का प्रमार्जन नही किया
मज्जियउच्चार पासवण भूमि	–	हो या अच्छी तरह नही किया हो
पोसहस्स	–	पोषध का
सम्मं	–	सम्यक् प्रकार
अणणुपालणया	–	पालन नही किया हो

भावार्थ – मै प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय में एक दिन रात के लिये अशन पान खाद्य और स्वाद्य इन चारो प्रकार के आहार का त्याग करता हूं। अब्रम्हाचर्य सेवन का, अमुक मणि सुवर्ण आदि का, आभूषण पहिनने का, फूलमाला पहिनने का, सुगन्धित चूर्ण और चन्दनादि के लेप करने का, तलवार आदि शस्त्र और हल, मूसल आदि औजारों के जितने सावद्य व्यापार हैं उन सबका त्याग करता हूं, यावत् एक दिन रात पौषध व्रत का पालन करता हुआ मै उक्त पाप क्रियाओ को मन, वचन, काया से नही करुंगा और न दूसरों से करवाऊगा। ऐसी मेरी श्रद्धा और प्ररुपणा तो है किन्तु पौषध का समय आने पर जब उसका पालन करुंगा तब शुद्ध होऊगा। यदि मैने पौषध व्रत के समय शय्या के लिये जो कुश कम्बल आदि आसन है, उनका पडिलेहण और प्रमार्जन नहीं किया हो, अथवा अच्छी तरह पडिलेहण और प्रमार्जन न किया हो, ऐसे ही मल-मूत्र त्याग करने की भूमि का पडिलेहण और प्रमार्जन न किया हो अथवा अच्छी तरह न किया हो तथा सम्यक् प्रकार

पौषध का पालन नही किया हो तो मै उसकी आलोचना करता हू और चाहता हू कि मेरे वे सब पाप निष्फल हो ।

बारहवां अतिथिसंविभागव्रत–समणे णिग्गथे फासुयएसणिज्जेणं–असण पाण, खाइम, साइमं वत्थपडिग्गहकबलपायपुंच्छणेण, पडिहारियपीढफलगसेज्जा सथारएण , ओसहभेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररुपणा है, साधु साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दू तब शूद्ध होऊ । एवं बारहवे अतिथिसंविभाग व्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तजहा ते आलोउ–सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरिआए तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

अतिथि	–	जिसके आने की कोई तिथि या समय नियत नही है
संविभागव्रत	–	ऐसे अतिथि साधु को अपने लिये तैयार किये हुए भोजनादि में से कुछ हिस्सा देना
समणे	–	श्रमण साधु
णिग्गथे	–	निर्ग्रन्थ पचमहाव्रतधारी
फासुयएसणिज्जेणं	–	प्रासुक (अचित्त) एषणीय (उद्गमादि दोष रहित) वस्तु
असणंपाणखाइंम	–	अशन पान खाद्य
साइमवत्थपडिग्गह	–	स्वाद्य, वस्त्र, पात्र
कम्बलपायपुंच्छणेणं	–	कम्बल पाद पौंछन (पाव पौछने को रजोहरण आदि)
पडिहारिय	–	वापिस लौटा देने योग्य (जिस वस्तु को पीढ
पीढफलगसेज्जा	–	साधु कुछ काल तक रख कर बाद मे वापिस लौटा देते है
सथारएण्णं	–	(ऐसे) चौकी पट्टा शय्या के लिये सस्तारक तृण का आसन
ओसहभेसज्जेण	–	औषध और भेषज (कई औषधियो के संयोग से बनी हुई गोलिया आदि)
पाडिलाभेमाणे	–	देता हुआ (बहराता हुआ)

विहरामि	–	विहार करुं (रहू)
सचितनिक्खेवणया	–	साधु को नही देने की बुद्धि से अचित वस्तु को सचित जलादि पर रखना
सचित पिहणया	–	साधु को नही देने की बुद्धि से अचित वस्तु को सचित वस्तु से ढकना
कालाईक्कमे	–	साधु के भोजन के काल काउल्लघन करना अर्थात् भोजन के समय से पहिले या पीछे साधु को भोजन के लिये यह विचार करके प्रार्थना करना कि इस समय साधु भोजन नही लेगे और मेरा दानीपना प्रकट होगा।
परवएसे	–	दान नही देने की बुद्धि से अपनी वस्तु को दूसरे की कहना
मच्छरियाए	–	अमुक पुरुष ने दान दिया है, क्या मै उससे कृपण हू या हीन हू ? इस प्रकार ईर्ष्या करके दान देने मे प्रवृति करना या दान देकर पश्चाताप करना

भावार्थ – मै अतिथिसविभाग व्रत का पालन करने के लिये निर्ग्रन्थ साधुओ को अचित्त दोष रहित अशन पान खाद्य स्वाद्य आहार का, वस्त्र पात्र कम्बल पादपौछन चोकी पट्टी सस्तारक औषधि आदि का साधु साध्वी का योग मिलने पर दान दूं तब शुद्ध होऊं, मेरी ऐसी श्रद्धा प्ररुपणा है। यदि मैंने साधु को देने योग्य, अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु पर रखा हो, अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढका हो, भोजन के समय से पहले या पीछे साधु को भिक्षा के लिये प्रार्थना की हो, (या भोजन के समय साधु-साध्वी को दान देने की भावना न भायी हो) दान करने योग्य वस्तु को दूसरे की बता के साधु को दान नही दिया हो, दूसरे को दान देते ईर्ष्या की हो, मत्सर भाव से दान दिया हो तो मै उसकी आलोचना करता हू और चाहता हू कि मेरे सब पाप निष्फल हों।

।। बड़ी सलेखना का पाठ ।।

अहं भते अपच्छिममारणातियंसंलेहणा झूसणा आराहणा पौषधशाला पूं जे, पूजके उच्चार पासवण भूमिका पडिलेहे, पडिलेह के गमणागमणे, पडिक्कमे, पडिक्कम के दर्भादिक संथारा सथारे, संथार के दर्भादिक सथारा

दुरुहे, दुरुह के पूर्व तथा उत्तर दिशि सन्मुख पल्यकादिक आसन से बैठे, बैठ के करयलसपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलिं कट्टु एवं वयासी

णमोत्थुण अरिहताण भगवंताण जाव सपत्ताणं एसे अनन्त सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके, णमोत्थुण अरिहताणं भगवताण जाव सपाविउकामाण जयवते वर्तमान काले महाविदेह क्षेत्र मे विचरते हुए तीर्थकर भगवान् को नमस्कार करके अपने धर्माचार्यजी महाराज को नमस्कार करता हू। साधु प्रमुख चारो तीर्थ को खमाकर सर्व जीव राशि को खमाकर पहले जो व्रत आदरे है उनमे जो अतिचार # दोष लगे हो, वे सर्व आलोच के पडिक्कम के, निन्द के, निःशल्य होकर के, सव्व पाणाइवाय पच्चक्खमि, सव्व मुसावाय पच्चक्खामि, सव्व अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, सव्वं मेहुण पच्चक्खामि, सव्व परिग्गह पच्चखामि, सव्व कोह माण जाव मिच्छादसणसल्ल पच्चक्खामि, सव्वं अकरणिज्जं जोग पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, करतपि अन्नं न समणुजाणामि, मणसा, वयसा कायसा ऐसे अठारह पापस्थानक पच्चक्ख कर सव्वं असण

पाणं खाइम साइम, चउव्विहं पि आहार पच्चक्खामि जावज्जीवाए, ऐसे चारो आहारपच्चक्ख कर ज पि य इम सरीरं इट्ठ, कंत, पियं, मणुण्ण, मणाम, धिज्ज, विसासिय, समय, अणुमय, बहुमय, भण्करण्डसमाण, रयणकरडगभूय, मा ण सीय, मा णं उण्ह, माणं खुहा, मा ण पिवासा, मा ण वाला, मा णं चोरा, मा ण दसमसगा, मा ण वाइय, पित्तिय, कप्फिय, सभीम, सण्विवाइय विविहा रोगायं का परीसहा उवसग्गा फासा फुसतु, एव पि य णं चरमेहि उस्सासणिस्सामेहि वोसरामि ति कट्टु ऐसे शरीर को वोसिरा कर काल अवकखमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररुपणा तो है, फरसना करुतब शुद्ध होऊ। ऐसे अपच्छिम मारणतिय सलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउ इहलोगासंसप्पओगे, परलोगा संसप्पओगे जीवियाससप्पओगे, मरणाससप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे तस्स मिच्छा मि दुक्कड।

बारह व्रतो के 60 अतिचारो का विशष खुलासा श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह प्रथम भाग के बोल न 301 से 312 तक मे है।

अपच्छिममारणातिय	–	सब के पश्चात् मृत्यु के समीप होने वाली
सलेहणा	–	सलेखना अर्थात् जिसमे शरीर कषाय ममत्त्व आदि कृश (दुर्बल) किये जाते है, ऐसा तप विशेष

झूसणा	–	संलेखना का सेवन करना।
आराहणा	–	संलेखना का अन्तकाल तक पालन करना।
पूंज के	–	प्रमार्जन करके पूंज कर
उच्चारपासवणभूमिका	–	मल-मूत्र त्यागने की भूमि का
पडिलेह के	–	पडिलेखन करके,देख करके
गमणागमणे	–	जाने आने की क्रिया का
पडिक्कम के	–	प्रतिक्रमण कर
दुरुह के	–	संथारे पर आरुढ होकर
करयलसंपरिग्गहियं	–	दोनो हाथ जोड कर
सिरसावत्तं	–	मस्तक से आवर्त्तन # करके
मत्थए अंजलिं कट्टु	–	मस्तक पर हाथ जोड के
एवं वयासी	–	इस प्रकार बोले
नमोत्थुणं	–	नमस्कार हो
अरिहंताणंभगवंताणं	–	अरिहन्त भगवान को
जाव संपत्ताणं	–	यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए को
सपाविउकामाणं	–	मोक्ष प्राप्ति की इच्छा वाले को
नि:शल्य	–	माया, मिथ्या दर्शनशल्य और नियाण इन तीन शल्यो से रहित
मिच्छादंसणसल्लं	–	मिथ्यादर्शनशल्य (मिथ्या दर्शन रुपी कंटक)
अकरणिज्जं	–	नहीं करने योग्य
इट्ठं	–	इष्ट, इच्छानुकूल (मर्जी माफिक)

आवर्त्तन - मस्तक पर जोडे हुए हाथों को तीन बार घुमाना।

कंतं	–	कान्तियुक्त
पियं	–	प्रिय, प्यारा
मणुण्णं	–	मनोज्ञ, मनोहर
मणामं	–	अत्यन्त मनोहर
धिज्जं	–	धीरज रखनेवाला - धैर्यशाली
विसासियं	–	विश्वास करने योग्य
संमयं	–	मानने योग्य
अणुमयं	–	विशेष सम्मान को प्राप्त
वहुमय	–	वहुत मानवीय

भण्डकरण्डसमाण	–	आभूषणो के करण्ड (कण्डिया - डिब्बा) के समान
रयणकरण्डगभूयं	–	रत्नो के करण्ड के समान
मा ण सीय	–	शीत (सर्दी) न हो
मा णं उण्हं	–	उष्णता (गर्मी) न हो
मा ण खुहा	–	भूख न लगे
मा णं पिवासा	–	प्यास न लगे
मा ण वाला	–	सर्प न काटे
मा ण चोरा	–	चोरो का भय न हो
मा ण दंसमसगा	–	डांस और मच्छर न सतावे
मा णं वाइयं	–	न वात
पित्तिय	–	पित्त
कप्फियं	–	कफ
संभीम	–	भयङ्कर
सण्णिवाइयं	–	सन्निपात
विविहा	–	अनेक प्रकार की
रोगायका	. –	रोग सम्बन्धी पीडाए
परीसहा	–	क्षुघा आदि परिषह (कर्म क्षय करने के लिए क्षुघा आदि की बाधा को शान्तिपूर्वक सहना)
उवसग्गा	–	उपसर्ग (देव, तिर्यञ्च आदि द्वारा दिया गया कष्ट)
फासा फुसंतु	–	सम्बन्ध करे
चरमेहि	–	अन्त के
उस्सासणिस्सासेहि	–	उच्छ्वासनि श्वासो (श्वासोच्छ्वासों)से
वोसिरामि	–	त्याग करता हू
ति कट्टु	–	ऐसा करके
कालं अणवकंखमाणे	–	काल की आकांक्षा (वाछा)नही करता हुआ
विहरामि	–	विहार करता हू विचरता हू

भावार्थ– मृत्यु का समय निकट आने पर सलेखना तप का प्रीतिपूर्वक सेवन करने के लिए पौषघशाला का प्रमार्जन (शोघन) करे। मल-मूत्र त्यागने

की भूमि का प्रतिलेखन करे। चलने-फिरने की क्रिया का प्रतिक्रमण कर पूर्व व उत्तर दिशा की और मुंह करके पल्यंक (पालस्थ) आदि आसन लगा कर दर्भादि के आसन पर बैठे और हाथ जोड कर सिर से आवर्तन करता हुआ मस्तक पर हाथ जोडकर णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवताणं जाव सपत्ताणं इस प्रकार बोल कर सिद्ध भगवान् को नमस्कार करे। णमोत्थुण अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाणं ऐसा बोल कर महाविदेह क्षेत्र मे वर्तमान काल मे जो तीर्थकर विचर रहे हैं, उनकी नमस्कार करे और पीछे अपने धर्माचार्य जी महाराज की नमस्कार करे। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इस प्रकार चतुर्विध संघ से क्षमा मांगकर समस्त जीवो से क्षमा मागे। पहले धारण किये व्रतो मे जो अतिचार लगे हो उनकी आलोचना और निन्दा करे। सम्पूर्ण हिसा, झूठचोरी, अब्रम्हाचर्य (मैथुन) और परिग्रह इन पांच पापो का तथा क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन शल्य आदि का तथा सम्पूर्ण पापजनक योगो का त्याग करे, अठारह पापास्थान का तीन करण और तीनयोग से त्याग करे। जीवन पर्यन्त चार प्रकार के आहार का त्याग करे, इसके बाद मनोज्ञ जो अपना शरीर है उनमे ममत्व हटावे और संलेखना के पापो· अतिचारो को दूर करके शुद्ध अनशन करे। इस प्रकार श्रद्धा और प्ररुपणा की शुद्धि के लिए नित्य पाठ करे। जब अन्तिम समय आवे, तब स्पर्शना द्वारा (सलेखना तप का पालन करके) शुद्ध होवे।

।। तस्स धम्मस्स का पाठ ।।

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरोमि विराहणाए तिविहेणं पडिक्कंतो वन्दामि जिणचउव्वीसं।

केवलिपण्णत्तस्स	–	केवली भाषित
तस्स	–	उस
धम्मस्स	–	धर्म की.
आराहणाए	–	आराधना के लिये
अब्भुट्ठिओमि	–	उधत हुआ हूं
तिविहेण	–	मन-वचन-काया द्वारा
विराहणाए	–	विराधना से
पडिक्कंतो	–	निवृत्त होता हुआ
विरओमि	–	विरक्त होता हुआ
जिणचउव्वीस	–	चोवीस तीर्थकरो की

वंदामि - वन्दना करता हू

भावार्थ-मै केवली भाषित श्रावक धर्म की आराधना (पालन) करने के लिए उधत हुआ हू । श्रावक धर्म को सम्यक् प्रकार नही पालने के कारण प्राप्त हुए दोषो से मन-वचन-काया द्वारा निवृत होता हुआ, चौबीस तीर्थकरो को नमस्कार करता हू ।

।। पांच पदों की वन्दना ।।

(1) पहिले पद श्री अरिहंत भगवान् जघन्य बीस तीर्थकरजी, उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सत्तर देवाधिदेव जी, उनमे वर्तमान काल मे बीस विहरमानजी महाविदेह क्षेत्र मे विचरते है । एक हजार आठ लक्षण के घरणहार, चौंतीस अतिशय,पैतीस वाणी करके विराजमान, चौसठ इन्द्रो के वन्दनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अन्त चरित्र, अनन्त बल वीर्य, अनन्त सुख, दिव्य-ध्वनि, भामण्डल, स्फटिक सिहासन, अशोक वृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि छत्र धरावे,चवर बिजावे, पुरुषाकार पराक्रम के धरणहार, अढाई द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र मे विचरे, जघन्य दो करोड, केवली और उत्कृष्ट नव करोड केवली, केवलज्ञान, केवलदर्शन के धरणहार, सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जाननहार ।

सवैया – नमो श्री अरिहन्त, करमो का किया, अन्त, हुआ सो केवलवन्त, करुणा भण्डारी है ।

अतिशय चौंतीस धार, पैतीस वाणी उच्चार, समझावे नर-नार, पर-उपकारी है ।

शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार, गुण है अनन्तसार, दोष परिहारी है ।

कहत है तिलोकरिख, मन, वचन, काया करी, लुलि लुलि बारम्बार वन्दना हमारी है ।। 1।।

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे अरिहन्त भगवन् ! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये । हाथ जोड, मान मोड शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हू ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेमि वन्दामि णमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वन्दामि ।

आप मांगलिक हो,उत्तम हो । हे स्वामिन् । हे नाथ । आपका इस भव परभव भवभव मे सदा काल शरण हो ।

(2) दूसरे पद श्री सिद्ध भगवान् पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध हुए है। आठ कर्म खपाकर मोक्ष पहुंचे है। तीर्थसिद्धा,अतीर्थसिद्धा,तीर्थकर सिद्धा अतीर्थकर सिद्धा स्वय, बुद्ध सिद्धा, प्रत्येक बुद्ध सिद्धा,बुद्धबोधितसिद्धा, स्त्रीलिगसिद्धा, पुरुषलिंग सिद्धा, नपुंसकलिगसिद्धा, स्वलिगसिद्धा अन्यलिगसिद्धा, गृहस्थलिंगसिद्धा, एकसिद्धा, अनेकसिद्धा, जहा जन्म नही, जरा नही, मरण नहीं, भय नही, रोग नही, शोक नही, दु:ख नही, दारिद्रय नही, कर्म नही, काया नही, मोह नही, माया नही,चाकर नही, ठाकर नहीं, भूख नही, तृषा नही, ज्योतिमेज्योति विराजमान सकल कार्य सिद्ध करके चवदे प्रकारे,पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवान् हुए है । अनन्त ज्ञान, अनत दर्शन, अनन्त सुख क्षायिक सम्यवत्व, अटल अवगाहना, अमूर्तिक, अगुरुलधु, अनन्तवीर्य्य, ये आठ गुण करके सहित हैं ।

सवैया – सकल करम टाल, वश कर लियो काल, मुगति मे रह्या माल, आत्मा को तारी है ।

देखत सकल भाव, हुआ है जगत् राव, सदा ही क्षायिक भाव, भवे अविकारी है ।

अचल अटल रुप, आवे नही भवकूप, अनूप सरूप उप, ऐसे सिद्ध धारी है ।

कहत है तिलोकरिख, बताओ है वासप्रभु, सदा ही उगते सूर, वन्दना हमारो है ॥1॥

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो बारम्बार हे सिद्ध भगवान् ! मेरा अपराध क्षमा करिये । हाथ जोड मान मोड, शीश नमाकर तिक्खुतो के पाठ से 1008 वार नमस्कार करता हूं । (यहां पर तिक्खुतो का पाठ बोले) यावत् भव-भव सदाकाल शरण हो ।

(3) तीसरे पद श्री आचार्य महाराज छत्तीस गुण करके विराजमान, पांच महाव्रत पालें, पांच आचार पाले, पांच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टालें, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रम्हाचर्य पाले, पांच समिति,तीन गुप्ति शुद्ध आराधें। ये 36 गुण और आठ

सम्पदा (1 आचार सम्पदा, 2 श्रुत सम्पदा, 3 शरीरसम्पदा, 4 वचनसम्पदा, 4 वाचनासम्पदा, 6 मतिसम्पदा, 7 प्रयोगमतिसम्पदा, 9 संग्रहपरिज्ञासम्पदा) सहित है।

सवैया – गुण है छत्तीस पूर, धरत धरम ऊर, मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है ।

शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रुप कन्त, भण्या है सब ही सिद्धात वाचणी सुप्यारी है ।

अधिक मधुर वैण, कोई नही लोपे कैण, सकल जीवो का सेण, कीरत अपारी है ।

कहत है तिलोकरिख, हितकारी देत सीख, ऐसे आचारज ताकू, वन्दना हमारी है ।।1।।

सवैया – वन्दू पूज्य आत्मलाल, सारे है आतम काज मेरे गुरु सिरताज, शास्त्र के भण्डारी है , लघुवय में लीनी दीक्षा, गुरु ज्ञानेश से पाई शिक्षा ।

सत्य की करी है रक्षा, बाल-ब्रम्हाचारी है, सघ मे शिरोमणि, धार-वाणी मीठी अमृत धार, नैया नौका सागर पार, पूज्य यशधारी है । नित वन्दू चरणो मे, आत्म गुरु के शरणो मे, ऐसे पूज्य राज श्री को वन्दना हमारी है । आगम गुण भण्डार, शुद्ध है क्रिया-आचार चारितर अविकार, राम गुणकारी है, सेवा मे रहे तल्लीन, विनय करे निशदिन, कर्त्तव्य की बजे बीन, गुरु आज्ञाधारी है । तिरण-तारण नाथ, करो भव सागर पार, ऐसे गुरुराज श्री को वन्दना हमारी है ।

• ऐसे श्री आचार्य महाराज न्यायपक्षी, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य कल्पनीय अचित वस्तु के ग्रहणहार, सचित के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणो के अनुरागी, सौभागी है, ऐसे श्री आचार्य महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो है आचार्य महाराज ! मेरा अपराध आप क्षमा करिये । हाथ जोड, मान मोड, शीश नमाकर तिक्खुतो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हू । (यहा पर तिक्खुतो का पाठ बोले) यावत् भव-भव सदाकाल शरण हो ।

(4) चौथे पद श्री उपाध्याय महाराज पच्चीस गुण करके सहित (ग्यारह अग, बारह उपाग, चरणसत्तरी, करण सत्तरी इन पच्चीस गुण करके सहित) हैं तथा ग्यारह अग का पाठ अर्थ सहित सपूर्ण जाने, चौदह पूर्व पाठक और निम्नोक्त बत्तीस सूत्रो के जानकार हैं ।

ग्यारह अंग – आचाराग सूयगडाग, ठाणाग, समवायांग, विवाह पन्नति (भगवती), ज्ञाताधर्मकथा, उवासगदसा, अतगडदसा, अणुत्तरोववाई,

पण्हावागरण (प्रश्नव्याकरण), विवागसुय (विपाकश्रुत)।

बारह उपांग – उववाई, रायप्पसेणी, जीवा जीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूद्धीवपन्नत्ति, चन्दपन्नति, सूरपन्नति, निरयावलिया, कप्पवडसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा।

चार मूल सूत्र :– उत्तराझयणं (उत्तराध्ययन), दसवेयालियसुत्त (दशवैकालिक सूत्र), णंदीसुत्तं (नन्दीसूत्र), अणुओगद्दार (अनुयोगद्धार)।

चार छेद – दसासुयक्खंधो (दशाश्रुतस्कन्ध), विहक्कप्पो (बृहत्कल्प), ववहारसुत्तं (व्यवहार सूत्र), णिसीहसुत्त (निशीर्थ सूत्र) और बत्तीसवा आवस्सग (आवश्यक) तथा अनेक ग्रन्थ के जानकार, सात नय, निश्चय व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्य मत के जानकार, मनुष्य या देवता कोई भी विवाद मे जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नही पण जिन सरीखे, केवली नही पण केवली सरीखे हैं।

सवैया – पढत इग्यारे अंग, करमो सू करे जग, पाखडी को मानभग, करण हुशियारी है। चवदे पूरव धार, जानत आगम सार, भविजन के सुखकार, भ्रमता निवारी है।

पढावे भविकजन, स्थिर कर देत मन, तप कर तावे तन, ममता, निवारी है।

कहत है तिलोकरिख ज्ञानभानु परतिख, ऐसे उपाध्याय ताकू, वन्दना हमारी है।

ऐसे श्री उपाध्याय महाराज मिथ्यात्वरुप अधकार के मेटनहार, समकितरूप उद्योत के करनहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करें, सारए, वारए, धारए, इत्यादि अनेकगुण करके सहित है, ऐसे श्री उपाध्याय महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो बारम्बार हे उपाध्याय महाराज। मेरे अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड, मान मोड, शीश नमाकर तिक्खत्तो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हूं। (यहां पर तिक्खुतो का पाठ बोले) यावत् भव-भव सदाकाल शरण हो।

(5) पाचवे पद णमो लोएं सव्व साहूणं कहिये अढाई द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र रुप लोक में सर्व साधुजी महाराज जघन्य दो हजार करोड, उत्कृष्ट नव हजार करोड जयवन्ता विचरे, पाच महाव्रत पाले, पाच इन्द्रिय जातें, चार कषाय टाले, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, क्षमावन्त वैराग्यवन्त, मनसमाधारणीया, वयमाधारणीया, कायसमाधारणीया, नाणसम्पन्ना, दंसणसम्पना, चरित्तसम्पना,

वेदनीय समाअहियासनीया, मरणान्तिसमाअहियासनीया ऐसे सत्ताईस गुण करके सहित है। पाच आचार पाले, छह काय की रक्षा करे, सात कुव्यसन त्यागे, आठ मद छोडे, नव बाड सहित ब्रह्मचर्य पाले, दस प्रकार यति धर्म धारे, बारह भेदे तपस्या करे, सत्रह भेदे सयम पाले, अठारह पाप को त्यागे, बाईस परीषह जीते, तीस महा मोहनीय कर्म निवारे, तेतीस आशातना टाले, बयालीस दोष टाल कर आहार पानी लेवे, सैतालीस दोष टाल कर आहारपानी भोगे, बावन अनाचार टाले, तेडिया बुलावे आवे नही, नेतिया जीमे नही, सचित के त्यागी, अचित के भोगी, लोच करे, नगे पैर चले इत्यादि कायक्लेश करे और मोह ममता रहित है।

सवैया – आदरी सयम भार, करणी करे अपार, समिति गुपति धार, वेकथा निवारी है।

जयणा करे छह काय, सावध न बोले वाय, बुझाय कषाय लाय, केरिया भण्डारी है।

ज्ञान भणे आठो याम, लेवे भगवन्त को नाम, धरम को करे काम, ममता कूमारी है।

कहत है तिलोक रिख करमो का टाले विख, ऐसे मुनिराज ताकू, न्दना हमारी है।

ऐसे मुनिराज महाराज, आपकी दिवस-सम्बन्धी अविनय आशातना की ो तो बारम्बार हे मुनिराज! मेरा अपराध क्षमा करिये। हाथ जोड, मान मोड, ीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार नमस्कार करता हू। यहा पर तेक्खुतो का पाठ बोले यावत् भव-भव, सदाकाल शरण हो।

॥ दोहा ॥

अनन्त चौबीसी जिन नमू, सिद्ध अनन्ता कोड।
केवल ज्ञानी गणधरा, वन्दू बे कर जोड ॥ 1॥
दोय कोडी केवलधरा, विहरमान जिन बीस।
सहस्त्र युगल कोडी नमू, साधु नमू निशदीस ॥2॥
धन साधु, धन साध्वी, धन-धन है जिनधर्म।
ये समरया पातक झरे, टूटे आठो कर्म ॥3॥
अरिहन्त सिद्ध समरु सदा, आचारज उपाध्याय।
साधु सकल के चरण को, वन्दू शीश नवाय ॥4॥

शासन-नायक सुमरिये, भगवन्त वीर जिणद ।
अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ॥5॥
अगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार ।
श्री गुरु गौतम समरिये, वंछित फल दातार ॥6॥
गुरु गोविन्द दोनो खडे, किसके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु देव की, गोविन्द दिया बताय ॥7॥
लोभी गुरु तारे नही, तिरे सो तारणहार ।
जो तूं तिरियो चाह तो, निर्लोभी गुरु धार ॥8॥
पर उपकारी साधुजी, तारण तरण जहाज ।
कर जोडी हूं नित नमू, धन मोटा मुनिराज ॥9॥
साधु सती नै शूरमा, ज्ञानी नै गजदन्त ।
इतना पीछा ना हटे, जो जुग जाय अनन्त ॥10॥
नानेशाचार्य महान है, तप सयम गुण खान है ।
ऐसे सुज्ञानी आचार्य श्री को मेरे अनेको प्रणाम ॥11॥
राम गुरु कृपा करो, दो मुझको सद्ज्ञान
आपके पुण्य प्रसाद से, पाऊ पद निर्वाण ॥12॥

॥ आयरिय उवज्झाए का पाठ ॥

आयरियउवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुलगणे अ ।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेणं खामेमि ॥ 1॥
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे ।
सव्वे खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ।
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्मनिहिर्य नियचितो ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहय पि ।
(मरण समाधि प्रकीर्णक और सस्तारक प्रकीर्णक)
रागेण व दोसेण व, अहवा अकयण्णुणा पढि निवेसेणं ।
जं मे किंचिवि भणिअं, तमहं तिविहेण खामेमि ॥4॥

उवझाए	–	उपाध्यायजी महाराज
सीसे	–	शिष्यो
साहम्मिए	–	साधर्मिको
कुल	–	एक आचार्य का शिष्य समुदाय
गणे	–	गण-समूह पर

जे	–	जो
मे	–	मैने
केई	–	कुछ
कसाय	–	क्रोधादि कषाय (किया हो)
सव्वे	–	सब को
तिविहेण	–	तीन योग से (मन, वचन, काया से)
खामेमि	–	खमाता हू, क्षमा चाहता हू।
सव्वस्स	–	सभी
समण सघस्स	–	श्रमण सघ, साधु समुदाय
भगवंओ	–	भगवान को
अजलि	–	दोनो हाथ जोड
करिए	–	करके
सीसे	–	शिर पर
सव्वे	–	सब को
खमावइत्ता	–	खमा करके
खमामि	–	क्षमा करता हू
सव्वस्स	–	सब का
अहयं पि	–	मै भी
सव्वस्स	–	सभी
जीवरासिस्स	–	जीव राशि से
भावओ	–	भाव से
धम्म निहियनियचित्तो	–	धर्म मे चित्त को स्थिर करके
सव्वे	–	सब को
खमावइता	–	खमा करके
खमामि	–	खमता हू, क्षमा करता हू
रागेण	–	राग से
दोसेण	–	द्वेष से
अहवा	–	अथवा
अकयण्णुणा	–	अकृतज्ञता से
पडिनिविसेणं	–	आग्रहवश
जो	–	जो
मे	–	मैंने

किंचि वि	–	कुछ भी
भणिओ	–	कहा है
तं	–	उसके लिए
तिविहेण	–	मन, वचन, काया से
अहं	–	मैं
खामेमि	–	क्षमा चाहता हूं

भावार्थ – आचार्य, उपाध्याय, शिष्य साधार्मिक, कुल और गण इनके उपर जो कुछ कषाय किये हों, उन सब की उन लोगों से मै मन, वचन और काया से माफी चाहता हूं ।।1।।

हाथ जोड कर सब पूज्य मुनिगण से मैं अपराध की क्षमा चाहता हू और मैं भी उन्हे क्षमा करता हू ।।2।।

धर्म में चित्त को स्थिर करके सम्पूर्ण जीवों से मैं अपने अपराध की क्षमा चाहता हूं और स्वय भी उनके अपराध को क्षमा करता हूं ।।3।।

राग द्वेष, अकृतज्ञता अथवा आग्रहवश मैने जो कुछ भी कहा है, उसके लिए मैं मन, वचन, काया से सभी से क्षमा चाहता हूं ।।4।।

।। अढ़ाई द्वीप का पाठ ।।

अढाई द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र में श्रावक-श्राविका दान देवें, शील पाले, तपस्या करे, शुभ भावना भावे, संवर करें, सामायिक करें, पौषध करे, प्रतिक्रमण करे, तीन मनोरथ चिंतवे, चौदह नियम चितारें, जीवादिक नव पदार्थ जानें, श्रावक के इक्कीस गुण करके युक्त एक व्रतधारी, जाव बारह व्रतधारी जो भगवान् की आज्ञा में विचरें ऐसे बड़ो से हाथ जोड़, पैर पड़कर क्षमा मांगता हूं । आप क्षमा करे, आप क्षमा करने योग्य है और छोटो को समुच्चय खमाता हू ।

।। चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ ।।

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिंद्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य – ऐसे चार गति चौरासी लाख जीवयोनि के सूक्ष्म, बादर पर्याप्त, अपर्याप्त जीवो में से जीव का हालते, चालते, उठते, बैठते, सोते,

हनन किया हो, कराया हो, हनता प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामिया उपजाई हो तो मन, वचन, काया करके प्रत्येक जीव को अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस *(1824120) प्रकारे तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

* जीव तत्व के 563 भेदो को अभिहया वत्तिया आदि दस के साथ गुणा करने से 5630 भेद होते है। फिर इनको राग और द्वेष को साथद्विगुण करने से 11260 भेद बनते है। फिर इन्ही को मन, वचन, काया के साथ त्रिगुणा करने से 33780 भेद बन जाते है। फिर इनको ही तीन करणों के साथ गुणा करने से 101340 भेद बन जाते हे। इनको फिर तीन काल के साथ गुणा करने से 304020 भेद हो जाते है। फिर इनको अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, गुरु और आत्मा इस प्रकार छह से गुणा करने पर 1824120 भेद बनते है अर्थात् इस प्रकार से मै मिच्छामि दुक्कड देता हू और फिर पापकर्म न करने की प्रतिज्ञा करता हू।

।। खामेमि सव्वे जीवा का पाठ ।।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ।।
एवमहं आलोइयं, निदियं गरहियं दुगंछिय सम्म।
तिविहेण पडिक्कंतो, वदामि जिणे चउव्वीस ।।

सव्वे	–	सब
जीवा	–	जीवो का
खामेमि	–	खमाता हू
सव्वे	–	सब
जीवा	–	जीव
मे	–	मुझको
खमन्तु	–	क्षमा करे
मे	–	मेरी
सव्वभूएसु	–	सम्पूर्ण प्राणियो से
निदियं	–	आत्मसाक्षी से निन्दा करके
गरहिय	–	गुरु साक्षी से गर्या करके
दुगछिय	–	जुगुप्सा (ग्लानि-घृणा) करके
तिविहेण	–	मन, वचन, काया द्वारा
पडिक्कंतो	–	पापो से निवत्त होता हुआ
चउव्वीसं	–	चोबीस
जिणे	–	अरिहन्त भगवान् को

वन्दामि	–	वन्दना करता हूं

भावार्थ – मैने किसी जीव का अपराध किया हो तो मै उससे क्ष चाहता हू । सभी प्राणी मुझे क्षमा करे। संसार के प्राणी मात्र से मेरी मित्रता है, मेरा किसी से वैर-विरोध नही है । मै अपने पापो की आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा करता हूं तथा उन पापो से निवृत्त होता हुआ मन, वचन, काय से चौबीस तीर्थकरो की वन्दना करता हूं ।

|| प्रायश्चित का पाठ ||

देवसियपायच्छित्तविसोहणत्थं करेमि काउस्सग्ग ।

पायच्छित्त	–	प्रायश्चित
विसोहणत्थं	–	विशुद्धि करने के लिए

भावार्थ – मैं दिवस सम्बन्धी प्रायश्चित्त की शुद्धि के लिये कायोत्सर्ग करता हू ।

|| समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ ||

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं पोरिसिय साड्ढ पोरिसिय (अपनी अपनी इच्छा अनुसार) तिविहपि चउविहंपि आहारं, असण, पाण, खाइम, साइमं (अपनी–अपनी धारणा प्रमाणोपच्चक्खाण) अण्णत्थणा भोगेण, सहसागारेणं महत्तकागारेणं सव्व समाह्वत्तियागारेणंवोसिरामि ।

*स्वय पच्चक्खाण करना हो तब वोसिरामि ऐसा वोले और जब दूसरे को पच्चक्खाण कराना हो तब वोसिरे एसा वोले ।

गंठिसहियं	–	गांठ सहित अर्थात् जब तक मै गांठ बधी रखूं तब तक
मुट्ठिसहियं	–	मुट्ठि सहित अर्थात् जब तक मै मुट्ठि बन्धी रखू तब तक
नमुक्कारसहियं	–	नमस्कार मंत्र बोलकर सूर्योदय से लेकर एक मुहूर्त (48) मिनिट) तक त्याग
पोरिसयं	–	एक पहर तक त्याग
साड्ढपोरिसियं	–	डेढ पहर तक त्याग
अण्णत्थणाभोगेणं	–	बिना उपयोग के कोई वस्तु सेवन की हो
सहसागारेणं	–	अकस्मात् जैसे पानी बरसाना के

और मुख मे छीटे पड जावे या छाछ बिलोते समय मुह मे छीटे पड जावे तो मेरे आगार है

(पहला सामायिक, दूसरा चउवीसथव, तीसरी वदना, चौथा प्रतिक्रमण, पाचवा ध्यान ये पाच आवश्यक पूरे हुए छठ्ठा पच्चक्खाण की आज्ञा फिर पच्चक्खाण करना।)

महत्तरागारेणं – महापुरुषो के आगार से अर्थात् महापुरुषो के निमित्त से त्याग का भग करना पडे तो इसका मेरे आगार है।

सव्वसमाहिवत्ति आगारेणं – सब प्रकार की शारीरिक मानसिक नीरोगता रहे तब तक अर्थात् शरीर मे भयकर रोग हो जाय तो दवाई का आगार है

वोसिरामि – त्याग करता हूँ

भावार्थ – जब तक गाठ बंधी रखू तब तक या मुठ्ठी बद रखू तब तक या सूर्योदय से 48 मिनिट तक या एक पहर तक या डेढ पहर इत्यादि काल तक (इनमे से जिसको जिस प्रकार का त्याग करना हो उसको उसका ही उच्चारण करना चाहिये) अशन खाद्य स्वाद्य इन तीनो प्रकार के आहारो का अथवा अशन, पानी, खाध, स्वाध इन चार प्रकार के आहारो का त्याग करता हू। यदि उपयोग न रहने से या अकस्मात् या किसी महापुरुष के निमित्त से अथवा शरीर मे रोगादि उत्पन्न होने पर दवाई आदि का मेरे आगार है।

॥ अन्तिम पाठ ॥

(1) प्रतिक्रमण व्रत अविधी से किया हो विधी मे कोई अविधि हुई हो तो सूत्रविपरीत किया हो, एव पहला सामायिक, दुसरा चउवीसथ, तीसरी वदना, चौथा प्रतिक्रमण, पाचवा ध्यान, छठ्ठा पच्चक्खाण, इन छःआवश्यको मे जानते अजानते जो कोई अतिचार दोष लगा हो तस्स मिच्छामि दुक्कड।

(2) प्रतिक्रमण का पाठ उच्चारण करते काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, न्यूनाधिक आगे पीछे कहा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(3) मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, अशुभ योग का प्रतिक्रमण इन पाच प्रतिक्रमण

में से कोई प्रतिक्रमण न किया हो तस्स मिच्छामिदुक्कडं तथा चलते, फिरते, उठते, बैठते, पढते, गुणते, जानते, अजानते, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप सम्बन्ध कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(4) गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल की सामायिक और आगामी काल का पच्चक्खाण, इनमें जो कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

(5) सम, संवेग, निर्वेद, अनुकपा, आस्था इन व्यवहार समकित के पांच बोलों का पालन करता हूं, अट्ठारह दोष रहित, बारह गुणसहित, देवअरिहंत है,गुरु निर्ग्रंथ (आचार्य श्री रामलालजी म. सा.) है। केवली भाषित धर्म है, ये तीन तत्व सार है, संसार असार है, सच्चे के प्रति श्रद्धा, झूठे के प्रति मिच्छामि दुक्कडं।

।। इति प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त ।।

।। प्रतिक्रमण की विधि ।।

(1) आसन पर खड़े होकर जिस दिशा में धर्माचार्य धर्म गुरु विराजमान है, उस दिशा की ओर मुंह करके अपने गुरु महाराज को तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वन्दना करके, चउवीस थव की आज्ञा लेकर, चउवीस थव करे।

(2) चउवीस थव मे खडे होकर नवकार मंत्र, इच्छाकारेण और तस्सउत्तरी का पाठ कहकर काउस्सग करे। काउसग्ग भाईयो को खडे रहकर ही करना चाहिए और यदि सुरक्षित स्थान हो,मकान दरवाजे युक्त हो तो बहिनो को भी खडे रहके ही का उस्सग करना चाहिए क्योकि यह आवश्यक विधी खडे रहकर काउस्सग करने में अच्छी तरह से सधती है। यदिकदाचित सुरक्षित न स्थान हो, अथवा शारीरिक विशेष परिस्थिति हो तो तस्सउत्तरी की पाटी मे जहां अप्पाणं बोसिरामि शब्द आये वहां बहिने बैठे जाये और बैठकर काउसग्ग करे।

(3) काउस्सग्ग मे लोगस्स का पाठ दो बार मन मे कहे तथा नमो अरिहंताणं कह कर काउस्सग्ग पारे। फिर नवकार मंत्र और ध्यान का पाठ (काउस्सग्ग मे आर्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान शुक्ल-ध्यान न ध्याया हो, काउस्सग्ग में मन,वचन, काया चलित हुए हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कड) और लोगस्स का पाठ प्रकट-बोले।

(4) फिर बैठ कर बाया घुटना खडा करके णमो त्थुण का पाठ दो बार बोले। दूसरे णमोत्थुणं के पाठ मे ठाण सपत्ताण के बदले ठाण सपापिउकामाण

कहे।

(5) फिर खडा होकर वन्दना करे और प्रतिक्रमण करने की आज्ञा लेवे। खडे होकर नवकार मत्र और इच्छामि ण भन्ते का पाठ कहकर तिक्खुतो के पाठ से पहले आवश्यक की आज्ञा लेवे।

(6) पहले सामायिक आवश्यक मे खडे होकर करेमि भन्ते, इच्छामि ठामि और तस्स उत्तरी की पाटी बोल के काउस्सग करे। काउस्सग मे 99 अतिचार की पाटिया (आगमे तिविहे, दंसण समिकत, बारह व्रतो के अतिचार पन्द्रह कर्मादान सहित, छोटी सलेखना), अठारह पाप स्थान और इच्छामि ठामि का चिन्तन करे। काउस्सग मे सभी पाटियो के अन्त मे मिच्छा मि दुक्कड के बदले आलाउ कहे। णमो अरिहंताण कह कर काउस्सग पारे। बाद मे नवकार मत्र और ध्यान का पाठ कहे। यहा पहला सामायिक आवश्यक समाप्त हुआ। फिर तिक्खुत्तो के पाठ से दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेवे। पहला सामायिक आवश्यक को पूरा हुआ, दूसरा चउवीसथव की आज्ञा।

(7) दूसरे चउवीसथव आवश्यक मे खडे होकर लोगस्स का पाठ कहे। फिर तिक्खुतो के पाठ से तीसरे आवश्यक वन्दना की आज्ञा लेवे।

(8) तीसरे वन्दना आवश्यक मे इच्छामि खमासमणो का पाठ विधिपूर्वक दो बार कहे। विधि इस प्रकार है - निसीहिआए पद जहा आवे, तब बैठकर दोनो घुटने खडे रख कर दोनो हाथ जोड कर मस्तक नमाकर आगेका पाठ बोले। "अहो कायं काय" इन छह अक्षरो का उच्चारण करते समय तीन आवर्तन करे। दोनो हाथ जोड लम्बे कर दसो अंगुलियो से गुरु महाराज के चरण स्पर्श कर या चरण स्पर्श की भावना से दसो अगुलिया भूमि पर लगा कर मद स्वर से "अ" अक्षर का उच्चारण करे और फिर दसो अगुलिया मस्तक पर लगाते हुए "हो" अक्षर ऊचे स्वर से कहे। इस प्रकार दोनो अक्षर कहने से पहला आवर्तन हुआ। इसी विधि से "का" और "यं" दोनो अक्षरो का उच्चारण करने से दूसरा आवर्तन और "का" और "य" इन दोनो अक्षरो का उच्चारण करने से तीसरा आवर्तण होता है।

इसी तरह "जत्ता भे जवणिज्ज च भे" इन नौ अक्षरो का उच्चारण करते हुए तीन आवर्तन करे। ऊपर लिखे अनुसार दोनो हाथ जोड लम्बे कर दसो अगुलियो से गुरु महाराज के चरण स्पर्श अथवा चरण स्पर्श की भावना से दसो अगुलिया भूमि पर लगा कर "ज" अक्षर मद स्वर से कहे, फिर "त्ता" अक्षर मध्यम स्वर से और दसो अगुलिया मस्तक पर लगा कर भे अक्षर ऊचे स्वर से कहे। इस प्रकार "जत्ता भे" ये तीन अक्षर बोलने से पहला आवर्तन हुआ। इसी विधी से "ज व णि" इन तीनो अक्षरो का उच्चारण क्रमश मन्द,

मध्यम और उच्च स्वर से करने से दूसरा आवर्तन होता है। "ज्ज, च, भें", का भी इसी विधि से मन्द, मध्यम और उच्च स्वर से उच्चारण करने से तीसरा आवर्तन होता है। इसी तरह 3 + 3 = 6 आवर्तन हुए। जहा "तित्तिसन्नयराए" शब्द आवे, वहां खड़ा हो जाय और खडे होकर शेष पाठ पूरा करे। इसी विधि से इच्छामि खमासमणो का पाठ दूसरी बार बोले। यह पाठ बोलते समय भी ऊपर लिखे अनुसार छः आवर्तन करें। किन्तु इस बार आवस्सियाए पद नही बोले और तित्तिसन्नराए शब्द आने पर खडा न होकर बैठे हुए ही पाठ समाप्त करे। तीसरा वन्दना आवश्यक समाप्त हुआ। तिक्खुत्तो के पाठ से चौथे आवश्यक की आज्ञा लेवे।

(10) पहला सामायिक दूसरा चउवीसथ,तीसरी वदना आवश्यक,पूरे हुए चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक की आज्ञा लेते है ऐसा बोले।

(11) चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक में खड़े होकर 99 अतिचार की पाटिया, अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि जिनका काउस्सग मे चिन्तन किया था, प्रकट कहे। सभी पाटियों के अन्त मे मिच्छामि दुक्कड कहे। फिर समुच्चय पाठ कह कर तस्स सव्वस्स का पाठ कहे।

(12) बाद में वन्दना करके श्रावक सूत्र की आज्ञा लेकर, दाहिना घुटना ऊचा रख कर बैठे। फिर नवकार मत्र, करेमि भन्ते, चत्तारी मगल, इच्छामि ठामि, इच्छाकारेणं, आगमे तिविहे, दंसेण समकित और बारह व्रतो को अतिचार सहित पाठ पढे। और बैठकर (पालकी लगाकर) बडी सलेखना का पाठ कहे।

फिर इस तरह समकित पूर्वक बारह व्रत संलेखना सहित - इनके विषय अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जानते अजानते मन, वचन, काय से कोई पाप दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं कह कर अठारह पापस्थान और इच्छामि ठामि का पाठ कहे।

(13) फिर खडे होकर तस्सधम्मस्स का पाठ बोले और ऊपर लिखि विधि से दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ बोले।

(14) फिर भाव-वन्दना की आज्ञा लेकर दोनो घुटने नमाकर, धुंटनो पर दोनो हाथ जोडकर रखे और मस्तक नीचा नमाकर, नवकार मंत्र कहकर पांच पदो की वन्दना कहे।

(15) फिर पालखी लगाकर बैठे और अनन्त चौबीसी आदि दोहे, "आयरिय उवज्झाए" का पाठ अढाई द्वीप का पाठ, चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ बोलकर, अठा रह पापस्थान कहे। यहां चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक

समाप्त हुआ ।

(16) फिर तिक्खत्तो के पाठ से पांचवे आवश्यक की आज्ञा लेवे ।

पहला सामायिक, दूसरा चउवीसथव, तीसरी वदना, चौथा प्रतिक्रमण, चार आवश्यक पूरे हुए पाचवा काउस्सग करने की आज्ञा

(17) पाचवे काउस्सग आवश्यक मे खडे होकर प्रायश्चित का पाठ, नवकार मत्र, करेमि भन्ते, इच्छामि ठामि और तस्सउत्तरी का पाठ कह कर काउस्सग करे । काउस्सग मे देवसिय, रायसी प्रतिक्रमण 4 लोगस्स का, पक्खी प्रतिक्रमण मे 8 लोगस्स का, चौमासी प्रतिकमण मे 12 लोगस्स का और सवत्सरी प्रतिक्रमण मे 20 लोगस्स का ध्यान करे । णमो अरिहन्ताण कह कर काउसग पारे । बाद मे नवकार मन्त्र ध्यान का पाठ और लोगस्स का पाठ बोलकर दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ उपर्युक्त विधि सहित बोले । पाचवा काउस्सग आवश्यक समाप्त हुआ । तिक्खुत्तो के पाठ से छठे आवश्यक की आज्ञा लेवे ।

(18) छठे पच्चक्खाण आवश्यक मे खडे होकर डसाधु महाराज से शक्ति अनुसार पच्चक्खाण करे । यदि साधु महाराज नही विराजते हो तो बडे श्रावक जी से पच्चक्खाण के पाठ से पच्चक्खाण करे । (1) सामायिक (2) चउवीस थव (3) वन्दना (4) प्रतिक्रमण (5) काउस्सग (6) पच्चक्खाण ये छ आवश्यक समाप्त हुए ।

(19) फिर अन्तिम पाठ बोलकर नीचे बैठे और बाया घुटना खडा करके उपर्युक्त विधि से दो बार णमोत्थुण बोले ।

(20) फिर तिक्खुत्तो के पाठ से गुरु महाराज को वन्दना करे । यदि वे वहा नही विराजते ही तो जिस दिशा मे धर्माचार्यजी विराजमान हो उस दिशा मे वन्दना करे और बाद मे स्वधर्मी भाइयो को खमावे । बाद मे चौबीसी, स्तवन आदि बोले ।

नोट. प्रतिक्रमण मे जहा देवसिय शब्द आया है, वहा देवसिय प्रतिक्रमण मे देवसिय । राइय प्रतिक्रमण मे राइय पक्खी प्रतिक्रमण मे पक्खी सम्बन्धी । चौमासी प्रतिक्रमण मे चौमासी सम्बन्धी । सवत्सरी प्रतिक्रमण मे सवत्सरी सम्बन्धी कहना चाहिए ।

।। चौबीसी ।।

अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु समरणा करणा,
तीर्थंकर रतना री माला, समरणा नित्य करणा ।
समरियो माला, मेरी जान समरियो माला,
ज्यू कटे कर्म का जाला, ए जीव तणा रखवाला ।।
ध्यान तीर्थंकर का धरणा रे ।। ध्या ।।

पाच पद चौबीस जिनन्दजी का, नित्य लीजे शरणा ॥1॥
ए आकडी॥
श्री ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, अति आनन्द करना ।
सुमति पदम सुपार्श्व चन्द्रप्रभु, दास रहू चरणा ॥
चरण नित्य वंदू, मेरी जान चरण नित्य वदू ।
ज्यू कटे कर्म का फन्दा, तुम तजो जगत का धन्धा ।
दीठा होय नयन अमिय ठरणा रे ॥दीठा ॥ 2 ॥
सुविधि शीतल श्रेयांस वासुपूज्य, पूज्य, हृदयं माहे धरणा ।
विमल अनन्त श्रीधर्म शांतिजी, दास रहू चरणा ॥
जिनन्द मोहे तारी, मेरी जान जिनन्द मोहे तारो ।
संसार लगे मोहे खारो, वैराग्य लगे मोहे प्यारो ।
मै सदा-दास चरणां रो, नाथजी अब कृपा करणा रे ॥नाथ ॥
पाच पद ॥3॥

कुंथु अर मल्लि मुनिसुव्रतजी, प्रभु तारण तरणा ।
नमि नेम पार्श्व महावीरजी, पाप परा हरणा ॥
तिरे भव प्राणी, मेरी जान तिरे भव प्राणी ।
संसार समुद्र जाणी, सुणो सूत्र सिद्धांत की वाणी ।
पापकर्म से अब तो डरणा रे ॥ पाप ॥ पांच पद ॥4॥
इग्याराजी गणधर बीस विरहमान, वांद्यां सुं मिटे मरणा । अनन्त
चौबीसी को नित-नित वांदू, दुरगति नहीं पडना ॥
मिथ्या अंध मेटो, मेरी जान मिथ्या अंध मेटो ।
रहो धर्म ध्यान मे सेंठो, जिनराज चरण नित्य भेटो ।
दु:ख दारिद्र सब तो सेठो, जिनराज चरण नित्य भेटो ।
दु:ख दारिद्र सब तो हरणा रे ॥ दु:ख ॥ पांच पद ॥5॥
जैन धर्म पाया बिन प्राणी, पाप सु पिंड भरणा ।
नीठ - नीठ मानव भव पायो, धर्मध्यान करणा ।
करो शुद्ध करणी, मेरी जान करो शुद्ध करणी । निरवाण तणी निसरणी,
तुम तजो पराई परणी, एक चित्त धर्मध्यान करणा रे ॥ एक ॥
पांच पद ॥6॥

विहरमान तीर्थंकर गणधर, मनमा शुद्ध धरणा ।
वेलपालजी के उकलाने, कीया स्तवन वरना ॥
वरन गुन कीना, मेरी जान वरन गुन कीना ।
ज्यो अमृत प्याला पीना, एक शरण धर्म का लीना ।
रिख लालचन्दजी गुण कीना, करो नव तत्व का निरणा रे, ॥करो ॥
पांच पद चौबीस जिनन्दजी का नित्य लीजे शरणा ॥7॥ इति ॥

प्रतिक्रमण के [illegible] के लिए [illegible] सूत्र और ग्रंथ

इच्छामि ठाउं — हरिभद्रीय आवश्यक पृष्ठ [illegible] तथा 778

ज्ञान के अतिचार — हरिभद्रीय आवश्यक पृष्ठ [illegible]

सम्यक्त्व के पांच अतिचार — उपासकदशांग अध्ययन 1 सूत्र [illegible]

संलेखना के पांच अतिचार — उपासकदशांग अध्ययन 1 सूत्र [illegible]

(धर्मसंग्रह अधिकार 2 श्लोक 33 पृष्ठ 230 [illegible] हरिभद्रीय आवश्यक पृष्ठ 833)

अठारह पाप स्थानक — भगवती शतक 1 उद्देशा 9, (भगवती शतक 12 उद्देशा 5, ठाणांग 1 सूत्र 48

इच्छामि खमासमणो — हरिभद्रीय आवश्यक अध्ययन 4 पृष्ठ 848)

[illegible] — (हरिभद्रीय आवश्यक अध्ययन 4 पृष्ठ 848)

बारह व्रतों के अतिचार — (उपासकदशांग अध्ययन 1 सू. [illegible]) (हरिभद्रीय आवश्यक पृ. 818 से 838 धर्मसंग्रह अधिकार 2)

बड़ी संलेखना — (आवश्यक हस्तलिखित) ([illegible])

खामेमि सव्वे जीवे — हरिभद्रीय आवश्यक पृष्ठ 792

[illegible] — (हरिभद्रीय आवश्यक अध्ययन 6 निर्युक्ति गाथा 1578 (प्रवचन सारोद्धार द्वार 4 गाथा 200

[illegible] — (महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक गाथा 335, 336), (संस्तारक प्रकीर्णक गाथा 104, 105 (हरिभद्रीय आवश्यक पृष्ठ 783)

चतुर्थ आयाम

१. लघु दण्डक

जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति इसका मुख्य आधार है। इसमें 24 दण्डको का 25 द्वारों से विश्लेषण किया गया है।

25 द्वार -

1. शरीर द्वार 2. अवगाहना 3. संहनन 4. संस्थान 5. कषाय 6. सज्ञा 7. लेश्या 8. इन्द्रिय 9. समुद्घात 10 संज्ञी 11. वेद 12. पर्याप्ति 13. दृष्टि 14. दर्शन 15. ज्ञान, अज्ञान 16. योग 17. उपयोग 18. आहार 19. उत्पाद 20 स्थिति 21. समोहया असमोहया मरण 22. च्यवन 23. गति-आगति 24. प्राण 25. योग।

गाथा-

नेरइया असुराई, पुढवाई बेइन्दियादओ चेव।
पंचिन्दिय - तिरिय - नरा, वंतर - जोइसिस - वेमाणी।।1।।

संग्रहणी गाथाएं - जीवाभिगम सूत्र प्रथम प्रतिपत्ति

सरीरोगाहण - संघयण - संठाण-कसाय तह य हुंति
सन्नाओ लेसिंदिय - समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जती ।।1।।
दिट्ठी-दंसण - नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।
उववाय ठिई समुग्घाय चवण-गइरागई च्चेव ।।2।।

1. शरीर द्वार

जो जीर्ण-शीर्ण अर्थात् विनाश होने वाला है, उसे शरीर कहते है। इसके पाँच भेद है - 1 **औदारिक** 2. **वैक्रिय** 3. **आहारक** 4 **तैजस** **और 5. कार्मण।**

1. **औदारिक शरीर** - उदार अर्थात प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलो से बना हुआ शरीर - औदारिक कहलाता हैं।

तीर्थकर और गणधरो का शरीर प्रधान पुद्गलों से बनता है। साधारण और सर्वसाधारण का शरीर स्थूल साधारण पुद्गलो बनता है। मनुष्य और तिर्यच को औदारिक शरीर प्राप्त होता है।

2 **वैक्रिय शरीर** – जिस शरीर से एक, अनेक, छोटा, बडा, दृश्य अदृश्य शरीर धारण करना आदि विविध क्रियाएँ होती है, उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं।

वैक्रिय शरीर दो प्रकार है - **1. औपपातिक और 2. लब्धिप्रत्यय।**

देव और नारको का शरीर औपपातिक कहलाता है अर्थात् उनको जन्म से ही वैक्रिय शरीर मिलता है। लब्धिप्रत्यय शरीर तिर्यच और मनुष्यो को होता है। मनुष्य और तिर्यच तप आदि के द्वारा प्राप्त की हुई शक्ति विशेष से वैक्रिय शरीर प्राप्त कर लेते है।

3 **आहारक शरीर** – अति विशुद्ध, स्फटिक के समान निर्मल, आहरक पुद्गलों से बना शरीर आहरक शरीर कहलाता है। छठे गुणस्थानवर्ती, 14 पूर्वधारी , आहारक लब्धि प्राप्त मुनिराज को 14 पूर्व चितारते हुए कोई सशय उत्पन्न हो अथवा कोई वादी आकर मुनिराज को प्रश्न पूछे उसका उत्तर 14 पूर्व मे न हो अथवा उस समय मुनिराज का उपयोग नही लगे अथवा तीर्थकर भगवान् की ऋध्दि, दर्शन या प्राणी दया का प्रसग उपस्थित होने पर वे मुनिराज आहारक लब्धि से जघन्य देश न्यून एक हाथ उत्कृष्ट एक हाथ प्रमाण अति विशुद्ध स्फटिक के समान निर्मल शरीर निकालते है। वह शरीर केवली भगवान के पास शका निवारण के लिए अथवा प्रश्न का उत्तर पूछने के लिए पहुँचता है उस शरीर को आहारक शरीर कहते हैं।

4 **तैजस शरीर** – तेजस पुद्गलो से बना हुआ शरीर तैजस कहलाता है। उष्णता इस शरीर का चिन्ह है। शरीर मे उष्णता को टिकाने मे एव आभा (कान्ति) को बनाये रखने मे तैजस शरीर प्रमुख निमित्त है। इस शरीर की उष्णता से खाये हुए अन्न का पाचन होता है और कोई - कोई तपस्वी क्रोध से उष्णतेजो - लेश्या के द्वारा ओरो को हानि पहुँचाता है तथा प्रसन्न होकर शीतल तेजोलेश्या के द्वारा लाभ पहुँचाता है, वह इसी तेजस-शरीर के प्रभाव से होता है अर्थात् आहार के पाचन के हेतु तथा उष्ण तेजोलेश्या और शीतल तेजोलेश्या के निर्गमन के हेतु जो शरीर है, वह तैजस-शरीर कहलाता है।

5 **कार्मण शरीर** – नाम कर्म के उदय से प्राप्त कर्मो को धारण करने वाली पेटी को कार्मण शरीर कहते हैं।

समस्त ससारी जीवो के तैजस शरीर और कार्मण शरीर, ये दो शरीर अवश्य (नियमा) होते है।

1 नारकी और देवता मे शरीर पावे - 3 वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

2 चार स्थावर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी

मनुष्य इन पाचो में शरीर पावे तीन - औदारिक, तेजस, कार्मण।
वायुकाय मे शरीर पावे चार - औदारिक,वैक्रिय,तेजस और कार्मण।

3 तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे शरीर पावे तीन ओदारिक, तैजस और कार्मण ।

4 सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे शरीर पावे चार - **1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. तैजस और 4. कार्मण।**

5. गर्भज मनुष्य मे शरीर पावे पांच - **1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4.तैजस और 5. कार्मण।**

6 युगलिक मनुष्यों के भेद - 5. हेमवत, 5 हैरण्यवत, 5 हरिवास,5 रम्यक्वास, 5. देवकुरु, 5 उत्तरकुरु एव 56 अन्तर्द्वीप मे शरीर पावे तीन 1 औदारिक, 2 तेजस और 3. कार्मण ।

7 सिद्ध भगवान के शरीर नहीं, अशरीरी है ।

2. अवगाहना द्वार

जीव का शरीर जितने आकाश प्रदेशो को अवगाहे (रोके), उसको अवगाहना कहते हैं । वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट 1000 योजन झाझेरी है । (यद्यपि तैजस, कार्मण शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना 14 राजु लोक प्रमाण है, तथापि इस थोकडे में 1000 योजनं झाझेरी तक ही प्रयुक्त होने से यहां इतना ही उत्कृष्ट ग्रहण किया है) उत्तर वैक्रिय करे तो ज अंगुल का असंख्यातवे भाग उत्कृष्ट एक लाख योजन झाझेरी है ।

1 पहली नारकी से सातवी नारकी तक भवधारणीय शरीर की अवगाहना,जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट पहली नारकी की पौने आठ धनुष 6 अगुल, दूसरी नारकी की साढे पद्रह धनुष 12 अंगुल की, तीसरी नारकी की सवा इकतीस धनुष,चौथी नारकी की साठे बासठ धनुष, पॉचवी नारकी की सँवासो धनुष, छठी नारकी,की दौ सौ पचास धनुष, सातवीं नारकी की पॉच सौ धनुष। उत्तर वैक्रिय करे,तो जघन्य अंगुल के संख्यातवे भाग, उत्कृष्ट अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी । जैसे सातवी नारकी की भवधारणीय शरीर की अवगाहना 500 धनुष की है और उत्तर वैक्रिय करे तो 1000 धनुष की कर सकता है ।

भवनपति,वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहिले, दूसरे देवलोक के देवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट 7 हाथ की ।

आगे सभी कि ज अगुल के अस भाग उ इस प्रकार है –
तीसरे और चौथे देवलोक के देवो की 6 हाथ की, पॉचवे-छटे देवलोक के देवो की 5 हाथ की, सातवे-आठवे देवलोक के देवों की 4 हाथ की, नौवे से बारहवे देवलोक के देवो की 3 हाथ की, नव ग्रैवेयक के देवों की 2 हाथ की, पाच अनुत्तर विमान के देवो की 1 हाथ की ।
उत्तर वैक्रिय करे, तो जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग, उत्कृष्ट बारहवे देवलोक तक एक लाख योजन की । नव ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों मे वैक्रिय करने कि शक्ति तो होती है किन्तु करते नही है ।

2 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और असन्नी मनुष्य इन पाचो की अवगाहना ज अंगुल के असंख्यातवे भाग और उकृष्ट भी अगुल के असंख्यातवे भाग । किन्तु ज से उत्कृष्ट असख्यात गुण अधिक है।
वनस्पतिकाय की अवगाहना ज. अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट 1000 योजन झाझेरी, कमल नाल की अपेक्षा । वायुकाय के उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना ज और उ अगुल के असख्यातवे भाग ।

3 बेइन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट12 योजन ।
तेइन्द्रिय की अवगाहना ज अंगुल के असख्यातवे भाग,उ 3 गाऊ ।
चौरिन्द्रिय की अवगाहना ज अगुल के असख्यातवे भाग, उ 4 गाऊ ।
असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय के पाच भेद -
जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प । जलचर की अवगाहना ज अगुल के अस भाग, उ 1000 योजन की ।
स्थलचर की जघन्य अंगुल के अस. भाग,उ पृथक्त्व गाऊ ।
खेचर की जघन्य अगुल के अस भाग उ पृथक्त्व धनुष ।
उरपरिसर्प की जघन्य अंगुल के अस भाग, उ पृथक्त्व योजन ।
भूजपरिसर्प की जघन्य अगुल के अस भाग, उ पृथक्त्व धनुष

4 **सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय के पांच भेद —**
जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भूजपरिसर्प । जलचर की अवगाहना ज अगुल के असख्यातवे भाग उत्कृष्ट 1000 योजन ।
स्थलचर की ज अगुल के असख्यातवे भाग,उत्कृष्ट 6 गाऊ ।

खेचर की ज अंगुल के असंख्यात वे भाग, उत्कृष्ट पृथक्त्व धनुष।
उरपरिसर्प की ज.अंगुल के असंख्यातवे भाग उ. 1000 योजन।
भुजपरिसर्प की ज अगुल के असंख्यातवें भाग उ. पृथक्त्व गाऊ।
सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर करे, तो अवगाहना ज अगुल के सख्यातवें भाग उत्कृष्ट पृथक्त्व 100 योजन (ज. 200 उत्कृष्ट 900 योजन)

5. **गर्भज मनुष्यों की अवगाहना** – ज. अगुल के असंख्यातवे भाग उत्कृष्ट तीन गाऊ। काल के अनुसार अवसर्पिणी काल मे गर्भज मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना इस प्रकार है—
पहले आरे के प्रारंभ में तीन गाऊ।
पहला पूर्ण होते और दूसरे के प्रारंभ मे दो गाऊ।
दूसरा पूर्ण होते और तीसरे के प्रारंभ में एक गाऊ।
तीसरा पूर्ण होते और चौथेके प्रारंभ में 500 धनुष।
चौथा पूर्ण होते और पांचवे के प्रारभ मे 7 हाथ।
पांचवा पूर्ण होते और छठे के प्रारंभ मे 2 हाथ।
छठा आरा पूर्ण होते एक हाथ।
यह उत्कृष्ट अवगाहना है। जघन्य अवगाहना उत्पत्ति के समय अंगुल के असंख्यातवे भाग है।
उत्सर्पिर्णी काल की अवगाहना का क्रम इससे उलटा होता है। यदि मनुष्य वैक्रिय करे, तो अवगाहना ज. अगुल के संख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन झाझेरी।

6. **युगलिक मनुष्य की अवगाहना** - ज. अंगुल के असं भाग तथा उत्कृंष्ट हेमवत और हैरण्यव्रत मे एक गाऊ। हरिवास और रम्यक्वास में दो गाऊ। देवकुरु और उत्तरकुरु मे तीन गाऊ। अन्तर्द्विप मेआठ सौ धनुष। इन सबमे ज. देशउणी और उत्कृष्ट परिपूर्ण होती है।

7. **श्री सिद्ध भगवान कि अवगाहना**–आत्म प्रदेशों की अवगाहना जघन्य एक हाथ आठ अगुल (दो हाथ वाले मनुष्य की अपेक्षा) मध्यम चार हाथ और सोलह अंगुल (7 हाथ वाले मनुष्य की अपेक्षा) उत्कृष्ट 333 धनुष्य 32 अंगुल (500 धनुष वाले मनुष्य की अपेक्षा)

3. संहनन द्वार

हड्डियो के बन्धन विशेष को संहनन कहते अथवा उस-उस प्रकार के बन्धन के समान दृढता को संहनन कहते हैं। इसके छह भेद है -

1 **वज्रऋषभ – नाराच संहनन –** वज्र का अर्थ - किल है, ऋषभ का अर्थ वेष्टन-पट्ट (पट्टा) है और नाराच का अर्थ दोनो ओर से मर्कट बन्ध है। जिस संहनन मे दोनो ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुडी हुई दो हड्डियो पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारो ओर से वेष्टन होऔर जिसमे इन तीनो हड्डियो को भेदने वाली हड्डी की वज्र नामक कील हो, उसे वज्र - ऋषभ - नाराज संहनन कहते है ।

2 **ऋषभ – नाराच संहनन –** जिस संहनन मे दोनो ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुडी हुई हड्डियो पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारो ओर से वेष्टन हो, परन्तु तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील नही हो, उसे ऋषभ - नाराच - संहनन कहते हैं ।

3 **नाराच – सहनन –** जिस सहनन मे दोनो ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुडी हड्डियॉ हो,परन्तु इनके चारों ओर वेष्टन-पट्ट और वज्र नामक कील नहीं हो, उसे नाराच - सहनन कहते हैं ।

4 **अर्धनाराच – संहनन –** जिस सहनन मे एक ओर मर्कट -बन्ध हो,उसे अर्धनाराच - संहनन कहते है ।

5 **कीलिका – संहनन –** जिस सहनन मे हड्डियॉ केवल कील से जुडी हुई हो, उसे कीलिका - सहनन कहते है ।

6 . **सेवार्त्तक – संहनन –** जिस सहनन मे हड्डीयॉ पर्यन्त भाग मे एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती है तथा सदा चिकने पदार्थो के प्रयोग एवं तैलादि की मालिश की अपेक्षा रखती है, उसे सेवार्त्तक - सहनन कहते है ।

1 नारकी और देवता में सहनन नही । नारकी मे अशुभ पुद्गल परिणमे और देवो मे शुभ परिणमे ।

2 पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे एक सेवार्तक सहनन है ।

3 तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे एक सेवार्त्तक सहनन है ।

4 सन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय मे सहनन पावे छहो -

1 वज्र ऋषभ नाराच संहनन 2 ऋषभ नाराच सहनन 3 नाराच सहनन 4 अर्द्ध नाराच संहनन 5 कीलिका संहनन 6 सेवार्त्तक सहनन ।

5 गर्भज मनुष्य मे संहनन पावे छहों ।

6 युगलिक मनुष्य मे वज्र ऋषभ नाराच सहनन ।

7. सिद्ध भगवान मे संहनन नही।

4. संस्थान द्वार

नामकर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति को सस्थान कहते हैं। इसके छह भेद है –

1. **समचतुरस्त्र (समचोरस)** – ऊपर, नीचे तथा बीच मे समभाग से शरीर की सुन्दराकार आकृति को समचोरस सस्थान कहते है।
2. **न्यग्रोधपरिमण्डल** – वट वृक्ष के समान शरीर की आकृति अर्थात जिसमें नाभि से उपर का भाग प्रशस्त, विस्तृत, लक्षणयुक्त, पूर्ण एव शास्त्रनुसार प्रमाण वाला हो और नाभि से नीचे का भाग हीन हो, उसे न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान कहते हैं।
3. **सादि**– ऊपर वाले लक्षण से बिल्कुल विपरीत हो, जैसे सॉप की बाँबी अर्थात् नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो, उसे सादि संस्थान कहते है।
4. **कुब्जक (कुबड़ा)** – जिस शरीर के हाथ, पाँव, मुख और ग्रीवादिक उत्तम हो और ह्रदय, पेट, पीठ अधम (हीन) हों, उसे कुब्जक संस्थान कहते है।
5 **वामन** – बौना शरीर हो अर्थात् जिस शरीर में हाथ, पॉव आदि अवयव हीन हों और छाती, पेट आदि पूर्ण हों, उसे वामन सस्थान कहते हैं।
6. **हुण्डक** – जिस शरीर में सभी अंगोपाग किसी खास आकृति के न हो (खराब हो) उसे हुण्डक सस्थान कहते है।

1. नारकी के भवधारणीय शरीर और उत्तर वैक्रिय शरीर में एक हुण्डक संस्थान है। देवों के भवधारणीय शरीर मे एक समचोरस सस्थान और उत्तर वैक्रिय शरीर में विविध प्रकार का संस्थान होता है।
2 पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य के एक हुण्डक संस्थान होता है।
3 तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे एक हुण्डक सस्थान होता है।
4. सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे सस्थान पावे छहो -
   1 समचतुरस्त्र सस्थान (समचोरस), 2. न्यग्रोधपरिमण्डल सस्थान 3. सादि संस्थान 4 कुब्जक संस्थान 5. वामन संस्थान 6 हुण्डक संस्थान।
5. गर्भज मनुष्यो मे छहो संस्थान पाये जाते हैं।

6 युगलिक मनुष्यो मे समचतुरस्त्र सस्थान पाया जाता है ।
7 सिद्ध भगवान् मे सस्थान नही ।

5. कषाय द्वार

क्रोधादि रुप आत्मा के विभाव परिणामो को काषाय कहते है ।

इसके चार भेद है - क्रोध, मान, माया, लोभ ।

1 सभी जीवो मे कषाय पावे चारो - क्रोध, मान, माया, लोभ । मनुष्य अकषायी भी होते हैं । 11 To 14
2 सिद्ध भगवान् अकषायी हैं ।

6. संज्ञा द्वार

आहारादि की सवेदना विशेष को सज्ञा कहते है । इसके चार भेद है ।

1 24 ही दण्डको मे चारो सज्ञा पाई जाती है -
1 आहार - संज्ञा 2 भय - सज्ञा 3 मैथुन - सज्ञा और परिग्रह सज्ञा । मनुष्य नोसज्ञोपयुक्त भी होते है । 13 14
2 सिद्ध भगवान् मे सज्ञा नही, नोसज्ञोपयुक्त हैं ।

7. लेश्या द्वार

योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न होने वाले आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को लेश्याकहते है । इसके छह भेद है ।

1 पहली और दूसरी नारकी मे एक कापोत लेश्या है । तीसरी नारका में कापोत और नील लेश्या । चौथी नारकी मे एक नील लेश्या । पाचवी नारकी मे नील और कृष्ण लेश्या । छठी नारकी मे कृष्ण लेश्या । सातवी नारकी मे महा कृष्ण लेश्या । भवनपति और वाणव्यन्तरम देव मे पहली चार लेश्या होती है - 1 कृष्ण लेश्या 2 नील - लेश्या 3 कापोत लेश्या 4 तेजो लेश्या । ज्योतिषी तथा पहले - दूसरे देवलोक मे तेजो-लेश्या । तीसरे, चौथे और पॉचवे देवलोक मे पद्म लेश्या । छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक शुक्ल लेश्या । पाच अनुत्तर विमान मे परम शुक्ल लेश्या ।
2 पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय - इन तीनो मे चार लेश्या पायी जाती है - कृष्ण, नील, कपोत और तेजो लेश्या । तेउकाय, वायुकाय और असन्नी मनुष्य मे तीन लेश्या पायी जाती है - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या ।

3 तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे तीन लेश्या पायी जाती है - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या।

4. सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे छहों लेश्या पाई जाती है - 1 कृष्ण 2. नील 3. कापोत 4. तेजो 5. पद्म 6 शुक्ल।

5. गर्भज मनुष्य में छहों लेश्या तथा अलेशी भी होतें है।

6. युगलिक मनुष्य में चार लेश्या पाई जाती है। **कृष्ण, नील,** कापोत **और तेजो लेश्या।**

7. सिद्ध भगवान् मे लेश्या नही, अलेशी हैं।

8. इन्द्रिय द्वार

इन्द्र का अर्थ आत्मा। जिसके माध्यम से छद्मस्थ आत्मा शब्द, रुप, रस, गंध, स्पर्श का ज्ञान करती है उसे इन्द्रिय कहते है।

इसके पॉच भेद है।

1. नारकी और देवो मे पांचो इन्द्रिय - 1. श्रोतेन्द्रिय 2. चक्षुरिन्द्रिय 3 घ्राणेन्द्रिय 4. रसनेन्द्रिय 5. स्पर्शनेन्द्रिय।

2. पांच स्थावर मे एक स्पर्शनेन्द्रिय पावे और असन्नी मनुष्य मे पाचो ही. इन्द्रियां पावे।

3 बेइन्द्रिय में इन्द्रिय पावे दो - रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय तेइन्द्रिय मे इन्द्रिय पावे तीन - घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। चौइन्द्रिय में चार इन्द्रिय पावे - चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। शेष सभी जीवो में पांचो इन्द्रिय पावे, मनुष्य अनिन्द्रिय भी होते है। 13,14

4 सिद्ध भगवान मे इन्द्रिया नहीं, अनिद्रिय है।

9. समुद्घात द्वार

सम-एकी भावेन से, उद्-प्रबलता से, घात-बाहर निकलना। वेदना आदि के साथ तन्मय होकर मूल शरीर को बिना छोडे प्रबलता से आत्म प्रदेशो को बाहर निकाल कर असाता वेदनीय आदि कर्मो का नाश करता है व समुद्घात कहलाता है। इसके सात भेद हैं -

1 वेदनीय समुद्घात - असाता वेदनीय कर्म के कारण आत्म-प्रदेशो मे स्पन्दन होकर कुछ आत्म - प्रदेशो का शरीरावगाहना से बाहर आ जाना वेदनीय समुद्घात हैं। इसके द्वारा उदय प्राप्त असाता वेदनीय कर्म का नाश होता है। साता वेदनीय कर्म का समुद्घात नही होता है

2 कषाय समुद्घात - तीव्र क्रोधादि कषायो के कारण आत्म-प्रदेशो मे

स्पन्दन होकर कुछ आत्म-प्रदेशो का शरीरावगाहना से बाहर आ जाना कषाय समुद्घात कहलाता है । इसके द्वारा उदय प्राप्त कषाय मोहनीय का नाश होता है । चारो कषायो का समुद्घात होता है ।

3 मारणातिक समुदघात - मृत्यु से अन्तर्मुहूर्त पूर्व उत्पत्ति के स्थान तक लबा (शरीर प्रमाण चौड़ा एव मोटा वाला) आत्मप्रदेशो का दड निकालना, मारणातिक समुद्घात कहलाता है ।

4 **वैक्रिय समुद्घात** – वैक्रिय रुपो का निर्माण करने हेतु वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करने के लिए आत्म-प्रदेशो का एक दिशा अथवा विदिशा मे संख्यात योजन तक का दण्ड निकालना (मोटाई व चौडाई मे शरीर प्रमाण-दण्ड होता है) वैक्रिय समुद्घात कहलाता है । इसमे वैक्रिय नाम कर्म की क्षपणा होती है ।

5 **तेजस् समुद्घात** – शीतल अथवा उष्ण तेजोलेश्या किसी पर डालने हेतु तैजस पुद्गलो को ग्रहण करने के लिये सख्यात योजना तक का एक दिशा अथवा विदिशा मे आत्म-प्रदेशो का दड निकलना (यह भी मोटाई व चौड़ाई मे शरीर प्रमाण ही होता है) तैजस समुद्घात कहलाता है । इसमे तैजस् नामकर्म की क्षपणा होती है ।

6 **आहारक समुद्घात** – जीवदया, ऋद्धि दर्शन,ज्ञान ग्रहण या सशय निवारण हेतु चौदह पूर्वधारी मुनि द्वारा आहारक पुतला बनाने हेतु आहारक वर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करने के लिए संख्यात योजन का आत्म - प्रदेशो का दण्ड निकालना (मोटाई व चौडाई मे शरीर प्रमाण दण्ड होता है) आहारक समुद्घात कहलाता है । इसमे आहारक शरीर नामकर्म की क्षपणा होती है ।

7 **केवली समुद्घात** – वेदनीय आदि कर्मो को खपाने के लिए चार समयो मे आत्म प्रदेशो को समग्र लोक मे फैला देना एव चार समयो में पुन सकोचित करके शरीरस्थ हो जाना, केवली समुद्घात कहलाता है । इसमे आयु से अधिक स्थिति वाले वेदनीय, नाम और गौत्र कर्मो की क्षपणा होती है । जिन महापुरुषों को 6 माह या उससे कम आयु शेष रहने पर केवलज्ञान की प्राप्ति होती है । उनमें से जिन की आयु कम व वेदनीय आदि कर्मो की स्थितिअधिक होती है, उनकी स्थिति सम करने के लिये केवली समुद्घात करते है । केवली समुद्घात के अन्तर्मुहूर्त बाद अवश्य मोक्ष हो जाता है ।

1. नारकी में समुद्घात चार-वेदनीय, कषाय, मारणातिक और वैक्रिय। भवनपति से यावत् बारहवें देवलोक तक अनुक्रम से पाच समुद्घात पाँवे। नव ग्रेवयक और पॉच अनुत्तर विमान में शक्ति से पाच समुद्घात पावे परन्तु करते है तीन-वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक। वैक्रिय और तेजस समुद्घात नही करते हैं।
2. चार स्थावर - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य, इन पांचो में समुद्घात पावे तीन-वेदनीय, कषाय और मारणांतिक समुद्घात। वायुकाय में समुद्घात पावे चार वेदनीय, कषाय, मारणातिक और वैक्रिय।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय में समुद्घात पावे तीन - वेदनीय, कषाय और मारणातिक।
4. सन्नी तिर्यच में समुद्घात पावे पाच-वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक। वैक्रिय और तेजस
5. गर्भज मनुष्य में समुद्घात पावे सातों ही -
   1. वेदनीय 2. कषाय 3. मारणांतिक 4. वैक्रिय 5. तैजस 6. आहारक 7. केवली।
6. युगलिक मनुष्य में समुद्घात पावे तीन - वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।
7. सिद्ध भगवान मे समुद्घात नही।

10. सन्नी द्वार

जिसके मन हो उसे संज्ञी और जिसके मन नही हो उसे असज्ञी कहते हैं।

1. पहली नारकी, भवनपति और वाणयन्तर मे सन्नी-असन्नी दोनोउत्पन्न होते है। असन्नी कुछ देर असन्नी रहकर फिर सन्नी हो जाते हैं। दूसरी नारकी से सातवी नारकी तक, ज्योतिषी से पाच अनुत्तर विमान तक सन्नी ही उत्पन्न होते है।
2. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य असन्नी है, सन्नी नही।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय - ये सभी सन्नी नही, असन्नी हैं। शेष सभी जीव सन्नी है, असन्नी नहीं।
4. सन्नी तिर्यन्च पचेन्द्रिय सन्नी।
5. गर्भज मनुष्य सन्नी तथा नो सन्नी नौ असन्नी।
6. युगलिक मनुष्य सन्नी।

सिद्ध भगवान् सन्नी - असन्नी नही, नोसन्नी नोअसन्नी ।

11. वेद द्वार

नामकर्म के उदय से होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष, नपुसक रुप को द्रव्य वेद , तथा जीव की विषय भोग की अभिलाषा को भाव वेद है। इसके तीन भेद होते है -

नारकी मे एक नपुसक वेद पावे । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहिले - दूसरे देवलोक मे वेद दो-स्त्री वेद, और पुरुष वेद ।

तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक पुरुष वेद होता है ।

पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे एक नपुसक वेद होता हैं ।

तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे एक नपुसक वेद होता है ।

सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे तीनो ही वेद पाये जाते हैं ।

गर्भज मनुष्य मे तीनो वेद पाये जाते हैं एव अवेदी भी ।

युगलिक मनुष्य मे दो वेद - स्त्री वेद और पुरुष वेद ।

सिद्ध भगवान् मे वेद नही, अवेदी है ।

12. पर्याप्ति द्वार

आहारादि के पुद्‌गलो को ग्रहण करने तथा उन्हें शरीरादि रुप मे माने की आत्म शक्ति विशेष को पर्याप्ति द्वार कहते हैं । इसके छह भेद हैं -

नारकी मे पर्याप्ति पावे छह और देव मे पर्याप्ति, पावे पांच । क्योकि भाषा और मन ये दोनो पर्याप्तियॉ शामिल बाँधते हैं ।

पाच स्थावर मे चार पर्याप्ति पावे आहार पर्याप्ति शरीर पर्याप्ति इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छवास पर्याप्ति । असन्नी मनुष्य चौथी पर्याप्ति का अपर्याप्ता रहते हुए ही मर जाता है ।

तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय मे पर्याप्ति पावे पाच आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छवास और भाषा पर्याप्ति ।

सन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय मे छहो पर्याप्ति पाई जाती है ।

गर्भज मनुष्य मे छहो पर्याप्ति पाई जाती है ।

युगलिक मनुष्य मे छहो पर्याप्ति पाई जाती है ।

सिद्ध भगवान नोपर्याप्त - नो अपर्याप्त है ।

13. दृष्टि द्वार

तत्व विचारणा की रुचि को दृष्टि कहते है। इसके तीन भेद होते है-

1. सम्यक दृष्टि 2. मिथ्या दृष्टि 3. सम्यग मिथ्या (मिश्र) दृष्टि।

सम्यक दृष्टि – वीतराग देव की वाणी पर अखण्ड श्रद्धा रखने वाला।

मिथ्या दृष्टि – वीतराग वाणी को देशतः या सर्वत मिथ्या मानता है।

सम्यग मिथ्या मिश्र दृष्टि – वीतराग वाणी के प्रति न रुचि हो न अरुचि हो।

1. नारकी और भवनपति से लगा कर ग्रैवेयक तक दृष्टि पावे तीनो ही 1. सम्यग् दृष्टि 2. मिथ्या दृष्टि 3. सम्यग् मिथ्या दृष्टि। (मिश्र) 15. परमाधार्मिक 3 किल्वीषी में एक मिथ्या दृष्टि ही होती है। पाच अनुत्तर विमान में एक सम्यग दृष्टि ही होती है।
2. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में एक मिथ्या दृष्टि।
3 तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय मे दो दृष्टि-सम्यग दृष्टि और मिथ्या दृष्टि।
4. सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय में तीनो ही दृष्टि पाई जाती है।
5. गर्भज मनुष्य मे तीनों ही दृष्टि पाई जाती है।
6. युगलिक मनुष्य मे 30 अकर्म भूमि मे दो दृष्टि - 1 सम्यग् दृष्टि और 2. मिथ्या दृष्टि और 56 अन्तर्द्विपो मे एक मिथ्या दृष्टि।
7 सिद्ध भगवान् मे एक सम्यग् दृष्टि।

14. दर्शन द्वार

जिसमें महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उसको दर्शन कहते है। इसके चार भेद हैं -

1. **चक्षु दर्शन** – नेत्रजन्य मतिज्ञान से पहिले होने वाले सामान्य प्रतिभास, या अवलोकन को चक्षु दर्शन कहते है।
2. **अचक्षु दर्शन** – नेत्र के सिवाय दूसरी इन्द्रियो और मन सम्बन्धी मतिज्ञान के पहिले होने वाले सामान्य अवलोकन को अचक्षु दर्शन कहते हैं।
3 **अवधि दर्शन** – अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को अवधि दर्शन कहते है।
4 **केवल दर्शन** – केवलज्ञान के उपयोग के बाद होने वाले सामान्य धर्म के अवलोकन (उपयोग) को केवल-दर्शन कहते है।

1 नारकी और देवो मे दर्शन पावे तीन -चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन।

2 पाच स्थावर मे एक अचक्षुदर्शन होता है ।
असन्नी मनुष्य मे चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन - ये दो दर्शन हैं ।
3 बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय मे एक अचक्षुदर्शन है । चउन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय मे दो दर्शन - चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।
4 सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय मे दर्शन पावे तीन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शनऔर अवधिदर्शन ।
5 गर्भज मनुष्य में दर्शन पावे चार - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ।
6 युगलिक मनुष्य मे दर्शन दो-चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।
7 सिद्ध भगवान मे एक केवलदर्शन ।

15. ज्ञान – अज्ञान द्वार

किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाला बोध ज्ञान कहलाता है । इसके दो भेद है - सम्यग् ज्ञान, मिथ्या ज्ञान ।

सम्यग् ज्ञान के पॉच भेद है - अभिनिबोधिक ज्ञान(मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ।

1 **मतिज्ञान** - पाच इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो, उसे मतिज्ञान कहते है ।
2 **श्रुतज्ञान** - मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ से सम्बन्धित किसी दुसरे पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते है । जैसे - घट शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न हुआ कबुग्रीवादिरुप घट का ज्ञान ।
3 **अवधिज्ञान** – मन व इन्द्रियो की सहायता के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो रुपी पदार्थ को स्पष्ट जाने ।
4 **मनः पर्ययज्ञान** – मन व इन्द्रियो की सहायता के बिना द्रव्य,क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो साधु सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के मन मे रही हुई पर्यायो को स्पष्ट जाने ।
5 **केवलज्ञान**–जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थो को हस्तामलकवत् स्पष्ट जाने ।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद है - 1 मतिअज्ञान 2 श्रुतअज्ञान 3 विभगज्ञान। ये तीन अज्ञान है ।

1 नारकी और देवो मे ज्ञान पावे तीन - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। अज्ञान - नारकी और भवनपति से नवग्रैवेयक तक

अज्ञान पावे तीन - मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभगज्ञान। पाच अनुत्तर विमान में अज्ञान नही होता। ज्ञान पावे तीन।

2. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे ज्ञान नही होता, मतिअज्ञानऔर श्रुतअज्ञान - ये दो अज्ञान होते है।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय में दो ज्ञान - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तथा दो अज्ञान।
4 सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय में ज्ञान पावे तीन -मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। अज्ञान पावे तीनो।
5 गर्भज मनुष्य मे ज्ञान पावे पांच मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, केवलज्ञान, अवधिज्ञान,मन:पर्यवज्ञान और अज्ञान पावे तीनो।
6. 30 अकर्मभूमि मे दो ज्ञान-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान। दो अज्ञान मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान। 56 अन्तर्द्वीप मे दो अज्ञान। ज्ञान नही।
7. सिध्द भगवान में एक केवलज्ञान, अज्ञान नही।

16. योग द्वार

मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। इसके 15 भेद है - 4 मन के , 4 वचन के और 7 काया के।

1. नारकी और देवो में योग पावे ग्यारह - 4 मन के, 4 वचन के और 3 काया के (वैक्रिय योग,वैक्रिय मिश्र योग, कार्मण योग)
2 चार स्थावर - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय औरअसन्नी मनुष्य - इन पांचों में योग पावे तीन - 1. औदारिक योग, 2 औदारिक मिश्र योग, 3. कार्मण काय योग। वायुकाय में योग पावे पांच - 1. औदारिक योग,2 औदारिक मिश्र योग, 3 वैक्रिय योग, 4 वैक्रिय मिश्र योग और 5. कार्मण काय योग।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय मे योग पावे चार- व्यवहार भाषा, औदारिक योग, औदारिक मिश्र योग और कार्मण काय योग।
4. सन्नी तिर्यच में योग पावे 13- चार मन के, चार वचन के और पाच काया के -औदारिक योग, औदारिक मिश्र योग, वैक्रिय योग, वैक्रिय मिश्र और कार्मण काय योग।
5. गर्भज मनुष्य मे पंद्रह ही योग पावे। 4 मन के , 4 वचन के और 7 काया के एवं अयोगी भी होते है।
6. युगलिक मनुष्य मे योग पावे ग्यारह - 4 मन के, 4 वचन के और 3

काया के - 1. औदारिक काय योग, 2 औदारिक मिश्र काय योग, 3 कार्मण काय योग ।

7 सिध्द भगवान मे योग नही, अयोगी है ।

17. उपयोग द्वार

ज्ञान और दर्शन में होती हुई आत्म प्रवृत्ति को **उपयोग** कहते है । इसके 12 भेद होते है - 5 ज्ञान के, 3 अज्ञान के, 4 दर्शन के ।

1 नारकी और देवो मे नवग्रैवेयक तक उपयोग पावे नौ- तीन ज्ञान,तीन अज्ञान और तीन दर्शन । पांच अनुत्तर विमान मे उपयोग पावे छह- तीन ज्ञान और तीन दर्शन ।

2 पाच स्थावरों मे उपयोग पावे तीन - मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन। असन्नी मनुष्य मे उपयोग पावे चार-मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

3 बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय मे उपयोग पावे पाच - दो ज्ञान, दो अज्ञान और एक दर्शन - अचक्षुदर्शन, चौइन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय मे छह उपयोग - दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन ।

4 सन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय मे उपयोग पावे नौ - 3 ज्ञान, 3 अज्ञान और 3 दर्शन ।

5 गर्भज मनुष्य मे उपयोग पावे 12 - पाच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन ।

6 तीस अकर्म भूमि मे उपयोग पावे 6 - दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन । 56 अन्तर्दीपो मे उपयोग पावे चार - दो अज्ञान और दो दर्शन ।

7 सिध्द भगवान् में दो उपयोग-केवलज्ञान और केवलदर्शन ।

18. आहार द्वार

जीव के द्वारा शरीर के निर्माण, धारण अथवा पोषण के लिए ग्रहण किए जाने वाले पुद्गलो को **आहार** कहते है ।

जीव 288 प्रकार के पुद्गलो का आहार करता है । आहार तीन प्रकार का होता है - सचित्त, अचित्त, मिश्र । प्रकारान्तर से भी आहार के तीन भेद होते हे - ओज (शरीर द्वारा), रोम (त्वचा द्वारा), प्रक्षेपाहार (कवल द्वारा) जो ग्रहण किया जाता है ।

1 पाच स्थावर को छोड शेष सभी जीव छहो दिशा से 288 भेद का आहार लेते है ।

2. पांच स्थावर 288 भेदो का आहार लेते है। दिशा की अपेक्षाव्याघात हो, तो कदाचित् तीन दिशा का, कदाचित चार दिशा का और कदाचित् पांच दिशा का। निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशा का। असन्नी मनुष्य आहार लेवे 288 भेद का, जिसमे दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार लेवे।
3. गर्भज मनुष्य छहो दिशा से 288 भेदो का आहार लेते है, तथा अनाहारक भी होते हैं।
4. सिध्द भगवान आहारक नही, अनाहारक होते है।

19. उपपात द्वार

जीव पूर्वभव से आकर उत्पन्न हो, उसे उपपात कहते हैं।

1. नारकी और भवनपति से लगाकरक यावत् आठवें देवलोक तक एक समय मे ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उ. असंख्यात उत्पन्न होवे। नौवें देवलोक से लगाकर यावत् सर्वार्थसिध्द तक ज 1-2-3 उ.संख्यात उत्पन्न होवे।
2. चार स्थावर मे प्रति समय निरन्तर असंख्यात उपजे और वनस्पतिकाय में प्रति समय अनन्त उपजे। असन्नी मनुष्य में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उ असंख्यात उपजे।
3. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय में एक समय मे ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात उत्पन्न होते है।
4. सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय एक समय में ज. 1-2-3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात उपजे।
5. गर्भज मनुष्य में उपपात ज 1-2-3 उ सख्यात उपजे।
6. युगलिक मनुष्य में ज. 1-2-3 उ संख्यात उत्पन्न होते हैं।
7. सिध्द भ. एक समय में ज 1-2-3 उत्कृष्ट 108 सिध्द होते है।

20. स्थिति द्वार

जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे **स्थिति** कहते है।

समुच्चय नेरियक एवं देवताओ की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट 33 सागरोपम की।

1. **पहली नारकी के नेरिये की स्थिति** जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट 1 सागरोपम की।

   दूसरी नारकी की ज. एक सागरोपम उ. 3 सागरोपम की।

तीसरी नारकी की ज 3 सागरोपम उ 7 सागरोपम की ।
चौथी नारकी की ज 7 सागरोपम उ 10 सागरोपम की ।
पाचवी नारकी की ज 10 सागरोपम उ 17 सागरोपम की ।
छठी नारकी की ज. 17 सागरोपम उ 22 सागरोपम की ।
सातवी नारकी की ज. 22 सागरोपम उ 33 सागरोपम की ।
भवनपति देव की असुरकुमार जाति के दो इन्द्र है - चमरेन्द्रजी और बलिन्द्रजी ।

चमरेन्द्र के रहने की चमरचंचा राजधानी, जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा मे अधोलोक मे है । बलिन्द्रजी के रहने की बलिचचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर दिशा मे अधोलोक मे है ।
चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम और उनकी देवी की स्थिति ज दस हजार वर्ष उ साढे तीन पल्योपम की । शेष नौ जाति के दक्षिण दिशा के भवनपति देवो की स्थिति ज दस हजार वर्ष उत्कृष्ट डेढ पल्योपमऔर उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट पौन पल्योपम।
बलिन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति ज. दस हजार वर्ष,उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी । उनकी देवियो की स्थिति ज दस हजार वर्ष उत्कृष्ट साढे चार पल्योपम । शेष नौ जाति के उत्तर दिशा वाले भवनपति देवो की स्थिति ज दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम । उनकी देवी की स्थिति ज दस हजार वर्ष, उत्कृष्टदेशोन एक पल्योपम । वाणव्यन्तर देवो की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक पल्योपम । उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट अर्ध पल्योपम ।

ज्योतिषी देवों की स्थिति इनके पांच भेद

1 चन्द्र 2 सूर्य 3 ग्रह 4 नक्षत्र और 5 तारा ।

चन्द्र -विमानवासी देवो की स्थिति ज पाव पल्योपम, उ 1 पल्योपम, और 1लाख वर्ष । उनकी देवियो की स्थिति ज पाव पल्योपम उ आधा पल्योपम और 50 हजार वर्ष ।

सूर्य -विमानवासी देवो की स्थिति ज पाव पल्योपम उ 1 पल्योपम, और एक हजार वर्ष । उनकी देवियो की स्थिति ज पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम और 500 वर्ष ।

ग्रह -विमानवासी देवो की स्थिति ज पाव पल्योपम, उत्कृष्ट एक पल्योपम ।

उनकी देवियो की स्थिति ज पाव पल्योपम, उ आधा पल्योपम।

नक्षत्र-विमानवासी देवो की स्थिति ज पाव पल्योपम उ आधा पल्योपम और उनकी देवियो की स्थिति ज पाव पल्योपम उ. पाव पल्योपम झाझेरी ।

तारा –विमानवासी देवो की स्थिति ज. पल्योपम के आठवे भाग,उ पाव पल्योपम । उनकी देवियो की स्थिति ज. पल्योपम के आठवे भाग, उ पल्योपम के आठवें भाग झाझेरी ।

वैमानिक देवों की स्थिति

पहिले देवलोक के देवो की स्थिति ज. एक पल्योपम, उ दो सागरोपम। उनकी देवियां दो प्रकार की है -

1 परिगृहिता और 2. अपरिगृहिता । परिगृहिता देवियो की स्थति ज एक पल्योपम,उ 7 पल्योपम । अपरिगृहिता देवियो की स्थिति ज एक पल्योपम, उ. 50 पल्योपम ।

दूसरे देवलोक के देवो की स्थिति ज. 1 पल्योपम झाझेरी, उ 2 सागरोपम झाझेरी । उनकी देवियां दो प्रकार की है - परिगृहिताऔर अपरिगृहिता। परिगृहिता देवियो की स्थिति ज. एक पल्योपम झाझेरी। उ 9 पल्योपम । अपरिगृहिता देवियों की स्थिति ज एक पल्योपम झाझेरी उ 55 पल्योपम ।

तीसरे देवलोक के देवो की स्थिति ज 2 सागरोपम उ 7 सागरोपम।

चौथे देवलोक के देवो की स्थिति ज 2 सागरोपम झाझेरी, उ. 7 सागरोपम झाझेरी ।

पांचवे देवलोक के देवो की स्थिति ज 7 सा उ 10 सा ।

छटे देवलोक के देवों की स्थिति ज 10 सा उ. 14 सा ।

सातवें देवलोक के देवों की स्थिति ज 14 सा. उ. 17 सा ।

आठवें देवलोक के देवो की स्थिति ज. 17 सा उ 18 सा ।

नौवें देवलोक के देवों की स्थिति ज 18 सा. उ 19 सा. ।

दसवें देवलोक के देवों की स्थिति ज. 19 सा उ 20 सा. ।

ग्यारहवें देवलोक के देवो की स्थिति ज. 20 सा उ 21 सा ।

बारहवें देवलोक के देवो की स्थिति ज. 21 सा. उ 22 सा ।

पहले ग्रैवयक के देवो की स्थिति ज 22 सा उ 23 सा. ।

दूसरे ग्रैवयक के देवो की स्थिति ज. 23 सा उ. 24 सा ।

तीसरे ग्रैवयक के देवो की स्थिति ज. 24 सा. उ. 25 सा ।

चौथे ग्रैवयक के देवो की स्थिति ज 25 सा उ 26 सा ।
पांचवें ग्रैवयक के देवो की स्थिति ज 26 सा उ 27 सा ।
छठे ग्रैवयक के देवो की स्थिति ज 27 सा उ 28 सा ।
सातवें ग्रैवयक के देवो की स्थिति ज 28 सा उ 29 सा ।
आठवें ग्रैवयक के देवो की स्थिति ज 29 सा उ 30 सा ।
नौवे ग्रैवयक के देवो की स्थिति ज 30 सा उ 31 सा ।
चार अनुत्तर विमान के देवो की स्थिति ज 31 सा उ 33 सा ।
सर्वार्थसिद्ध देवो की स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट 33 सागरोपम ।

2 **पृथ्वीकाय** की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ 22000 वर्ष है ।
अप्काय की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ 7000 वर्ष की ।
तेउकाय की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ तीन अहोरात्रि ।
वायुकाय की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ 3000 वर्ष की ।
वनस्पतिकाय की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त की, उ 10,000 वर्ष की ।
असन्नी मनुष्य की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की ।

3 **बेइन्द्रिय** की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 12 वर्ष ।
तेइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 49 अहोरात्रि ।
चौइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट छह महीने ।
असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय के पाच भेद –
जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प ।
जलचर की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ एक करोड पूर्व ।
स्थलचर की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ 84 हजार वर्ष ।
खेचर की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ 72 हजार वर्ष ।
उरपरिसर्प को स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ 53 हजार वर्ष ।
भुजपरिसर्प की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ 42 हजार वर्ष ।

4 **सन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय की स्थिति**
जलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट एक करोड पूर्व ।
स्थलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम ।
खेचर की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ पल्योपम के असख्यातवेभाग।
उरपरिसर्प की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ एक करोड पूर्व ।
भुजपरिसर्प की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त, उ एक करोड पूर्व ।

5 **गर्भज मनुष्य की स्थिति** ज अन्तर्मुहूर्त, उ तीन पल्योपम ।
काल की अपेक्षा अवसर्पिणी काल में – गर्भज मनुष्य की स्थिति –
पहले आरे के आरम्भ मे 3 पल्योपम ।

पहले उतरते और दूसरा लगते 2 पल्योपम ।
दूसरा उतरते और तीसरा लगते 1 पल्योपम ।
तीसरा उतरते और चौथा लगते 1 करोड पूर्व ।
चौथा उतरते और पांचवां लगते एक सौ वर्ष झाझेरी ।
पांचवां उतरते, छठा लगते 20 वर्ष ।
छंठा आरा उतरते 16 वर्ष ।
यह उत्कृष्ट स्थिति बतलाई है । तीसरे आरे तक के मनुष्यो की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट से देशउणी होती है। शेष आरो मे ज.अन्तर्मुहूर्त की। उत्सर्पिणी काल में इससे उलटी होती है ।

6. **युगलिक मनुष्य की स्थिति –**
5 देवकुरु 5 उतरकुरु की स्थिति तीन पल्योपम ।
5 हरिवास 5 रम्यक्वास की स्थिति दो पल्योपम ।
5 हेमवत 5 हैरण्यवत की स्थिति एक पल्योपम ।
56 अन्तर्द्वीप की स्थिति पल्योपम के असंख्यातवे भाग। इनमेंजघन्य स्थिति कुछ कम होती है और उत्कृष्ट पूर्ण होती है ।
7. **सिध्द भगवान् की स्थिति** – एक सिध्द भगवान की अपेक्षा सादिअनत और सभी सिध्द भगवतो की अपेक्षा अनादि अनंत ।

21. समोहया असमोहया मरण द्वार

जो ईलिका गति समुद्घात करके मरे अर्थात, कीडी की कतार की तरह जीव के प्रदेश अलग-अलग निकले, उसे **समोहयामरण** कहते हैं एवं जो गेद (दडी) की गति से समुद्घात करके मरे अथवा बन्दूक की गोली की तरह जीव के प्रदेश एक साथ निकलें उसे **असमोहयामरण** कहते है ।

1. 24 दण्डक के जीव दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं ।
2. सिध्द भगवान मे मरण नही ।

22. च्यवन द्वार

जीव वर्तमान भव को छोडकर अन्य भव की पर्याय को धारण करे उसे **च्यवन** कहते हैं ।

1. नारकी और भवनपति देव से लगाकर आठवें देवलोक तक एक समय में ज.1-2-3 यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे । नौवे देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिध्द विमान तक एक समय मे ज 1-2 -3 उत्कृष्ट संख्यात च्यवे ।
2. चार स्थावर में प्रति समय असंख्यात च्यवे ।
वनस्पतिकाय में प्रति समय अनन्त च्यवे ।

असन्नी मनुष्य मे ज. 1-2-3 यावत् सख्याता उत्कृष्ट असख्याता च्यवे ।

3 विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय मे एक समय मे जघन्य 1-2-3 यावत् सख्यात उत्कृष्ट असख्यात च्यवे ।

4 सन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय एक समय मे ज. 1-2-3 यावत् सख्यात, उत्कृष्ट असख्यात च्यवे ।

5 गर्भज मनुष्य ज 1-2-3 उ सख्यात च्यवे ।

6 युगलिक मनुष्य ज 1-2-3 उ सख्यात च्यवे ।

7 सिध्द भगवान मे च्यवन (मरण) नही ।

23. गति-आगति द्वार

जीव मरकर भवान्तर में जावे उसे **गति** एव भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को **आगति** कहते है ।

1 पहली नारकी से लगाकर 6 नारकी तक दो गतियो से आवे और दो गतियो मे जावे - तिर्यचगचि और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे और दो दण्डक मे जावे (20-21) वॉ तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य दण्डक । सातवी नारकी मे दो गतियो से आवे तिर्यचगति और मनुष्यगति से और एक तिर्यचगति में जावे । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डको से आवे (20-21) वा दण्डक और एक तिर्यच पचेन्द्रिय (20वा दण्डक)मे जावे । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहिले दूसरे देवलोक के देव, दो गतियो से आवे और दो गतियो मे जावे - तिर्यचगति और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे, तिर्यच पचेन्द्रिय से और मनुष्य से और पाच दण्डक मे जावे पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य मे । तीसरे देवलोक से लगाकर आठवे देवलोक तक दो गति से आवे एव दो गति मे जावे (मनुष्य एव तिर्यच) एव दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे, दो दण्डक (मनुष्य तिर्यच) पचेन्द्रिय मे जावे । नौवे देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिध्द विमान के देव एक मनुष्य गति से आवे और उसी गति मे जावे । दण्डक की अपेक्षा एक दण्डक (21 वा) से आवे और एक दण्डक (21 वा) मे जावे - मनुष्य का दण्डक ।

2 पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय मे तीन गति से आवे तिर्यचगति, मनुष्यगति और देवगति से और दो गति मे जावे तिर्यचगति और मनुष्यगति मे । दण्डक की अपेक्षा 23 दण्डक से आवे (10 भवनपति, 5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यच पचेन्द्रिय, 1 मनुष्य, 1 वाणव्यन्तर, 1 ज्योतिषी 1 वैमानिक से) और दस दण्डक मे जावे

(5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यच पंचेन्द्रिय, 1 मनुष्य मे)। तेउकाय और वायुकाय मे दो गति से आवे (तिर्यच और मनुष्य गति से) और एक तिर्यचगति में जावे। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक सेआवे(औदारिक का दस दण्डक उपरोक्त) 9 दण्डक मे जावे (5 स्थाव,3 विकलेन्द्रियऔर 1 तिर्यच पंचेन्द्रिय में) और असन्नी मनुष्य दो गति से आवे - तिर्यचगति और मनुष्यगति से, और दो गति मे जावे - तिर्यचगति और मनुष्यगति मे।

दण्डक की अपेक्षा आठ दण्डक से आवे (एक पृथ्वीकाय, 1 अप्काय, 1 वनस्पतिकाय, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यच पंचेन्द्रिय, 1 मनुष्य से) दस दण्डक में जावे - उपरोक्त औदारिक मे।

3 तीन विकलेन्द्रिय में दो गति से आवे और दो गति मे जावे तिर्यचगति और मनुष्यगति। दण्डक ती अपेक्षा दस दण्डक से आवे और दस दण्डक मे जावे। दस दण्डक औदारिक के हैं। असन्नी तिर्यच मे दो गति से आवे- तिर्यचगति और मनुष्यगति से और चार गति मे जावे नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति में और दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे - (दस दण्डक औदारिक के) और 22 दण्डक मे जावे (1 नारकी, 10 भवनपति, 1 वाणव्यन्तर, 5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यच पंचेन्द्रिय और 1 मनुष्य)।

4 सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय चारो गति और 24 दण्डक से आते है और चारो गति चौबीस दण्डक में जाते हैं।

5. गर्भज मनुष्य - आगति - चारो गति और 22 दण्डक से आते है (तेउकाय व वायुकाय छोडकर)। गति 1. चारो गति और दण्डक 24 मे जाते है और 2. सिध्द गति में भी जाते हैं।

6. युगलिक मनुष्य - आगति 2 तिर्यच और मनुष्यगति से आते है।गति - एक देवगति।

दण्डक की अपेक्षा - तीस अकर्मभूमि की आगति - दो दण्डक से मनुष्य और तिर्यच से। गति दण्डक 13 मे - 10 भवनपति, 1 वाणव्यन्तर, 1 ज्योतिषी और 1 वैमानिक में।

छप्पन अर्न्तद्वीपों मे 2 दण्डक से आवे (तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य और 11दण्डक मे - 10 भवनपति और 1 व्यन्तर मे जावे।

7 सिध्द भगवान् मे आगति एक मनुष्यगति और एक दण्डक से और गति नही।

24 प्राण द्वार

जीवन के आधारभूत पदार्थो को अर्थात् जिनके सद्भाव से जीव

जिस शरीर के साथ बंधे रहे उसे प्राण कहते हैं। इसके दस भेद हैं।

1. नरक और देवों में प्राण पावे दस
2. पांच स्थावर में प्राण पावे चार (स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छ्वास बलप्राण और आयुष्य बलप्राण) असन्नी मनुष्य में प्राण पावे कुछ कम (अपूर्ण) आठ - पांच इन्द्रिय के बलप्राण, काय, श्वासोच्छ्वास बलप्राण और आयुष्य बलप्राण।
3. बेइन्द्रिय में प्राण पावे छह - रसनेन्द्रिय बलप्राण, स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण, वचन बलप्राण, काय बलप्राण, श्वासोच्छ्वास बलप्राण और आयुष्य बलप्राण।
   तेइन्द्रिय में प्राण पावे सात-घ्राणेन्द्रिय बलप्राण और छह पूर्वोक्त
   चौरिन्द्रिय में प्राण पावे आठ - चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण और सात पूर्वोक्त
   असन्नी तिर्यचपंचेन्द्रिय में प्राण पावे नव - श्रोतेन्द्रिय बल प्राण और आठ पूर्वोक्त।
4. सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय में प्राण पावे दसों ही-मनोबल प्राण और नव पूर्वोक्त।
5. गर्भज मनुष्य युगलिक मनुष्य में प्राण पावे दस।
6. सिध्द भगवान में द्रव्य प्राण नही भाव प्राण चार है (ज्ञान, दर्शन, सुख और आत्मशक्ति)

25 योग द्वार

मन, वचन, काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को **योग** कहते है। योग तीन - 1, मनयोग 2 वचन योग 3 काययोग। इनमें से

1. पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे योग पावे एक - काययोग।
2. तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय में योग पावे दो वचनयोग और काययोग।
3. शेष सभी जीवो मे योग पावे तीनो। मनुष्य अयोगी भी होते है।
4. सिध्द भगवान मे योग नही, अयोगी है।

लघु दण्डक समाप्त

२. गतागत का थोकड़ा

(प्रज्ञापना सूत्र के छट्टे पद के आधार से)

जीवो की आगति और गति का वर्णन किया जाता है।

आगति - जीव जिस गति से आकर उत्पन्न होता है।

गति - जीव मरने के बाद जिस गति मे जाकर उत्पन्न होता है।

अपेक्षा भेद से जीव के एक,दो, तीन, चार आदि अनेक भेद होते है। किसीअपेक्षा से 563 भेद भी हैं। ये इस प्रकार हैं - नारकियों के 14, तिर्यच के 48,मनुष्यों के 303 और देवों के 198। (विशेष खुल्लासा जीव धड़ा मे देखें)।

गति आगति के विशेष बिन्दु :

1. नारकी, देवता, युगलिक अपर्याप्त अवस्था में नहीं मरते।
2. नारकी जीव मरकर नरक, देव, युगलिक, एके.,बे ,ते.,चऊ , तथा असन्नी पं. में उत्पन्न नहीं होते।
3. देवता मरकर देव, नरक, युगलिक, बे.ते. चऊ तथा तेऊ, वाऊ मे नहीं जाते।
4 एके बे, ते, चऊ, जीव नारकी देवता में उत्पन्न नहीं होते। नारकी, देवता में जाने वाले पंचेन्द्रिय ही होते है।
5. नरक, देव, युगलिक में मात्र दो गति के जीव आते हैं। मनुष्य एवं तिर्यच पंचेन्द्रिय।
6. असन्नी मनुष्य अपर्याप्त अवस्था में ही काल करता है। इसलिए नारकी देवता में नही जाता।
7. असज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय पहली नारकी तक तथा देवता मे 25 भवनपति 26 वाणव्यन्तर तक ही जाते है।
8. सन्नी भुजपरिसर्प (चूहा, छिपकली, नेवला आदि) 1,2, नरक तक ही जाते है।
9. सन्नी खेचर तिर्यच (चिड़िया, कबूतर, कौवा आदि) 1,2,3 नरक तक ही जाते है।
10 सन्नी स्थलचर (शेर, गाय, कुत्ता) आदि जो अपने बच्चो को स्तनपान कराते है वे, 1,2,3,4 नरक तक ही जाते।
11. सन्नी उरपरिसर्प (सभी सर्प की जाति) 1,2,3,4,5 नरक तक ही जाते।

12 जलचर स्त्री 6 ठी नरक तक तथा जलचर पुरुष, नपु सातवी नरक तक जाते ।

13 सन्नी ति पचे, 8 वे देवलोक तक जा सकता है, तथा 8 वे देवलोक तक के देवता सन्नी ति पचे मे आ सकते है । आगे नही ।

14 तेऊ, वायु एवं 7 वी नरक के जीवो की नियमा तिर्यच गति

15 वासुदेव, चक्रवर्ती, श्री देवी की नियमा नरक गति ।

16 9 वे देवलोक से सर्वाथसिध्द देवो की नियमा मनुष्य गति ।

17 साधु, श्रावक एवं युगलिक की नियमा देवगति ।

18 तीर्थकर भगवान् पहले मुनि बन के निर्वाण प्राप्त करते है ।

19 केवली भगवान पहले मुनि बनते भी है, नही भी लेकिन सामायिक चारित्र के परिणाम, सूक्ष्म सपराय तथा यथाख्यात चारित्र अवश्य प्राप्त करते है ।

20 चक्रवर्ती की गति यह सदेश देती है कि पद लिप्सा अधोगति का कारण है ।

21 1 ली नारकी से आया जीव चक्रवर्ती बन सकता है ।

22 1, 2 री,,,, बलदेव, बासुदेव ।

23 1,2,3, री ,,,, तीर्थकर ।

24 1,2,3,4, थी ,,,,केवली ।

25 1,2,3,4,5 वी ,,,, साधु ।

26 1,2,3,4,5,6 ठी ,,,, श्रावक ।

27 1,2,3,4,5,6,7 वी ,,,, सम्यग् दृष्टि बन सकता है ।

1. पहली नारकी मे आगति 25 की है । यथा - 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सज्ञी तिर्यच और 5 असज्ञी तिर्यच पचेन्द्रिय, इन सब के पर्याप्त । इन 25 स्थानो से आकर जीव, पहली नरक मे उत्पन्न होते है । गति 40 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 सज्ञी तिर्यच । इन 20 के पर्याप्त और 20 अपर्याप्त ।

2. दूसरी नारकी मे आगति 20 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 सज्ञी तिर्यच के पर्याप्त । गति 40 की पहली नारकी के समान ।

3. तीसरी नारकी मे आगति 19 की – दूसरी नारकी के 20 भेदो मे से भुजपरिसर्प को छोडकर । गति 40 की पहली नारकी के समान ।

4. चौथी नारकी मे आगति 18 की तीसरी नारकी के 19 भेदो मे खेचर को छोडकर । गति 40 की - पहली नारकी के समान ।

5. पांचवी नारकी मे आगति 17 की - चौथी नारकी के 18

से स्थलचर को छोडकर। गति 40 की।

6. छठी नारकी में आगति 16 की - पांचवी नारकी के 17 भेदो मे से उरपरिसर्प को छोडकर। गति 40 की।

7. सातवीं नारकी में आगति 16 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 1 मत्स्य जलचर के पर्याप्त गति 10 की - 5 संज्ञी तिर्यच के पर्याप्त और 5 अपर्याप्त।

8. भवनपति वाणव्यन्तरदेव में आगति 111 की - 101 संज्ञी मनुष्य, 5 संज्ञी तिर्यच और 5 असंज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त। गति 46 की - 15 कर्मभूमिज, 5 संज्ञीतिर्यच, 1 बादर पृथ्वीकाय, 1 बादर अप्काय और 1 बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय। इन 23 के पर्याप्त और अपर्याप्त कुल 46।

9. ज्योतिषी और पहले देवलोक में आगति 50 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 30 अकर्मभूमिज और 5 संज्ञी तिर्यच के पर्याप्त। गति 46 की - भवनपति के सामान।

10. दूसरे देवलोक में आगति 40 की - 30 अकर्मभूमिज मे से 5 हैमवत और 5 हैरण्यवत के 10 भेद छोडकर 20 तथा 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 संज्ञी तिर्यच। गति 46 की भवनपति के सामान।

11. पहले किल्विषी मे आगति 30 की – 15 कर्म भूमिज मनुष्य, 5 संज्ञी तिर्यच, 5 देवकुरु और 5 उत्तरकुरु। गति 46 की भवनपति के समान।

12. तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक छः, नौ लोकातिक और दूसरे व तीसरे किल्विषी, इन सतरह प्रकार के देवो मे आगति 20 की - 15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 संज्ञी तिर्यच पंचे. के पर्याप्त। गति 40 की - 15 कर्मभूमि के मनुष्य और 5 संज्ञी तिर्यच के पर्याप्त।

13. नौवें से बारहवें देवलोक, नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान, इन अट्ठारह जाति के देवों में आगति 15 की - 15 कर्मभूमि के पर्याप्त मनुष्य की। गति 30 की - 15 कर्मभूमि के पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य।

14. पृथ्वी, जल और वनस्पति मे आगति 243 की - 101 सम्मूर्च्छिम (अपर्याप्त) मनुष्य, 30 (पंद्रह कर्मभूमि के पर्याप्त - अपर्याप्त) मनुष्य, 48 तिर्यच, 64 देव (25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर, 10 ज्योतिषी, पहला व दूसरा देवलोक के और पहला किल्विषी के पर्याप्त) गति 179 की - 101 सम्मूर्च्छिम (अपर्याप्त) मनुष्य, 15 कर्मभूमि के पर्याप्त और 15 अपर्याप्त तथा 48 तिर्यच।

15. तेजस्काय और वायुकाय में आगति – 179 की - ऊपर लिखे

अनुसार गति 48 तिर्यचो की ।

16. तीन विकलेन्द्रिय मे आगति – 179 की और गति 179 की पूर्ववत् ।

17. असज्ञी तिर्यच पचेन्द्रिय में आगति – 179 भेदो का पूर्ववत । गति 395 की - 56 अन्तरद्वीप के मनुष्य, 25 भवनपति के और 26 व्यन्तर के (यों कुल 51 जाति के देव) और पहली नारकी, इन 108 के पर्याप्त, अपर्याप्त 216 और 179 पूर्व कहे हुए । इस प्रकार 395 ।

18. पांच संज्ञी तिर्यच में आगति 267 की - 81 प्रकार के देव (ऊपर के चार देवलोक, नौग्रैवेयक, पाच अनुत्तर विमान - इन 18 को छोडकर) 7 नारकी के पर्याप्त और पहले कहे हुए 179 भेद, ये सब मिलाकर 267 भेद हुए । इन पाचो की गति भिन्न-भिन्न इस प्रकार है -

जलचर की गति – 527 की - 563 भेदो मे से नौवे देवलोक से सर्वार्थसिध्द तक के 18 जाति के देव के पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 36 कम करने से शेष बचे हुए 527 ।

उरपरिसर्प की गति – 523 की 527 भेदो मे से छठी और सातवी नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 4 छोडकर ।

स्थलचर की गति – 521 की - 523 मे से पाचवी नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 2 छोडकर ।

खेचर की गति – 519 भेद की - 521 मे से चौथी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 2 छोडकर ।

भुजपरिसर्प की गति – 517 भेद की - 519 मे से तीसरी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त - ये 2 छोडकर ।

19. असज्ञी मनुष्य मे आगति – 171 भेद की । पहले कहे हुए 179 भेदो मे से तेउकाय और वायुकाय के 8 भेद कम करके शेष बचे हुए । गति 179 भेद की पूर्ववत् ।

20. पद्रह कर्मभूमि के सज्ञी मनुष्य में आगति 276 भेद की । 171 पूर्ववत् (असज्ञी मनुष्य की आगति के समान) 99 जाति के देव और 6 पहली से छठी नारकी के पर्याप्त । गति 563 की ।

21. तीस अकर्मभूमि के सज्ञी मनुष्य की आगति 20 की –15 कर्मभूमि और 5 सज्ञी तिर्यच इन 20 के पर्याप्त । उनकी गति भिन्न - भिन्न है ।

पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु - इन दस क्षेत्रो के मनुष्यो की गति 1 की 64 प्रकार के देव (25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर,10 ज्योतिषी, 2 द व पहला किल्विषी) के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

पांच हरिवास और पांच रम्यक्वास, इस दस क्षेत्रो के मनुष्यो की गति 126 की। 128 में से पहले किल्विषी के पर्याप्त और अपर्याप्त छोडकर।

पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत, इन दस क्षेत्रो के मनुष्यो की गति 124 की। 126 में से दूसरे देवलोक के पर्याप्त और अपर्याप्त छोडकर।

22. छप्पन अन्तरद्वीपों में आगति 25 की – 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 संज्ञी तिर्यच और 5 असंज्ञी तिर्यच के पर्याप्त। गति 102 की - 25 भवनपति और 26 वाणव्यन्तर। इन 51 के पर्याप्त और 51 अपर्याप्त।

23. तीर्थकर की आगति 38 की - 35 वैमानिको के (12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रेवेयक व 5 अनुत्तर विमान) और प्रथम 3 नारकी के पर्याप्त। गति - मोक्ष की।

24. चक्रवर्ती की आगति 82 की – 99 जाति के देवो मे से 15 परमाधामी और 3 किल्विषी, इन 18 को छोडकर शेष बचे हुए 81 देव और पहली नारकी के पर्याप्त। गति 14 की - 7 नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त (यदि दीक्षा लेवे तो साधु की गति के समान)।

25. वासुदेव की आगति 32 की – 12 देवलोक, 9 लोकान्तिक 9 ग्रैवैयक और पहली व दूसरी नारकी के पर्याप्त, इस प्रकार 32। गति 14 की - सात नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त।

26. बलदेव की आगति 83 की – चक्रवर्ती वत् 82 और दूसरी नारकी से। गति - पदवी अमर (देवलोक या मोक्ष) क्योकि बलदेव नियमा साधुपना स्वीकार करते है अतः साधु की गति के समान।

27. केवली की आगति 108 की – 99 जाति के देव मे से 15 परमाधामी और 3 किल्विषी निकालकर, शेष 81, 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 संज्ञी तिर्यच, 1 बादर पृथ्वी, 1 बादर पानी, 1 प्रत्येक बादर वनस्पति और पहले की चार नरक। इस प्रकार 108 के पर्याप्त। गति मोक्ष की।

28. साधु की आगति 275 की – 171 पूर्वोक्त (असज्ञी मनुष्य की आगति नं. 19 वत्) 99 प्रकार के देव और प्रथम 5 नारकी के पर्याप्त, इस प्रकार 275। गति 70 भेद की। 12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमान के देव। इन 35 के पर्याप्त और अपर्याप्त 70 और मोक्ष भी।

29. श्रावक की आगति 276 की – पूर्वोक्त 275 और छठी नरक। गति 42 की - 12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, इन 21 जाति के देवो के पर्याप्त और अपर्याप्त।

30. सम्यग्दृष्टि की आगति 363 की – 99 प्रकार के देव 101 सज्ञी मनुष्य के पर्याप्त, 101 सम्मूर्छिम मनुष्य, 15 कर्मभूमिज मनुष्य के

अपर्याप्त, 7 नारकी के पर्याप्त और तेजस्काय, वायुकाय के 8 भेदो को छोडकर शेष रहे हुए 40 भेद तिर्यच के, सभी मिलाकर 363 । गति 282 भेद की - 81 जाति के देवता, 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 30 अकर्मभूमिज मनुष्य, 5 सज्ञी तिर्यच और 6 नारकी, इन 137 के पर्याप्त और अपर्याप्त, इस प्रकार 274 तथा 3 विकलेन्द्रिय और 5 असज्ञी तिर्यच पचेन्द्रिय के अपर्याप्त ।

31. मिथ्यादृष्टि की आगति 371 की – 363 पूर्वोक्त तथा 8 तेउ वायु के । गति 553 की -563 मे से 5 अनुत्तर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त ये 10 छोडकर ।

32. मांडलिक राजा की आगति 276 की - श्रावक के भेदो के अनुसार । गति 535 की 563 मे से 9 ग्रैवेयक 5 अनुत्तर विमान इन 14 के पर्याप्त - अपर्याप्त के 28 भेदो को निकालकर शेष रहे हुए ।

33. स्त्रीवेद की आगति 371 की - मिथ्यादृष्टि के अनुसार । गति 561 की (सातवी नरक के पर्याप्त, अपर्याप्त छोडकर)

34. पुरुष वेद की आगति 371 की - स्त्रीवेद की आगति के अनुसार। गति 563 की ।

35. नपुंसक वेद की आगति 285 की - 179 पहले कहे हुए, 99 प्रकार के देव पर्याप्त, 7 नारकी के पर्याप्त - ये 285 तथा गति 563 की ।

36. गर्भज जीव की आगति 285 की नपुसक वेदवत् । गति 563।

37. नोगर्भज जीवों की आगति 329 की 179 की लडी, 64 जाति के देवता (दूसरे देवलोक तक) 86 युगलिक । गति - 395 की । असज्ञी ति पचेन्द्रियवत् ।

३. जीव धडा

जीव के 563 भेद हैं - यथा
नारकी के 14 भेद - सात नारकी के अपर्याप्त और पर्याप्त ।

तिर्यच के ४८ भेद

22 पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय - इन चार प्रकार के स्थावर जीवों के प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर तथा दोनों के अपर्याप्त और पर्याप्त - ऐसे चार भेदों से कुल 16 भेद हुए । वनस्पतिकाय के सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक - इन तीन के अपर्याप्त और पर्याप्त ये 6 भेद हुए । इस प्रकार पांच स्थावर के कुल 22 भेद हुए ।

6 बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय । इन तीन विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त ऐसे 6 भेद हुए ।

20 पंचेन्द्रिय तिर्यच पांच प्रकार के - 1. जलचर 2. स्थलचर 3. खेचर 4. उरपरिसर्प और 5. भुजपरिसर्प । ये पांचो ही असंज्ञी और पाचों ही संज्ञी । ये 10 भेद हुए और इनके अपर्याप्त, और पर्याप्त ऐसे 20. भेद हुए । कुल

22+6+20=48 भेद तिर्यच के हुए ।

मनुष्य के ३०३ भेद

कर्मभूमिज मनुष्य के 15 भेद हैं - यथा - 5 भरत, 5 ऐरावत और 5 महाविदेह में उत्पन्न मनुष्यों के 15 भेद । अकर्मभूमिज (भोगभूमिज) मनुष्य के 30 भेद हैं । यथा - 5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 हेमवत और 5 हेरण्यवत क्षेत्रों मे उत्पन्न मनुष्यों के 30 भेद है । 56 अन्तरद्वीपो में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के 56 भेद । ये सभी मिलाकर गर्भज मनुष्य के 101 भेद होते हैं । इनके अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से 202 भेद होते हैं, और इन 101 गर्भज मनुष्यों के 14 प्रकार की अशुचि में उत्पन्न सम्मूर्च्छिम मनुष्य के 101 भेद अपर्याप्त के (ये नियमा अपर्याप्त ही काल करते हैं इसलिए इनके पर्याप्त के भेद नही होते) । 14 उत्पत्ति के स्थान - 1 उच्चारेसु वा (मल) 2. पासवणेसु वा (मूत्र), 3 खेलेसु वा (कफ), 4. सिघाणेसु वा (श्लेष्म), 5. वतेसु वा (वमन), 6. पित्तेसु वा (पित्त), 7 पुइएसु वा (पीप), 8 सोणिएस वा (रक्त), 9 सुक्केसु वा (वीर्य से), 10. सुक्कपुग्गल परिसाडि एसु वा (सूखे हुए वीर्य आदि के पुद्‌गलो के पुन. गीले होने पर), 11 विगय जीव कलेवरेसु वा (मृत कलेवरो मे) 12 थी-पुरिस सजोएसु वा (स्त्री-पुरुष के

सयोग में), 13 नगर निधम - मणेसु वा (नगर की नालियो मे), 14 सव्वेसु चेव असुइठाणेसु वा (मनुष्य के सभी अशुचि स्थान मे) (प्रथम प्रज्ञापनापद) कुल 101+101+101=303 भेद मनुष्य के हुए ।

देव के १९८ भेद

10 भवनपति के 10 भेद - 1. असुरकुमार 2 नागकुमार 3 सुवर्णकुमार 4 विद्युतकुमार 5 अग्निकुमार 6 उदधिकुमार 7 द्वीपकुमार, 8 दिशाकुमार 9 पवनकुमार और 10 स्तनितकुमार ।

15 परमाधार्मिक देवो के 15 भेद है । यथा -1 अम्ब 2 अम्बरीष 3 श्याम, 4 शबल 5 रौद्र 6. महारौद्र 7 काल 8 महाकाल 9 असिपत्र 10 धनुष 11 कुम्भ 12 बालुका 13 वैतरणी 14 खरस्वर और 15 महाघोष ।

26 वाणव्यन्तर के 26 भेद है । जैसे - पिशाचादि 8 (1 पिशाच 2 भूत 3 यक्ष 4 राक्षस 5 किन्नर 6 किम्पुरुष 7 महोरग और 8 गन्धर्व), आणपण्णे आदि 8 (1 आणपन्ने 2 पाणपण्णे 3 इसिवाई 4 भूयवाई 5 कन्दे 6 महाकन्दे 7. कूह्यण्डे 8 पयगदेवे) जृम्भक 10 1 अन्न जृम्भक 2 पान जृम्भक 3 लयन जृम्भक 4 शयन जृम्भक 5 वस्त्र जृम्भक 6 फल जृम्भक 7 पुष्प जृम्भक 8 फलपुष्प जृम्भक 9 विद्या जृम्भक 10 अव्यक्त (अधिपति) जृम्भक ।

10 ज्योतिषी देवो के 5 भेद - 1 चन्द्र 2 सूर्य, 3 ग्रह 4 नक्षत्र और 5 तारा । इनके चर (भ्रमणशील) और अचर (स्थिर) के भेद से दस भेद हो जाते है ।

12 वैमानिक देवो के कल्पोपपन्न और कल्पातीत दो भेद है । इनमे कल्पोपपन्न के 12 भेद है । जैसे - 1 सौधर्म 2 ईशान 3 सनत्कुमार 4 माहेन्द्र 5 ब्रह्म लोक 6 लातक 7 महाशुक्र 8 सहस्त्रार 9 आणत 10 प्राणत 11 आरण और 12 अच्युत ।

कल्पातीत के दो भेद - ग्रैवेयक और अनुत्तर वैमानिक । ग्रैवेयक के 9 भेद - 1 भद्र 2 सुभद्र 3 सुजात 4 सुमनस 5 सुदर्शन 6 प्रियदर्शन 7 आमोह 8 सुप्रतिबध्द और 9 यशोधर ।

5 अनुत्तर वैमानिक के पाच भेद है । जैसे - 1 विजय 2 वैजयन्त 3 जयन्त 4 अपराजित और 5 सर्वार्थसिध्द ।

3 किल्विषिक देव - 1 त्रैपल्योपमिक 2 त्रैसागरिक और 3 त्रयोदश सागरिक ।

9 लोकान्तिक देवों के नौ भेद - 1 सारस्वत 2 आदित्य 3 वन्हि

वरुण 5. गर्ततोय 6. तुषित 7. अव्याबाध 8. आग्नेय 9 अरिष्ट।

इस प्रकार - 10 +15 +16 +10 +10 + 12 + 3 + 9 + 9 + 5 कुल 99 अप. 99 प =.198 देव के भेद हुए।

उपरोक्त 563 भेदों का सत्ताईस द्वारों से निरुपण किया जाता है -

द्वार - 1. जीव, 2 गति, 3 इन्द्रिय 4. काय, 5 योग, 6. वेद, 7 कषाय, 8 लेश्या, 9 सम्यक्त्व 10 ज्ञान 11 दर्शन 12 संयम, 13 उपयोग, 14 आहारक, 15 भाषक 16 परित्त, 17 पर्याप्त, 18 सूक्ष्म 19 सन्नी 20 भव्य, 21 चरम 22. संहनन, 23 संठाण, 24. क्षेत्र 25. शाश्वत 26. अमर और 27. गर्भज।

1. जीव द्वार

समुच्चय जीव के भेद 563 - नारकी के 14, तिर्यच के 48, मनुष्य के 303 और देव के 198 भेद

2. गति द्वार

1. नरक गति में 14। तिर्यच मे 48। तिर्यचिनी में 10 (पाच सन्नी तिर्यच के पर्याप्त व अपर्याप्त) **मनुष्य गति में 303 मनुष्यिनी में 202** (101 सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त व पर्याप्त 202) **देव में 198 देवी में 128** (10 भवनपति, 15 परमाधामी, 16 वाणव्यन्तर, 10 जृम्भक, 10 ज्योतिषी 1 पहला 1 दूसरा देवलोक के और 1 पहली किल्विषी कुल 64 के अपर्याप्त और पर्याप्त)। **सिध्द भगवान में** कोई भेद नहीं।

3. इन्द्रिय द्वार

सइन्द्रिय में 563 - सभी भेद। **एकेन्द्रिय में 22, बेइन्द्रिय मे 2,** तेइन्द्रिय **में 2, चौरिन्द्रिय में 2** और पंचेन्द्रिय में 535 (563 में से एकेन्द्रिय के 22 और विकलेन्द्रिय के 6 छोडकर) **अनिन्द्रिय में 15** (15 कर्मभूमि के मनुष्य के पर्याप्त - 13, 14 गुणस्थान वाले) **श्रोत्रेन्द्रिय** में 535 (पंचेन्द्रिय के) चक्षुरिन्द्रिय में 537 (चौरिन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढ़े) **घ्राणेन्द्रिय में 539** (तेइन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढ़े) **रसनेन्द्रिय के 541** (बेइन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढे) **स्पर्शनेन्द्रिय के 563।**

इन्द्रिय अलध्दिया में (अलध्दिया - अनुपलब्ध - अप्राप्त होना तथा प्राप्त हुई इन्द्रियो का उपयोग नही करना (13, 14 वें गुणस्थान की अपेक्षा)

श्रोत्रेन्द्रिय के अलध्दिये मे 43 - एकेन्द्रिय के 22, बेइन्द्रिय के 2, तेइन्द्रिय के 2, चौरिन्द्रिय के 2 और 15 कर्मभूमि के पर्याप्त मनुष्य (13, 14 गुणस्थान

चक्षुरिन्द्रिय के अलध्दिये मे 41– (43 मे से चौरिन्दिय के 2 कम ।)

घ्राणेन्द्रिय के अलध्दिये मे 39 - (41 मे से तेइन्द्रिय के 2 कम ।)

रसनेन्द्रिय के अलध्दिये मे 37 - (39 मे से बेइन्द्रिय के 2 कम ।)

स्पर्शनेन्द्रिय के अलध्दिये मे 15 – (15 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त । 13 वे, 14 वे गुणस्थानी) ।

4. काय द्वार

सकाया मे 563 सभी । पृथ्वीकाय के 4, अप्काय के 4, तेउकाय के 4, वायुकाय के 4, वनस्पतिकाय के 6 और त्रसकाय के 541 (एकेन्द्रिय के 22 कम) । **अकाया** (सिध्द) में कोई भेद नही ।

5. योग द्वार

सयोगी मे 563 - सभी ।

मनयोगी में 212 - नारकी के 7, तिर्यच पचेन्द्रिय के 5, सन्नी मनुष्य के 101 और देव के 99 । ये सभी पर्याप्त ।

वचनयोगी मे 220 – मनयोगी के 212 एव 5 असन्नी तिर्यच और तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्त ।

काययोगी में 563 – सभी ।

4 मन, 3 वचन योग में 212 – मनयोगी के समान ।

व्यवहार भाषा मे 220 – वचन योगी के अनुसार ।

औदारिक योग में 351 – तिर्यच के 48 और मनुष्य के 303 ।

औदारिक मिश्र काय योग में 247 – तिर्यच के 30-24 अपर्याप्त, और 5 पर्याप्त सन्नी तिर्यच तथा एक बादर पर्याप्त वायुकाय । मनुष्य के 217 - असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त 101, सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त 101 और कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त 15 ।

वैक्रिय काय योग में 233 - 14 नारकी के सभी, 5 सन्नी तिर्यच के पर्याप्त, 1 बादर वायुकाय के पर्याप्त, 15 कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्त और 198 देव के सभी ।

वैक्रिय मिश्र काय योग में 219 – वैक्रिय योग के 233 मे से 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमान के पर्याप्त के 14 भेद कम ।

आहारक और आहारक मिश्र काय योग मे 15 – कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त (विशिष्ट संयमी सत की अपेक्षा) ।

कार्मण काययोग मे 347 – नारकी के 7, तिर्यच के 24, देव के 99, असन्नी मनुष्य के 101, सन्नी मनुष्य के 101 ये सभी अपर्याप्त और 15 कर्मभूमिज के पर्याप्त (13 वे गु की अपेक्षा) ।

अयोगी में 15 – कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्त (14 वे गुणस्थानी)।

6. वेद द्वार

सवेदी में 563 - सभी।

पुरुष वेद में 410 - पाच सन्नी तिर्यच के पर्याप्त और पर्याप्त 10, सन्नी मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त 202 और देव के 198।

स्त्रीवेद में 340 - तीसरे देवलोक से बारहवे देवलोक तक 10, दूसरे 1 व तीसरे 1 किल्विषी, नव लोकांतिक 9, नव ग्रैवेयक 9 और पाच अनुत्तर विमान के 5। इन 35 के पर्याप्त और अपर्याप्त। ये 70 पुरुषवेदी को छोडकर शेष (10 तिर्यच के, 202 मनुष्य के 128 देवता के)।

नपुंसक वेद में 193 - नारकी 14, तिर्यच 48, असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त 101, कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त 30।

एकवेद मे 223 - नारकी 14, तिर्यच 38 (48 मे से पांच सन्नी तिर्यच के पर्याप्त व अपर्याप्त 10 छोडकर) 101 असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त, ये सब नपुंसक वेदी है। देव के 70 (तीसरे देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिध्द तक 35 के पर्याप्त व अपर्याप्त। ये सब पुरुषवेदी है)।

दो वेद में 300 - अकर्मभूमि के 30, अन्तरद्वीप के 56, इन 86 के पर्याप्त व अपर्याप्त 172 और देवलोक के 128 (198 मे से एकान्त पुरुषवेद के 70 कम)।

तीन वेद मे 40 -10 तिर्यच - पांच सन्नी तिर्यच के पर्याप्त और अपर्याप्त। 30 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त।

अवेदी में 15 - कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त।

एकांत पुरुषवेद में 70 – तीसरे देवलोक से आगे के देव।

एकांत नपुसकवेद में 153 - नारकी के 14, तिर्यच के 38 (48 में से पाच सन्नी तिर्यच के पर्याप्त व अपर्याप्त 10 कम), असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त 101।

7. कषाय द्वार

सकषायी क्रोध, मान, माया, लोभकषायी में 563 भेद – सभी।

अकषायी में 15– कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त (गुणस्थान 11 से 14 तक)

8. लेश्या द्वार

सलेशी मे – 563।

कृष्ण, नील और कापोत, इन तीन लेश्या में, प्रत्येक मे 459।

नारकी के 6 – पहली, दूसरी और तीसरी नरक के पर्याप्त - अपर्याप्त मे कापोत लेश्या 6। तीसरी, चौथी और पांचवी नरक के

पर्याप्त-अपर्याप्त मे नील लेश्या 6 । पाचवी, छठी और सातवीं नरक के पर्याप्त-अपर्याप्त मे कृष्ण लेश्या 6 ।

48 तिर्यच के । 303 मनुष्य के ।

102 देव के - भवनपति के 10, परमाधामी के 15, व्यन्तर के 16, जृम्भक के 10 । इन 51 के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

तेजोलेश्या मे 343 –

13 तिर्यच के - बादर - पृथ्वीकाय, अप्काय और प्रत्येक वनस्पतिकाय के अपर्याप्त 3 । सन्नी -तिर्यच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त के 10 ।

202 मनुष्य - सन्नी के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

128 देव के - भवनपति के 10, परमाधामी के 15, व्यन्तर के 16, जृम्भक के 10, ज्योतिषी के 10, वैमानिक के पहले देवलोक का 1, दूसरे देवलोक का 1 और प्रथम किल्विषी का 1 । इन 64 के पर्याप्त-अपर्याप्त ।

पद्म लेश्या मे 66 –

10 तिर्यच के - सन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त - अपर्याप्त ।

30 मनुष्य के - 15 कर्मभूमि के पर्याप्त - अपर्याप्त ।

26 देव के - तीसरे, चौथे और पांचवॉ देवलोक, दूसरी किल्विषी, -9 लोकातिक देव इन 13 के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

शुक्ल लेश्या में – 84 -

10 सन्नी तिर्यच के अप. प । 30 कर्मभूमि मनुष्य के अप प ।

44 देव के - वैमानिक के छठे से 12 वे तक देवलोक 7, तीसरी किल्विषी, ग्रैवेयक 9 और अनुत्तर 5 । इन 22 के प , अप. ।

एकान्त कृष्णलेशी में 4 – छठी और सातवी नरक के प अप ।

एकान्त नील लेश्या में 2 – चौथी नरक के पर्याप्त-अपर्याप्त ।

एकान्त कापोत लेश्या में 4 – पहली दूसरी नरक के प अप ।

एकान्त तेजो लेश्या में 26 – ज्योतिषी देव के 10, पहला, दूसरा, देवलोक, प्रथम किल्विषी । इन 13 के पर्याप्त - अपर्याप्त ।

एकान्त पद्म लेश्या में 26 – वैमानिक के 3,4,5 देवलोक, दूसरी किल्विषी और लोकातिक 9 । इन 13 के पर्याप्त - अपर्याप्त ।

एकान्त शुक्ल लेश्या में 44 – छठे देवलोक से 12 वे तक 7, तीसरी किल्विषी, ग्रैवेयक 9 और अनुत्तर 5 । इन 22 के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

एक लेश्या मे 106 - 10 नारक के, तीसरी और पाचवी नारकी के प अप छोडकर । 96 देव के - ज्योतिषी के 10, वैमानिक के 38 इनके पर्याप्त-अपर्याप्त ।

दो लेश्या में 4 । तीसरी और पाचवी नरक के पर्याप्त,

तीन लेश्या में 136 – 35 तिर्यच के - एकेन्द्रिय के 19 (बादर पृथ्वीकाय, अप् और प्रत्येक वनस्पति के अपर्याप्त छोडकर) विकलेन्द्रिय के 6 और असन्नी पंचेन्द्रिय के 10 । समुच्छिम मनुष्य के 101 ।

चार लेश्या में 277 ।

3 तिर्यच के - बाद पृथ्वी, अप्. और प्रत्येक वनस्पतिकाय के अपर्याप्त ।

172 मनुष्य के - 86 युगलिक के.प अ । 102 देवो के - भवनपति, परभाधर्मी, व्यन्तर और जृम्भक के इन 51 के प. अप. ।

5 लेश्या में – 0 शून्य, कोई नही ।

छह लेश्या में 40 – सन्नी तिर्यच के 10, कर्मभूमि मनुष्य के 30 ।

अलेशी में 15 – कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्त (14 वे गु)

9. सम्यक्त्व द्वार

सम्यग्दृष्टि में 283 – 13 नारकी के (सातवी का अप. छोडकर) ।

18 तिर्यच के - 10 सन्नी तिर्यच के प अप. । 5 असन्नी तिर्यच और 3 विकलेन्द्रिय के अप. ।

90 मनुष्य के - 15 कर्मभूमि, 30 अकर्मभूमि के प. अप. ।

162 देव के – (15 परमाधर्मी, 3 किल्विषी के प अप. छोड़कर) ।

मिथ्यादृष्टि में 553 - 563 में से अनुत्तर विमान के प अ. छोड़के ।

मिश्रदृष्टि में 103 – नारकी के 7, तिर्यच के 5, कर्मभूमि मनुष्य के 15, देव के 76 (परमाधर्मी के 15, किल्विषी के 3 और अनुत्तर विमान के 5 ये 23 पर्याप्त कम करके) । सभी पर्याप्त ही है ।

एकान्त सम्यग्दृष्टि में 10 – पांच अनुत्तर विमान के प. और अप. ।

एकान्त मिथ्यादृष्टि में 280 – सातवी नारकी के अप. 1, तिर्यच के 30 (एकेन्द्रिय के 22, विकलेन्द्रिय के 3 और असन्नी पंचेन्द्रिय के 5 प.), मनुष्य के 213 (असन्नी मनुष्य के अप. 101, अंतरद्वीप प और अप. 112) देव के 36 (परमाधर्मी 15 और किल्विषी 3 के प अप) ।

एक दृष्टि में 290 – एकान्त सम्यग्दृष्टि के 10 और एकान्त मिथ्यादृष्टि के 280 । कुल 290 ।

दो दृष्टि में 170 – नारकी के 6 पहली से छठी तक के अप । तिर्यच के 13 - पांच सन्नी तिर्यच, पांच असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय और तीन विकलेन्द्रिय, इनके अप । मनुष्य के 75 - कर्मभूमि के अप. 15, अकर्मभूमि के प अप 60 । देव के 76 (99 में से 15 परमाधर्मी 3 किल्विषी तथा 5 अनुत्तर विमान । ये 23 कम करके शेष सभी के अप. ।

तीन दृष्टि में 103 - मिश्र दृष्टि के समान ।

सास्वादन समकित मे 207 – नारकी के 7 (सात नारकी के पर्याप्ति) तिर्यच के 18 (5 असन्नी तिर्यच आदि) 3 विकलेन्द्रिय के अप और सन्नी तिर्यच के प अप 10) । मनुष्य मे पद्रह कर्मभूमि के प अपर्याप्त 30। देव के 152-15 परमाधामी, 3 किल्विषी 5अनुत्तर विमान के प्र अप छोडकर शेष सभी के प अप

टिप्पणी – कर्मग्रन्थ भाग – 2 कर्म प्रकृति के उपशमनाकरण के गाथा 23 की टीका के अनुसार सास्वादन समकित मे नरकानु पूर्वी का उदयन होने से सास्वादन समकित मे नारकी के अपर्याप्ता के भेद नही लिए गए है । साथ ही 9 ग्रेवेयक के अपर्याप्ता मे उपशम सम्यक्त्वी का सास्वादन सम्यकत्व मे जाना सभव होने से तथा 9 ग्रेवेयक मे सास्वादन सम्यकत्व के अभाव का प्रमाणिक निषेध प्राप्त न होने से कुल 76 देवो (15 परमाधामी 3 क्लिविषिक 5 अनुत्तर वि. छोडकर) के पर्याप्त अपर्याप्त को भी ग्रहण करने से सास्वादन समकित मे कुल 7 + 18 + 30 + 152 = 207 भेद मानना ठिक लगता हैं ।

वेदक समकित में 103 – मिश्र दृष्टि के समान ।

उपसम समकित में 138 – 7 नारकी के प + 5 सन्नि के प्र +15 कर्म भूमि के प्रर्याप्त + देव के 111 (10 भवनपति + 26 व्याणवन्तर + 10 ज्योतिषी+ 12 देवलोक + 9 लोकान्तिक + 9 ग्रेवेयक इन सभी के पर्याप्ता तथा 12 देवलोक 9 लोकान्तिक + 9 ग्रेवेयक + 5 अनुत्तर विमान इन सभी के अपर्याप्त)

टिप्पणी – कर्म प्रकृति की चूर्णी कर्म प्रकृति के उपशमनाकरण की गाथा 62,63 तथा लब्धि सार ग्रन्थ की गाथा 359 के अनुसार उपशम श्रेणि से पतित होने वाले प्रमतादि गुणस्थान वृत्ति जीव का काल करके देव होना बताया है । ग्रन्थो मे वैमानिक देव मे ही जाने का उल्लेख मिलता है । अतः उपशम समकित मे कुल 138 भेद मानना उपयुक्त लगता है । वह इस प्रकार है – (7 नारकी के प. 5 सन्नी के ति. प. के पर्याप्ता + 15 कर्म भूमि मनुष्य के पर्याप्त + 35 वैमानिक देव के अपर्याप्त (3 किल्विषी देव को छोडकर) + 76 देव के पर्याप्त (15 परमाधामी + 3 किल्वीष + 5 अनुतर विमान मे 23 कम करने से) 138 ।

क्षयोपशमिक सम्यक्त्व मे 275 । 13 नारकी + 10 सनी तिर्यच के प अप + 90 मनुष्य के 15 कर्म भूमि 30 अकर्मभूमि के प अप. + 162 देव के (15 परमाधामी 3 किल्विषी के प अप को छोडकर)

क्षायिक सम्यक्त्व में 168 । 6 नरक के (प्रथम 3 नरक के प्र अप्र) 2 तिर्यच के (सन्नी थलचर युगल के प्र अप्र) 90 मनुष्य के (15 कर्मभूमि 30 अकर्मभूमि के प्र अप्र) 70 देव के (12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रेवेयक, 5 अनुत्तर विमान के प्र अप)

टिप्पणी – जीव समास गाथा 80 तथा उसकी वृत्ति कर्म-प्रकृति चूर्णि, कर्म प्रकृति के उपशम करण की 32 वी गाथा का टिका, पच सग्रह की गाथा।

तइय चउत्थ तम्मि व भवम्मि सिज्झकान्ति दसणे खीणे की मुल टिका तथा प्रवचन सारोहार की निम्नोक्त गाथाओ के आधार पर क्षायिक सम्यक्त्व मे 168 भेद मानना सगत लगता है ।

10. ज्ञान द्वार

समुच्चयज्ञानी और मतिश्रुतज्ञानी में 283 । सम्यग्दृष्टि के समान ।

विभंग ज्ञान 222 +5 +15 +188

अवधिज्ञान में 210 – 13 नारक के - सातवी के अप. छोडकर ।

5 सन्नी ति. पं. के प. । 30 कर्म भुमिज मनुष्य के ।

162 देव के - 15 परमाधर्मी, 3 किल्विषी के प. अप छोडकर ।

मन:पर्याय और केवलज्ञानी में – 15 कर्मभूमिज मनुष्यो के प. ।

मतिश्रुत अज्ञान और समुच्चय अज्ञान मे - 553 (पांच अनुत्तर विमानवासी देवों ।) **नो संयत नो असंयत नो संयतासंयत (सिध्द) में नही ।**

11 दर्शन द्वार + 12 संयम द्वार

13. उपयोग द्वार

साकार और अनाकार उपयोग मे 563 - सभी ।

14. आहारक द्वार

आहारक में 563 – सभी ।

अनाहारक में 347 – 7 नारक, 24 तिर्यच, 202 मनुष्य और 99 देव - ये सब अप., कर्मभूमिज मनुष्य के प 15 (13वें 14 वें गु के) ।

15. भाषक द्वार

भाषक में 220 भेद – 7 नारक के पर्याप्त ।

13 तिर्यच के - 3 विकलेन्द्रिय, 5 असन्नी, 5 सन्नी पंचे, के प. ।

101 मनुष्य के पर्याप्त । 99 देव के पर्याप्त ।

अभाषक में 358 – 7 नारक के अपर्याप्त ।

35 तिर्यच के - एकेन्द्रिय के 22 प अप । विकलेन्द्रिय 3 अप. और सन्नी-असन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त 10 ।

217 मनुष्य के - 101 सन्नी और 101 असन्नी के अप. तथा 15 कर्मभूमि के प (अयोगी) । 99 देवता के अप ।

16. परित्त 20. भव्य और 21. चरम द्वार

परित्त, भव्य, चरम में प्रत्येक में 563 ।

अपरित्त, अभव्य और अचरम मे प्रत्येक मे 553 (पांच अनुत्तर विमान के प अप छोडकर) ।

17. पर्याप्त द्वार

पर्याप्त मे 231 – नारकी 7, तिर्यच 24 मनुष्य 101 और देव 99।

अपर्याप्त मे 332 – नारकी 7, तिर्यच 24, मनुष्य 202 और देव के 99।

18. सूक्ष्म द्वार

सूक्ष्म मे 10 – पाच सूक्ष्म स्थावर के प अप ।

बादर में 553 – सूक्ष्म के 10 कम करके।

19. सन्नी द्वार

सन्नी मे 424 – नारक के 14, तिर्यच पचेन्द्रिय के 10, मनुष्य के 202 (समुर्च्छिम छोडकर) और देव के 198।

असन्नी मे 191 – 1 नरक का - पहली का अप ।

38 तिर्यच के - सन्नी के 10 छोडकर। 101 असन्नी मनुष्य।

51 देव के - 10 भवनपति के, 15 परमाधामी के, 16 वाणव्यन्तर के 10 जृम्भक के। इन सब के अपर्याप्ता।

22. सहनन द्वार

वज्र – ऋषभ – नाराच सहनन में 212 – सन्नी तिर्यच के 10 और मनुष्य के 202 (सन्नी मनुष्य के प अप)।

मध्य के चार संहनन में 40 – सन्नी तिर्यच के 10, मनुष्य के 30 कर्मभूमिज मनुष्य के प अप मे।

सेवार्त सहनन में 179 – 48 तिर्यच के। मनुष्य के 131 - (असन्नी मनुष्य 101 कर्मभूमि मनुष्य के प अप 30)

23. सस्थान द्वार

समचतुरस्त्र संस्थान मे 410। 10 सन्नी तिर्यच के।

202 सन्नी मनुष्य के 198 देवता के।

मध्य के चार सस्थान मे 40। मध्य सहनन के समान।

हुंडक संस्थान मे 193 – 14 नारक के, 48 तिर्यच के, 131 मनुष्य के (असन्नी मनुष्य के 101, कर्मभूमिज मनुष्य के प अप. 30)।

24. क्षेत्र द्वार

एक भरत और ऐरावत क्षेत्र मे 51। पाचो के 63।

(48 तिर्यच के और 3 मनुष्य के - सन्नी मनुष्यो का अप , प और असन्नी मनुष्य का अप)। **एक महाविदेह मे 57** (48 ति , 9 मनुष्य का - 1 महाविदेह, 1 देवकुरु, 1 उत्तरकुरु इन 3 के अप प और समुर्च्छिम) **5 महाविदेह क्षेत्र मे 93** (48 तिर्यच के। 45 मनुष्य के - 5 महाविदेह, 5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु इन

15 के प , अप तथा असन्नी अप. ये 45) ।

जम्बूद्वीप में 75 । 48 तिर्यंच के (सभी)

27 मनुष्य के - 1 भरत, 1 ऐरावत, 1 महाविदेह,1 हेमवय, 1 हैरण्यवय, 1 हरिवास, 1 रम्यक्वास, 1 देवकुरु, 1 उत्तरकुरु, ये 9 प. 9 अप और इनके 9 असन्नी के अप. ।

लवण समुद्र में 216 - 48 तिर्यंच के, 168 मनुष्य के - छप्पन अंतरद्वीप के प. अप 112 और इनके असन्नी के अप. ।

धातकी खंड में 102 – 48 तिर्यंच के । 54 मनुष्य के - 2 भरत, 2 ऐरावत, 2 महाविदेह, 2 हेमवय, 2 हैरण्यवत, 2 हरिवास, 2 रम्यक्वास, 2 देवकुरु, 2 उत्तरकुरु । इन 18 के प., अप., समूर्च्छिम

कालोदधि समुद्र में 46 । 46 तिर्यंच के (48 में से बादर तेउकाय के प. और अप. 2 कम) ।

अर्ध पुष्करद्वीप में 102 । घातकीखंड के समान ।

अढ़ाई द्वीप में 351 - 48 तिर्यंच के, 303 मनुष्य के ।

अढ़ाई द्वीप के बाहर 108 –

46 तिर्यंच के (48 में से बादर तेउकाय के प. अप. कम)

62 देव के - 16 वाणव्यंतर के, 10 जृम्भक के, 5 ज्योतिषी अचर । इन 31 के प. अप. ।

नीचे लोक में 115 – 14 नारक । 48 तिर्यंच के ।

3 मनुष्य के - जम्बूद्विप महाविदेह क्षेत्र की (सलिलावती) विजय की अपेक्षा सन्नी प अप. और असन्नी के अप. ।

50 देव के - 10 भवनपति और 15 परमाधामी के प. अप ।

ऊंचे लोक में 122 – 46 तिर्यंच के (बादर तेउ. के प अप. कम) ।76 देव के - 12 वैमानिक, 3 किल्विषी, 9 लोकांतिक, 9 ग्रैवेयक और 5 अणुत्तर विमान, इनके प. अप. ।

तिर्च्छे लोक में 423 – 48 तिर्यंच के । 303 मनुष्य के । 72 देव के - 16 वाणव्यंतर, 10 जृम्भक और 10 ज्यो. के प. अ ।

सिध्दशिला में 12 - 5 सूक्ष्म (स्थावर) और बादर पृथ्वी के प. अप ।

सिध्दशिला के ऊपर तथा सातवीं नरक के नीचे, लोक के चरमान्त मे 12-5 सूक्ष्म स्थावर और बादर वायुकाय के प. अप ।

25. शाश्वत द्वार

शाश्वत में 250 - 7 नारक के पर्याप्त ।

101 मनुष्य सन्नी के पर्याप्त । 99 देव - सभी के पर्याप्त ।

43 तिर्यच के - (पांच सन्नी तिर्यच के अपर्याप्त कम)।

अशाश्वत मे 313 – 7 नारक के, 5 सन्नी तिर्यच के 202 मनुष्य के (101 सन्नी म 101 समूर्च्छिम) 99 देव के। ये सभी अपर्याप्त है।

26. अमर द्वार

अमर में 192 – 7 नारक के।

86 मनुष्य के – 30 अकर्मभूमि और 56 अन्तर्द्वीप के।

99 देव के। ये सभी अपर्याप्त अवस्था मे अमर होते है।

मरने वाले 371 – 7 नारक के पर्याप्त। 48 तिर्यच के।

217 मनुष्य के - 101 असन्नी के अपर्याप्त, 101 सन्नी के पर्याप्त और 15 कर्मभूमि के अपर्याप्त। 99 देव के पर्याप्त।

27. गर्भज द्वार

गर्भज मे 212 – 10 सन्नी ति पंचे के प अ।

202 मनुष्य के - सन्नी मनुष्य के प. अप।

नो गर्भज मे 351 – 14 नारक के।

38 तिर्यच के - 5 सन्नी के प.अप छोडकर।

101 मनुष्य - असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त। 198 देव के।

४. आठ कर्म का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 9 में कर्मों की प्रकृतिबध के 85 कारण बताए और श्री पन्नवणा सूत्र पद 23 उद्देश्क 1 में कर्म - भोग के 93 कारण बताए है, वे इस प्रकार है -

कर्मो के नाम - 1 ज्ञानावरणीय, 2 दर्शनावरणीय, 3 वेदनीय, 4 मोहनीय, 5 आयु, 6 नाम, 7, गोत्र और 8 अंतराय।

परिभाषा - 1 वस्तु के विशेष धर्म को जानना **ज्ञान** कह - लाता है और जिसके द्वारा ज्ञान ढंका जाय उसे **ज्ञानावरणीय** कर्म कहते है। जैसे बादलो से सूर्य ढ़ँक जाता है।

2 वस्तु के सामान्य धर्म को जानना **दर्शन** कहलाता है, उस दर्शन को आच्छादित करने वाले कर्म को **दर्शनावरणीय कर्म** कहते है। जैसे द्वारपाल के रोक देने पर राजा के दर्शन नही हो पाते।

3. जिस कर्म के द्वारा साता (सुख) और असाता (दु:ख) का वेदन (अनुभव) हो, उसे **वेदनीय कर्म** कहते है। जैसे शहद लिपटी तलवार के चाटने से सुख और जीभ कटने से दुःख होता है।

4. जिससे आत्मा मोहित (सत् और असत् के ज्ञान से शून्य) हो जाय, उसे **मोहनीय कर्म** कहते है। जैसे मदिरा पीने से मनुष्य बे - भान हो जाता है।

5 जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियों मे रुका रहे, उसे **आयु कर्म** कहते है। जैसे बेडी में बन्धने से अपराधी रुक जाता है, पराधीन हो जाता है।

6 जिस कर्म से आत्मा, गति आदि नाना पर्यायों का अनुभव करे (शरीर आदि बने या जो जीव अमूर्तत्व गुण को प्रगट न होने दे) उसे **नाम कर्म** कहते है। जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है।

7 जिस कर्म के उदय से जीव, उच्च-नीच कुलो मे उत्पन्न हो, उसे **गोत्र कर्म** कहते है। जैसे कुम्भकार छोटे - बडे बरतन बनाता है।

8 जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (शक्ति) मे विघ्न उत्पन्न हो, उसे **अन्तराय कर्म** कहते हैं। जैसे राजा की आज्ञा होने पर भी भडारी दान प्राप्ति में बाधक होता है।

9 कर्मो की 148 प्रकृतियां 1 ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9 ,वेदनीय की 2, मोहनीय की 28, आयुकर्म की 4, नामकर्म की 93 (103), गोत्रकर्म की 2, अन्तराय की 5 प्रकृतियां हैं।

बन्ध के प्रकार

बन्ध - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से आत्म - प्रदेशो मे हलचल होती है, तब जिस क्षेत्र मे आत्म - प्रदेश हैं, उसी क्षेत्र में रहे हुए अनन्तानन्त कर्म योग्य पुद्गल जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते है। जीव और कर्म का यह बन्ध ठीक वैसा ही होता है, जैसा दूध और पानी का, अग्नि और लोहपिण्ड का। बन्ध के चार भेद है - 1. प्रकृति बन्ध, 2 स्थितिबन्ध अनुभाग बन्ध और 4 प्रदेश बन्ध।

1. प्रकृति बन्ध – जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म - पुद्गलों मे भिन्न - भिन्न स्वभावो का होना।

2. स्थिति बन्ध – जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म - पुदगलो मे जीव के साथ लगे रहने की काल - मर्यादा।

3. अनुभाग बन्ध – इसे "अनुभाग बन्ध" तथा "रसबन्ध" अनुभव बन्ध व रस बन्ध भी कहते है। जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुदगलो मे फल देने की न्यूनाधिक शक्ति।

4. प्रदेश बन्ध – जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म स्कन्धो का सम्बन्ध होना।

चारो बन्धो का स्वरुप समझाने के लिए मोदक लड्डू का दृष्टात दिया जाता है - जैसे - सोठ, कालीमिर्च आदि से बनाया हुआ लड्डू वायु - नाशक होता है। पित्त-नाशक और कफ - नाशक पदार्थो से बनाया हुआ मोदक पित्त ओर कफ-नाशक होता है। इसी प्रकार आत्मा द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म - पुद्‌गलो मे से किन्ही मे ज्ञान गुण को आच्छादन करने की शक्ति होती है, किन्ही मे दर्शन - गुण किन्ही मे आत्मा के आनन्द - गुण और किन्ही मे अनन्त शक्ति घात करने की शक्ति होती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कर्म-पुद्‌गल मे भिन्न - भिन्न प्रकार की प्रकृतियो का बन्ध होना प्रकृति-बन्ध कहलाता है।

कोई मोदक एक सप्ताह, कोई एक पक्ष, कोई एक मास तक प्रभावशाली रहता है, इसके बाद ये विकृत हो जाते हैं। मोदक की काल मर्यादा के समान कर्मो की भी कालमर्यादा होती हैं। इसी को स्थिति वन्ध कहते हे। स्थिति पूर्ण होने पर कर्म आत्मा से पृथक हो जाते है।

कोई मोदक रस मे अधिक मधुर होते हे, तो कोई कम। कोई रस मे अधिक कटु होते है, तो कोई कम। इस प्रकार मोदकों मे रसो की न्यूनाधिकता होती है, उसी प्रकार कुछ कर्म - पुदगलो में अशुभ शुभ-रस अधिक और कुछ मे कम होता है। इसी प्रकार कर्मों मे तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, और मन्द

मन्दतर, मन्दतम, शुभाशुभ रसों का बन्ध होना - रस बन्ध है।

कोई मोदक परिमाण मे दो तोले का, कोई पॉच तोले का और कोई पावभर का होता है। इसी प्रकार भिन्न - भिन्न कर्म - पुद्‌गलो मे न्यूनाधिक प्रदेश होना।

जीव संख्यात, असंख्यात और अनन्त परमाणुओ से बने हुए कार्मण स्कन्ध हो ग्रहण नहीं करता, परन्तु अनन्तानन्त प्रदेश वाले स्कन्ध ग्रहण करता है।

प्रकृति - बन्ध और प्रदेश - बन्ध तो योग के निमित्त से होता है और स्थिति - बन्ध और अनुभाग - बन्ध कषाय के निमित्त से होता है।

कर्म - बन्ध के कारण और फल

१. ज्ञानावरणीय कर्म

(1) ज्ञानवरणीय कर्म छह प्रकार से बन्धता है। यथा -

1. ज्ञान और ज्ञानी की प्रत्यनीकता (विरोध) करने से।
2. ज्ञान एवं ज्ञानदाता का अपलाप करने (लोप करने - छुपाने) से।
3 ज्ञान प्राप्त करने में अन्तराय डालने (बाधक बनने) से।
4 ज्ञान व ज्ञानी से द्वेष करने से।
5. ज्ञान व ज्ञानी की आशातना करने से।
6 ज्ञानी से विसंवाद (वितण्डावाद) करने से।

इस कर्म का फल दस प्रकार का है।

1. श्रोतइन्द्रिय का आवरण।
2. चक्षु - इन्द्रिय का आवरण।
3 घ्राण - इन्द्रिय का आवरण।
4. रसना - इन्द्रिय का आवरण।
5 स्पर्शनेन्द्रिय का आवरण।
6. मतिज्ञान का आवरण।
7. श्रुतज्ञान का आवरण।
8. अवधिज्ञान का आवरण।
9 मन:पर्यव ज्ञान का आवरण।
10. केवल ज्ञान का आवरण।

२. दर्शनावरणीय कर्म

दर्शनावरणीय कर्म छह प्रकार से बधता है। यथा

1 दर्शन और दर्शनी की प्रत्यनीकता (विरोध) करने से।

2 दर्शन एवं दर्शनी का अपलाप करने (लोप करने - छुपाने) से।

3 दर्शन प्राप्त करने वाले को अन्तराय डालने (वाधक बनने) से।

4 दर्शन व दर्शनी से द्वेष करने से।

5 दर्शन व दर्शनी की आशातना करने से और।

6 दर्शनी से विसंवाद (वितण्डावाद) करने से।

यह कर्म नो प्रकार से भोगा जाता है -

(1) निद्रा (2) निद्रानिद्रा (3) प्रचला (4) प्रचला - प्रचला (5) सत्यानगृध्दि (6) चक्षुदर्शनावरण (7) अचक्षुदर्शनावरण (8) अवधिदर्शनावरण (9) केवलदर्शनावरण।

३. वेदनीय कर्म

वेदनीय कर्म - 22 प्रकार से बधता है एव 16 प्रकार से भोगा जाता है जिसके 2 भेद है - 1 सात्तवेदनीय कर्म, 2 असाता वेदनीय कर्म।

साता - वेदनीय कर्म दस प्रकार से बंधता है। यथा - 1 पाणाणुकपयाए-बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय जीवो पर अनुकम्पा (दया) करने से, 2 भूयाणुकपयाए - वनस्पतिकाय के जीवो की अनुकम्पा करने से 3 जीवाणुकपयाए - पचेन्द्रिय जीवो की अनुकम्पा करने से 4 सत्ताणुकपयाए पृथ्वीकायादि चार स्थावरकाय जीवो की अनुकपा करने से। (उपरोक्त प्राणो, भूतो, जीवो और सत्वो को) 5 दु.ख नही देने से 6 शोक उत्पन्न नही करने से) 7 नही झुराने, पीडित नही करने से, 8 आंसू नही गिराने से, 9 नही पीटने से और 10 परिताप (दु ख) उत्पन्न नही करने से।

इस कर्म का फल आठ प्रकार का है -

1 मनोज्ञ शब्द।	2 मनोज्ञ रुप।
3 मनोज्ञ गध।	4 मनोज्ञ रस।
5 मनोज्ञ स्पर्श।	6 इच्छित सुख।
7 अच्छे वचन और	8 शारीरिक सुख का प्राप्त होना।

(ख) असातावेदनीय कर्म बारह प्रकार से बंधता है, प्राण, भूत, जीव और सत्व को

1 दु:ख देने से, 2. शोक कराने से
3. झुराने से, 4 आँसू गिराने से,
5. मार-पिट करने से, 6 परिताप उत्पन्न करने से,
7. बहुत दु:ख देने से, 8. बहुत शोक कराने से,
9. बहुत झुराने से, 10. बहुत रुलाने से,
11. बहुत मार-पीट करने और 12. बहुत परिताप उत्पन्न करने से।

इसका फल आठ प्रकार का है –

1. अमनोज्ञ शब्द, 2 अमनोज्ञ रुप,
3. अमनोज्ञ गंध, 4. अमनोज्ञ रस,
5. अमनोज्ञ स्पर्श, 6. मन का दु:ख,
7. वचन का दु:ख और 8. काया का दु:ख।

४. मोहनीय कर्म

मोहनीय कर्म छह प्रकार से बंधता है - 1 तीव्र क्रोध करने से 2 तीव्र मान करने से, 3 तीव्र माया करने से 4 तीव्र लोभ करने से, 5 तीव्र राग करने से। और 6 तीव्र द्वेष करने से। यह कर्म अट्ठाइस प्रकार से भोगा जाता है।

इनके मुख्य दो भेद है। 1. दर्शन – मोहनीय और 2. चारित्र मोहनीय।

दर्शन मोहनीय के तीन भेद है –

1. सम्यकत्व मोहनीय 2. मिथ्यात्व मोहनीय 3.मिश्र मोहनीय

चारित्र मोहनीय के भी दो भेद है – 1. कषाय - मोहनीय और 2 नोकषाय - मोहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भेद है - अनन्तानुवन्धी 1 क्रोध 2 मान 3 माया और 4 लोभ। अप्रत्याख्यानी 5 क्रोध 6 मान 7 मया और 8 लोभ। प्रत्याख्यानावरण 9 क्रोध 10 मान 11 माया और 12 लोभ। संज्वलन का 13 क्रोध 14 मान 15 माया और 16 लोभ।

नोकषाय के नौ भेद है - 1 हास्य 2रति 3अरति 4 भय 5 शोक 6 जुगुप्सा 7 स्त्रीवेद 8 पुरुषवेद और 9 नपुंसक वेद -ये सब मिलाकर अठाईस भेद है।

कषायो को हास्य आदि उत्तेजित करते है और उनके सहचारी हैं, इसलिए , उन्हें नो (ईपत)कहते हैं।

अनन्तानुबन्धी चोक का लक्षण :

अनन्तानुबन्धी क्रोध – जैसे पत्थर पर दरार पड़ने से वह मिट नहीं सकती अथवा पर्वत के फटने से जो दरार होती हे, उसका मिलना कठिन है, उसी प्रकार जो क्रोध शांत न हो वह अनन्तानुवन्धी क्रोध है। **अनन्तानुवधी**

मान - जैसे पत्थर का खम्भा नमता नही, वैसे ही जो मान दूर न हो, उसे अनन्तानुबधी मान कहते है। **अनन्तानुवंधी माया** - जैसे बिलकुल टेढी-मेढी कठिन बास की जड का टेढापन मिट नही सकता, उसी प्रकार जो माया अमिट हो, उसे अनन्तानुबधी माया कहते है। **अनन्तानुबधी लोभ** - जैसे किरमची रग का छूटना दुष्कर है, उसी प्रकार जो लोभ छूट न सके, उसे अनन्तानुबधी लोभ कहते है।

इस चौकडी से जीव नरक गति मे जाना पड़ता है। स्थिति यावत् जीवन की है ये सम्यक्तव गुण का घात करती है।

2 अप्रत्याख्यानी चोक का लक्षण - क्रोध - पानी सूखने से जमीन में जो दरार पड जाती है, वह आगामी वर्ष मे वर्षा होने से मिटती है, उसी प्रकार जो क्रोध, विशेष परिश्रम से शांत हो, अप्रत्याख्यानी क्रोध कहते हैं। **मान** - हाथी - दात के खम्भे की तरह जो बड़ी मुश्किल से झुकता हो, वह अप्रत्याख्यानी मान है। **माया** - मेढे के सीग की तरह जो कठिनाई से सीधा हो उसे अप्रत्याख्यानावरण माया कहते है। **लोभ** - गाड़ी के ऑयल की तरह अति कष्ट से छुटे, वह अप्रत्याख्यानी लोभ है।इस चौकड़ी से तिर्यंच गति होती है। इसकी स्थिति बारह महिने की है। वह श्रावक व्रत का घात करती है।

3 प्रत्याख्यानावरण चोक का लक्षण - **क्रोध** - जैसे रेत मे खिंची हुई लकीर बहुत काल तक नही रहती, इसी प्रकार जो क्रोध बहुत काल तक न ठहरे, उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते है। **मान** - बेत के खम्बे के समान जिसको झुकाने के लिए अधिक श्रम न करना पड़े, उसे प्रत्याख्यानावरण मान कहते है। **माया** - चलता हुआ बैल पेशाब करता है, तो टेढी लकीरे हो जाती है उनका मिटना अति कष्ट साध्य नही होता। उसी प्रकार, जिस माया का मिटना कठीन न हो इसे प्रत्याखानावरण माया कहते है। **लोभ** - दीपक के काजल के समान जो लोभ थोडी कठिनाई से छूटे, उसे प्रत्याख्यानावरण लोभ कहते है। स्थिति 4 महिने की है। यह सकल सयम का घात करती है।

4.सज्वलन चोक का स्वरुप -क्रोध - पानी मे खीची हुई लकीर के समान शीघ्र ही शात हो जाता है, वह संज्वलन क्रोध है। **मान** - तिनके के खम्भे के समान शीघ्र ही नम जाय, उसे संज्वलन मान कहते है। **माया** - बास का छिलका जैसे सरलता से सीधा किया जा सकता है। उसी प्रकार माया बिना विशेष श्रम के दूर हो जाए उसे सज्वलन माया कहते है। **लोभ** - हल्दी के रग के समान सहज ही छूट जाय, उसे सज्वलन लोभ कहते है।

इस चौकडी से देवगति का बन्ध होता है। क्रोध की स्थिति दो माह की, मान की एक माह की, माया की पन्द्रह दिन की और लोभ की अन्तर्मुहूर्त की

है। यह कषाय यथाख्यात चारित्र का घात करती है। (यह कषाय का सामान्य लक्षण है)।

५. आयुकर्म

आयुकर्म सोलह प्रकार से बंधता है और चार प्रकार से भोगा जाता है -

नरकायु चार प्रकार से बंधता है -

1. महाआरम्भ करने से, 2. महापरिग्रह करने से,
3. मद्य-मांस का सेवन करने से और 4. पंचेन्द्रिय जीवों की घात करने से।

तिर्यच का आयुष्य चार प्रकार से बंधता से -

1. माया करने से, 2. गूढ़ माया करने से,
3. असत्य बोलने से, 4. न्यूनाधिक नापने - तोलने से।

मनुष्य का आयुष्य चार प्रकार से बंधता है -

1. प्रकृति की भद्रता से, 2. प्रकृति की विनीतता से,
3. दयाभाव रखने से और 4. मद-मत्सर भाव रहित होने से।

देवता का आयुष्य चार प्रकार से बंधता है -

1. सराग संयम पालने से, 2. देश संयम पालने से,
3. बाल तपस्या करने से और 4. अकाम निर्जरा करने से।

आयु कर्म चार प्रकार से भोगा जाता है -

1. नरकायु 2. तिर्यचायु 3. मनुष्यायु और 4. देवायु।

६. नाम कर्म

नामकर्म आठ प्रकार से बंधता है। यह दो प्रकार का है -

1. शुभ नामकर्म और 2. अशुभ नामकर्म

शुभ नामकर्म चार प्रकार से बंधता है -

1. काया की सरलता, 2 वचन की सरलता,
3. मन की सरलता और 4. विसंवाद रहितता से

यह चौदह प्रकार से भोगा जाता है -

1. इष्ट शब्द 2. इष्ट रुप 3 इष्ट गंध 4. इष्ट रस 5. इष्ट स्पर्श 6. इष्ट गति 7. इष्ट स्थिति 8. इष्ट लावण्य 9 इष्ट यश कीर्ति 10. इष्ट उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार - पराक्रम। इष्ट स्वर 12. कान्त स्वर 13 प्रिय स्वर और 14. मनोज्ञ स्वर

अशुभ नामकर्म चार प्रकार से बंधता है -

1. काया की वक्रता, (बांकापन) 2 वचन की वक्रता,

3 मन की वक्रता और 4 विसवाद योग युक्तता से।

यह चौदह प्रकार से भोगा जाता है -

1 अनिष्ट शब्द 2 अनिष्ट रुप 3 अनिष्ट गध 4 अनिष्ट रस 5 अनिष्ट स्पर्श 6 अनिष्ट गति 7 अनिष्ट स्थिति 8 अनिष्ट लावण्य 9 अनिष्ट यशः कीर्ति 10 अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम। 11 हीन स्वर 12 दीन स्वर 13 अप्रिय स्वर और 14 अमनोज्ञ स्वर से।

७. गोत्र कर्म

गोत्र कर्म सोलह प्रकार से बंधता है और सोलह प्रकार से भोगा जाता है। इसके दो भेद है -

1 उच्च गोत्र और 2 नीच गोत्र

उच्च गोत्र आठ प्रकार से बंधता है -

1 जाति का मद (घमण्ड) न करने से।

2 कुल का मद न करने से।

3 बल का मद न करने से।

4 रुप का मद न करने से।

5 तपस्या का मद न करने से।

6 श्रुत (ज्ञान) का मद न करने से।

7 लाभ का मद न करने से।

8 ऐश्वर्य का मद न करने से।

यह उच्च गोत्र आठ प्रकार से भोगा जाता है, अर्थात् इनका मद न करने से जाति, कुल, बल, रुप, तप, श्रुत, लाभ और ऐश्वर्य उच्च (श्रेष्ठ) गोत्र पाता है।

नीच गोत्र कर्म आठ प्रकार से बधता है और आठ प्रकार से भोगा जाता है - पूर्वोक्त जाति-कुल-बल-रुप-तप-श्रुत लाभ और ऐश्वर्य का घमण्ड करने से बधता है और इनका घमण्ड करने से नीच गोत्र की प्राप्ति होती है।

८. अन्तराय कर्म

अन्तराय कर्म पाँच प्रकार से बधता है और पॉच प्रकार से भोगा जाता है। यह दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य मे अन्तराय डालने से बंधता है और इससे पॉचो अन्तराय की प्राप्ति होती है।

६. गुणस्थान द्वार

गुणस्थानों पर 31 द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं –1 . नाम 2. लक्षण 3. स्थिति 4. क्रिया 5. सत्ता 6. बंध 7. उदय 8. उदीरणा 9. निर्जरा 10. भाव 11 कारण 12. परीषह 13. आत्मा 14. जीव के भेद 15 गुणस्थान 16 योग 17. उपयोग 18 लेश्या 19. हेतु 20. मार्गणा 21. ध्यान 22. दण्डक 23. जीव–योनि 24. निमित्त 25. चारित्र 26. आकर्ष 27. समकित 28 अन्तर और 29. क्षेत्र प्रमाण 30 गुणस्थान स्पर्शना 31. अल्प बहुत्व।

1. नाम द्वार

गुणस्थानों के नाम - मिथ्यात्व 2 सास्वादन 3 सम्यग् - मिथ्या (मिश्र) 4. अविरत सम्यग्दृष्टि 5. देशविरत 6. प्रमत्त - संयत 7 अप्रमत्त संयत 8. निवृत्ति-बादर 9 अनिवृत्ति-बादर 10. सूक्ष्म-सम्पराय 11. उपशान्त मोहनीय 12. क्षीण मोहनीय 13 सयोगी केवली और 14. अयोगी केवली, गुणस्थान।

2. लक्षण द्वार

1. मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण - जिनेश्वर भगवान की वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रध्दे या प्ररुपे जिन -मार्ग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिंसा मे धर्म माने या प्ररुपे, कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्र पर आस्था रखे अथवा तत्व श्रध्दा का अभाव। मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव पहले गुणस्थान मे रहते है। जीव के ऐसे भाव को पहला मिथ्यात्व गुणस्थान कहते है।

पहले गुणस्थान का फल - कर्म रुपी डंडे से आत्मा रुपी गेंद चार गति चौबीस दण्डक और चौरासी लाख जीव-योनियों मे बारम्बार परिभ्रमण कर दु:ख भोगती रहती है।

2. दूसरे गुणस्थान का लक्षण - जो औपशमिक सम्यक्त्वी जीव अनन्तानुवन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व को छोडकर मिथ्यात्व की ओर झुक रहा हे, किन्तु अभी तक मिथ्यात्व को प्राप्त नही किया है, उसकी इस अवस्था विशेष को सास्वादन गुणस्थान कहते हे। जैसे किसी ने खीर र

भोजन किया और बाद मे वमन कर दिया तो उसे कुछ गुड्चटा सा स्वाद रहता है। अथवा जैसे घटे से गभीर शब्द निकल चुकने के वाद उसकी रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है, उसके समान, अथवा आत्मा रुपी आम्र वृक्ष की परिणाम रुपी डाली से मोह रुपी वायु चलने से समकित रुपी फल टूट गया, परन्तु पृथ्वी पर नही पहुचा यह बीच ही मे है तब तक के परिणाम को "सास्वादन गुणस्थान" कहते है।

3. तीसरे गुणस्थान का लक्षण – सम्यक्त्व ओर मिथ्यात्व से मिश्रित श्रीखड के समान मीठे और खट्टे स्वाद जैसा नालिकेल द्वीप के मनुष्य का दृष्टात - जिस द्वीप मे खाने के लिए सिर्फ नारियल ही होते है, उसे नालिकेल द्वीप कहते है। वहॉ मनुष्यो ने न अन्न को देखा है और न ही उसके विषय मे कुछ सुना है अत एव उनको अन्न मे रुचि नही होती और न ही द्वेष ही होता है। इस प्रकार मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब जीव को जैन धर्म मे प्रीति नही होती और अप्रीति भी नही होती अर्थात् श्री वीतराग ने जो जैन धर्म मे कहा है वही सच्चा है, इस प्रकार एकान्त श्रध्दा रुप प्रेम भी नही होता है और वह धर्म झूठा है, अविश्वसनीय है, इस प्रकार अरुचि रुप द्वेष भी नही होता।

4. चौथे गुणस्थान का लक्षण – सात प्रकृतियो का क्षयोपशम आदि करने पर जीव की जो अवस्था होती है उसे चौथा "अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान" कहते है। वे सात प्रकृतियो ये है - 1 अनन्तानुबन्धी क्रोध 2 मान - 3 माया, 4 लोभ 5 समकित मोहनीय 6 मिश्र मोहनीय 7 मिथ्यात्व मोहनीय है। जिनका उदय तात्विक रुचि का निमित्त होकर भी औपशमिक या क्षायिक भाववाली तत्व रुचि का प्रतिबंध करता है। सम्यकत्व का घात करने मे असमर्थ मिथ्यात्व के शुध्द दलिको को सम्यकत्व मोहनीय कहते है।

इस गुणस्थान मे प्रमुखता से तीन प्रकार का सम्यम्तत्व हो सकता है।

1. क्षायिक सम्यक्त्व – इसमे चार अनन्तानुबन्धी एव तीन दर्शन मोहनीय इन सात प्रकृतियो का सर्वथा क्षय हो जाता है।

2. उपशम सम्यक्त्व – इसमे चार अनन्तॉनुबन्धी एव तीन दर्शन मोहनीय इन सात प्रकृतियो का उपशम हो जाता है। अर्थात् उनका उदय सर्वथा रुक जाता है।

3. क्षयोपशम सम्यक्त्व – इसमे सम्यक्त्व मोहनीय के विपाकोदय अर्थात्

फल की अनुभूति कराने वाले उदय की नियमा होती है। शेष 6 प्रकृतियों चार अनन्तानुबन्धी, मिथ्यात्व मोहनीय एवं मिश्र मोहनीय का विपाकोदय नही होता हैं। .

टिप्पणी – इन 6 प्रकृतियो के विपाकोदय के अभाव मे क्षय,क्षयोपशम, ऊपशम आदि की अपेक्षा अनेक भग होते हैं। थोकडे मे उस विस्तार को गोण किया गया है। विशेष जिज्ञासु कर्म सिद्धात का अध्ययन करें।

5. देशविरति गुण स्थान का लक्षण – प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के कारण जो जीव पाप जनक क्रियाओ से सर्वथा तो नही किन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न होने के कारण देश (अंश) से पापजनक क्रियाओं से अलग हो सकते है, वे देशविरत कहलाते है। देशविरत को श्रावक भी कहते है। इनका स्वरुप विशेष देशविरत गुणस्थान है। इस गुणस्थान मे आया हुआ जीव, जीवादिक नौ पदार्थो का जानकार होता है। नवकारसी आदि से लेकर वर्षीतप आदि जानता है श्रध्दान करता है, प्ररुपणा करता हैं और शक्ति के अनुसार प्रत्याख्यान करता है। एक व्रत से लेकर श्रावक के बारह व्रत तक एक से लेकर ग्यारह प्रतिमाएँ तक पालन करे यावत सलेखना तक सथारा करे।

6. प्रमत्तसंयत गुणस्थान - प्रत्याख्याना वरण कषाय के क्षयोपक्षय से जो जीव पापजनक व्यापारो से विधिपूर्वक सर्वथा निवृत्त हो जाते है वे सयत (मुनि) हैं। लेकिन संयत भी जब तक प्रमाद का सेवन करते है तब तक वे प्रमत्त सयत कहलाते है , और उनके स्वरुप-विशेष को प्रमत्त संयत गुणस्थान कहते है।

7. अप्रत्तसंयत गुणस्थान - जो सयत (मुनि) विकथा, कपाय आदि प्रमादो को नहीं सेवते है, वे अप्रमत्त संयत हे और उनका स्वरुप विशेष जो अप्रमतसंयत गुणस्थान कहलाता है - इस गुणस्थान मे व्यक्त प्रमाद नष्ट हो चूके हैं। किन्तु सज्वलन कषाय एवं नो कषाय का मद उदय रहता है।

8. निवृत्ति बादर गुणस्थान – निवृत्ति अर्थात् अध्यवसाय बादर अर्थात् भिन्न-भिन्न जिस गुण स्थान मे आए हुए सम समय के त्रिकालवर्ती सभी जीवो के अध्यवसाय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, उस को निवृत्ति बादर गुणस्थान भी कहते है। इस गु मे स्थितीघात, रसघात, गुण-श्रेणी, गुण संक्रमण

स्थितिबन्ध ये पाच कर्म पहले के गु की अपेक्षा अपूर्व होते है । अत इसे **अपूर्वकरण गुणस्थान** कहते हैं ।

9. अनिवृत्ति बादर गुणस्थान – अ - नही, निवृत्ति - अध्यवसाय, बादर- भिन्न-भिन्न अर्थात जिस गुणस्थान मे समसमयवर्ती त्रैकालिक जीवो के चाहे चढते परिणाम हो, चाहे उतरते परिणाम हो उस-उस समय के परिणामो मे भिन्नता नही होती उस अवस्था को अनिवृत्ति बादर गुणस्थान कहते है ।

10. सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान – इस गुणस्थान मे सम्पराय अर्थात् कषाय (लोभ) के सूक्ष्म खण्डो का ही उदय होने से इसका सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान ऐसा सार्थक नाम प्रसिध्द है । जिस प्रकार धुले हुए गुलाबी रग के कपडे मे लालिमा (सुर्खी) सूक्ष्म-झीनी-सी रह जाती है, उसी प्रकार इस गुणस्थानवर्ती जीव संज्वलन लोभ के सूक्ष्म खण्डो का वेदन करता है । इसलिए इसे सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान कहते है ।

11. उपशान्त कषाय वीतराग छदम्स्थ गुणस्थान – जिसके कषाय उपशात हुए है, राग का भी सर्वथा उदय नहीं है और जिनको छदम् (आवरणभूतघातिकर्म) लगे हुए है, वे जीव उपशांत कषाय वीतराग छदम्स्थ है और उनके स्वरुप विशेष को उपशांत कषाय वीतराग छदम्स्थ गुणस्थान कहते है ।

शरद ऋतु में होने वाले सरोवर के जल की तरह मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणाम इस गुणस्थान वाले जीव के होते है । आशय यह है कि मोहनीय कर्म की सत्ता तो है परन्तु उदय नही होता है ।

12. क्षीणकषाय वीतराग छदमस्थ गुणस्थान – मोहनीय [illegible] सर्वथा क्षय होने के पश्चात् ही यह गुणस्थान प्राप्त होता है । इस [illegible] जीव के भाव स्फटिक मणि के निर्मल पात्र मे रखे हुए जल के [illegible] होते है । क्योकि मोहनीय कर्म सर्वथा क्षय हो जाते है । [illegible] । जो मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय कर चुके है, किन्तु [illegible] (... का आवरण) अभी विद्यमान है, उनको क्षीण कषाय [illegible] उनके स्वरुप विशेष को क्षीण कषाय वीतराग छदमस्थ गुणस्थान [illegible] ।

13. सयोगिकेवली गुणस्थान – [illegible] दर्शनवारण, मोहनीय और अंतराय) [illegible] दर्शन प्राप्त कर चुके है । जो पदार्थ के [illegible]

आदि की अपेक्षा नहीं रखते हैं और योग (आत्मवीर्य, शक्ति, उत्साह, पराक्रम) से सहित है, उन्हे सयोगीकेवली कहते है और उनके स्वरुप विशेष को सयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं।

14. अयोगी केवली गुणस्थान – जो केवली भगवान योगो से रहित है वे अयोगी केवली कहलाते है, अर्थात् जब सयोगी केवली मन, वचन और काया के योगों का निरोध कर योग रहित शुध्द आत्मस्वरुप को प्राप्त कर लेते हैं तब वे अयोगी केवली कहलाते हैं, और उनके स्वरुप विशेष को अयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं। इस गुण स्थान मे 5 लघु अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण जितनी स्थिति तक रहकर - 1 वेदनीय 2. आयुष्य 3 नाम और 4 गोत्र - इन चार अघातीय कर्म का क्षय करके अफुसमाण (दूसरे समय का स्पर्श न करनेवाली) गति से, एक समय की अविग्रह (बिना मोड़वाली) गति से औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर को छोडकर सिध्द गति को प्राप्त होते हैं। सिध्द गति में जन्म नहीं, मरण नही, जरा नही, रोग नही, शोक नही, दु:ख नहीं, दारिद्र्य नही, मोह नही, माया नही, कर्म नही, काया नही, चाकर नही, ठाकर नहीं, गुरु नही, चेला नही, भूख नही, प्यास नही, ज्योति मे ज्योति विराजमान हैं। अनंत सुखो मे लीन, अनंत ज्ञान, अनत दर्शन, अनंत सुखक्षायिक चारित्र, निराबाध, अक्षय स्थिति, अमूर्तिक, अगुरु लघु, अनंतवीर्य सहित विराजमान होते है।

3. स्थिति द्वार*

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं – 1 अनादि - पर्यवसित (अभवि जीव की उपेक्षा) जिसकी आदि नही और अन्त भी नही, 2 अनादि सपर्यवसित (भवि जीव की उपेक्षा) जिसकी आदि नही, किन्तु अन्त है, 3. सादि सपर्यवसित जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। प्रतिपाती सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा तीसरे भग की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्ध्द पुद्गल परावर्तन काल की है।

दूसरे गुणस्थान की स्थिति ज एक समय उ छह आवलिका ही है।

तीसरे और बारहवे गुणस्थान की स्थिति ज.उ अन्तर्मुहूर्त की है।

चौथे गुणस्थान की स्थिति ज.अन्तर्मुहूर्ति और उ तेतीस सागर

झाझेरी की है।

पाचवे और तेरहवे गुणस्थान की स्थिति ज अन्तर्मुहूर्त और उ देशोन क्रोड पूर्व की है।

छठे गुणस्थान की जघन्य स्थिति एक समय की उ देशोन क्रोड़ पूर्व की है।

सातवे, आठवे, नौवे, दसवे और ग्यारहवे गुणस्थान की स्थिति ज. एक समय उ अन्तर्मुहूर्त की है।

चौदहवे गुणस्थान की स्थिति मध्य रीति से पांच लघु अक्षर के उच्चारण करने मे जितना काल लगे, उतनी है।

एक भी क्रिया नही हैं ।

3 मिथ्यात्वभिमुख होने से एव अनतानुबधी कषाय का उदय होने से मिथ्यात्व की क्रिया लगना सभव है ।

5. सत्ता द्वार [4]

पहले गुणस्थान से ग्यारहवे गु तक आठों ही कर्मो की सत्ता होती है। बारहवे गुणस्थान मे सात 7 कर्मो की सत्ता है और तेरहवे तथा चौदहवे गु मे चार आघातिया कर्मो की सत्ता रहती है ।

4 आत्मा के साथ कर्मों का लगा रहना सत्ता है ।

5 क्योकि बारहवे गु. मे मोहनीय कर्म का अभाव हो जाता है ।

6. बन्ध द्वार [6]

तीसरे गुणस्थान को छोडकर पहले से सातवे गु तक सात तथा आठ कर्मो का बंध होता है (जब सात कर्मो का बन्ध होता है तथा आयु कर्म नही बंधता) । तीसरे, आठवे और नौवे गुणस्थान मे आयु-कर्म के सिवाय सात कर्मो का बध होता है । दसवे गुणस्थान मे मोहनीय और आयु के सिवाय छह कर्मो का बन्ध होता है । ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवे गुणस्थान मे एक सातावेदनीय का ही बन्ध होता है । चौदहवे गुणस्थान मे बन्ध नही होता है ।

6 आत्माके साथ कर्मों का क्षीर-नीर के समान एकमेव हो जाना ।

7. उदय द्वार [7]

पहले गुणस्थान से दसवे गुणस्थान तक आठो कर्मो का उदय होता है। ग्यारहवे तथा बारहवे गुणस्थान मे मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों का उदय होता है । तेरहवें तथा चोदहवे गु. में चार अघातिया कर्मो का उदय होता है ।

7 अबाधाकाल पूर्ण होने पर कर्म का फल देना उदय कहलाता है ।

8. उदीरणा द्वार [8]

पहले से लेकर छटे गुणस्थान तक तीसरे गुण. को छोड़कर सात

आठ कर्मो की उदीरणा होती है (सात की उदीरणा हो तो आयु कर्म की नही होती) तीसरे मे आठ कर्मो की उदीरणा, सातवे, आठवे और नौवे गुणस्थान मे छह कर्मो की उदीरणा, (आयु और वेदनीय छोड़कर) दसवे गुणस्थान मे छह या पाच कर्मो की उदीरणा (छह की हो तो पूर्वोक्त दो छोडना और पांच की हो तो मोहनीय भी छोड देना) । ग्यारहवे गु मे पांच कर्मो की उदीरणा, बारहवे गु मे पूर्वोक्त पांच कर्मो की या नाम ओर गोत्र इन दो कर्मो की उदीरणा होती है । तेरहवे गु में पूर्वोक्त दो की उदीरणा होती है या किसी की नही होती । चौदहवे गुणस्थान मे उदीरणा नही होती ।

8 कर्मो की स्थिति पूर्ण होने से पहले ही तपस्या, लोच आदि के द्वार उन कर्म को उदय मे लाना उदीरणा है ।

9. निर्जरा द्वार [9]

पहले गुणस्थान से दसवे गु तक आठो कर्मो की निर्जरा होती है । ग्यारहवे तथा बारहवे गु मे मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मो की निर्जरा होती है और तेरहवे तथा चौदहवे गु मे चार अघातिया कर्मो की निर्जरा होती है।

9 आशिक रुप से कर्मो का आत्मा से अलग होना ।

10. भाव द्वार

भाव पाच होते है - औदायिक भाव 2 औपशमिक भाव 3 क्षायिक भाव 4 क्षायोपशमिक भाव और 5 पारिणामिक भाव ।

पहले दूसरे और तीसरे गु मे औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये तीन भाव होते है । चौथे से ग्यारहवे गु तक उपशम श्रेणी वाले मे पाचो भाव होते है । चौथे से बारहवे गु तक क्षपक- श्रेणी वाले मे औपशमिक छोडकर शेष चारो भाव पाये जाते है । तेरहवे और चौदहवे गु मे औदायिक, क्षायिक और पारिणामिक भाव - ये तीन भाव होते है, तथा सिध्दो मे क्षायिक और पारिणामिक - ये दो भाव होते है ।

1 गति कषाय आदि कर्मो के उदय से होने वाले भाव को औदायिक कहते है । जैसे क्रोध आदि ।

छः भेद पाए जाते है दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय इनका अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त और अपर्याप्त। तीसरे गु. में जीव का एक ही भेद पाया जाता है - संज्ञी का पर्याप्त। चौथे गु. मे संज्ञी का पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद पाए जाते है। पांचवे से लेकर चौदहवे गुणस्थान तक जीव का एक ही भेद संन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त पाया जाता है।

15. गुणस्थान द्वार

प्रत्येक गुणस्थान अपने -अपने गुण से संयुक्त होता है। पहले गु. से चौथे गु. तक आठ बोल पाये जाते हैं। 1. असंयत 2. अप्रत्याख्यानी 3. अविरत 4. असंवृत 5. अपण्डित 6. अजाग्रत 7. अधर्मी 8. अधर्मव्यवसायी। पाचवें गु मे आठ बोल पाये जाते हैं - 1. संयतासंयत 2.प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी 3 विरताविरत 4. संवृतासंवृत 5. बालपण्डित 6. सुप्त-जाग्रत 7. धर्माधर्मी 8 धर्मा-धर्मव्यवसायी। छठे गुणस्थान से चौदवें गु. तक आठ बोल पाये जाते है 1. संयती 2. प्रत्याख्यानी 3. विरत 4. संवृत 5 पण्डित 6 जाग्रत 7 धर्मी 8. धर्मव्यवसायी।

दूसरी तरह से गुणस्थान द्वार -

गत्यन्तर जाते मार्ग में गुणस्थान तीन - पहला, दूसरा और चौथा।

अमर गु. तीन - 3, 12, 13

अप्रतिपाति गु. तीन - 12, 13,14

तीर्थकर नामकर्म के बन्धक गु पांच - 4,5, 6, 7,8

तीर्थकर के लिए अस्पृश्य गु. पांच - 1,2,3,5,11

शाश्वत गु छ - 1,4,5,6,7,13

अनाहारक गु. पांच - 1,2,4,13#,14

मोक्ष प्राप्त करने वाला उस भव में कम से आठ गु अवश्य प्राप्त करता है 4,7,8,9,10,12,13,14 और ससार अवस्थान काल मे कम से कम प्रथम गु. सहित नौ गु. प्राप्त करता है।

1,2,4 विग्रह गति एव 13 केवली समु की अपेक्षा।

16. योग द्वार

पहले दूसरे और चौथे गुणस्थान मे 13 योग - 1 आहारक और 2 आहारक मिश्र) - इन दो को छोड़कर पाये जाते है । तीसरे गु मे 10 योग (1 औदारिक मिश्र 2 वैक्रिय मिश्र 3 आहारक 4 आहारक मिश्र और 5 कार्मण, इन पाचो को छोड़कर) पाये जाते है । पाचवे गु मे 12 योग (1 आहारक 2 आहारक मिश्र और 3 कार्मण को छोड़कर) पाये जाते है । छठे गु मे कार्मण के सिवाय चौदह योग पाये जाते है । सातवें गु से बारहवे गु तक चार मनोयोग, चार वचन योग और एक औदारिक - इस प्रकार नौ योग पाये जाते है । तेरहवे गु मे सात योग होते है - 1 सत्य मनोयोग 2. व्यवहार मनोयोग 3 सत्य वचन योग 4 व्यवहार वचन तथा 5. औदारिक 6 औदारिक मिश्र तथा 7 कार्मण चौदहवे गुणस्थान मे योग नही होता ।

कर्म ग्रन्थ भाग 2 मे सातवे गुण मे अंहारक द्विक वैक्रिय दिक का उदय नही बताया है । तथा प्रज्ञापना सूत्र के 21 वे पद मे भी अप्रमत्तावस्था मे अहारक शरीर नही बताया है अत 7 वे गुण मे आहारक व वैक्रिय कायायोग नही मान कर 9 योग मानना ही उचित लगता है । मन्तातर से पच सग्रह के प्रथम द्वार (योग वियोग) मार्गणा की सतरहवी गाथा के अनुसार सातवे गुणस्थान मे वेक्रिय एव आहारक योग मानने, ग्यारवा योग भी मानी जाति है ।

17. उपयोग द्वार

पहले और तीसरे गुणस्थान मे छह उपयोग हो सकते है - तीन अज्ञान - मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभग ज्ञान और तीन दर्शन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन । दूसरे, चौथे और पाचवे गु मे छह उपयोग होते है - 3 ज्ञान, 3 दर्शन ।

छठे से बारहवे गु तक (10 वे गु को छोडकर) सात उपयोग होते है - पूर्वोक्त छह और एक मन पर्याय ज्ञान । तेरहवे और चौदहवे गु मे केवलज्ञान और केवलदर्शन - ये दो ही उपयोग होते है । 10 वे गुणस्थान मे उपयोग पावे चार-मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्यव ज्ञान ।

18. लेश्या द्वार

पहले गुणस्थान से छठे गु. तक छ लेश्याएं पाई जाती है । सातवे

गु. मे तेजो, पद्म और शुक्ल- ये तीन लेश्याएं होती है। आठवे से बारहवे तक एक शुक्ल लेश्या ही होती है। तेरहवें गु. मे एक परम शुक्ल लेश्या होती है। चौदहवे गु. में लेश्या नहीं होती।

19. हेतु द्वार

हेतु सत्तावन होते है - 5 मिथ्यात्व 25 कषाय, 15. योग और 12 अव्रत (6 काय 5 इन्द्रिय, 1 मन)।

पहले गुणस्थान मे आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर शेष पचपन हेतु पाये जाते हैं। दुसरे गुणस्थान में पांच मित्यात्व को छोड़कर पचास हेतु पाये जाते हैं। तीसरे गु मे पूर्वोक्त पचास में से चार अनन्तानुवन्धी औदारिक मिश्र वैक्रिय मिश्र और कार्मण - इन सातों के सिवाय 43 हेतु पाये जाते है। चौथे गु. मे पूर्वोक्त 43 के साथ ही औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण ये तीन विशेष होकर 46 हेतु पाये जाते हैं। पांचवे गु. मे छियालीस मे से अप्रत्याख्यान की चौकडी त्रस की अविरति और कार्मण ये छह घटाकर चालीस हेतु पाये जाते है। छठे गु. में सत्ताईस हेतु पाये जाते है - 14 योग और 13 कषाय। सातवे आठवें गु. में औदारिक मिश्र, वैक्रिय वैक्रिय मिश्र और आहारक, आहारक मिश्र - इन पांच को छोड़कर बाईस हेतु पाये जाते है। नौवे गु मे हास्य आदि छह के सिवाय सोलह हेतु पाये जाते है। दसवे गु. में नौ योग और सज्वलन का लोभ, ये दस हेतु पाये जाते हे। ग्यारहवे तथा बारहवें गु मे चार मन के, चार वचन के और एक औदारिक - ये नौ हेतु पाये जाते है। तेरहवें गु. मे सात हेतु पाये जाते है - 1 सत्य मन योग, 2 व्यवहार मन योग, 3 सत्य भाषा 4. व्यवहार भाषा 5. औदारिक 6 औदारिक मिश्र और 7 कार्मण। चौदहवे गु. में कोई भी हेतु नहीं होता।

20. मार्गणा द्वार

यहा मार्गणा का तात्पर्य आने व जाने के मार्ग से है। जैसे - पहले गुणस्थान मे आगति मार्गणा मे आगति मार्गणा पाच यानी पहले गुणस्थान मे जीव पाच गुणस्थानो (2,3,4,5,6) से आ सकता है और गति मार्गणा 5 यानी पहले गुणस्थान का जीव पाच गुणस्थानो (3,4 5,6,7) मे जा सकता है।

55 पहले गुणस्थान मे आगति मार्गणा पाच (दूसरे, तीसरे, चौथे, पाचवे और छठे गुणस्थान से आ सकते है) गति मार्गणा पाच (तीसरे, चौथे, पाचवे, छठे* सातवे गुणस्थान मे जा सकते है) ।

टिप्पणी – उपशमनीकरण (पच सग्रह के) की 28 वी गाथा की टीका मे पहले से सीधा छटे गुण में जाना बताया है ।

31 दूसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा तीन (चौथा, पाचवा, छठा गुणस्थान) गति मार्गणा एक (पहला गुणस्थान) ।

५5 तीसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (पहला, चौथा, पाचवॉ, छठा गुणस्थान) गति मार्गणा पॉच (गिरे तो पहला, चढे तो चौथा, पाचवॉ छठा सातवॉ गुणस्थान ।

९6 चौथे गुणस्थान की आगति मार्गणा नौ (पहले से ग्यारहवे गुणस्थान तक दूसरे व चौथे को छोडकर) गति मार्गणा छ (चढे तो पाचवॉ, छठा, सातवा, गिरे तो तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान)

५6 पॉचवे गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (पहला, तीसरा, चौथा, छठा) गति मार्गणा छ. (चढे तो छठा# सातवां, गिरे तो चौथा, तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान) ।

टिप्पणी – उवसमदिट्ठि अन्तकरणे ठिओ कोई देश विरयवि लमेइ कोई पमत्तोयमत्त भावयि - शतक चूर्णि मॉ सातवॉ, गिरे तो तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान) ।

56 छठे गुणस्थान आगति मार्गणा पाच, पहला, तीसरा, चौथा, पॉचवा, सातवा । गति मार्गणा 6 (चढे तो सातवॉ, गिरे तो पॉचवा, चौथा, तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान) ।

63 सातवे गुणस्थान की आगति मार्गणा छह (पहला, तीसरा, चोथा, पॉचवा, छठा, आठवा गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढ़े तो आठवा गिरे तो छठा, काल करे तो चौथा गुणस्थान) ।

23 आठवे गुणस्थान मे आगति मार्गणा दो (सातवा, नवा गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढे तो नवां, गिरे तो सातवा, काल करे तो चौथा गुणस्थान)

23 नवे गुणस्थान मे आगति मार्गणा दो (आठवा, दसवा गुणस्थान) मार्गणा तीन (चढे तो दसवां, गिरे तो आठवा, काल करे तो चौथा गु' ।

२५ दसवे गुणस्थान की आगति मार्गणा दो (नवां, ग्यारहवां गुणस्थान) गति मार्गणा चार (चढ़े तो ग्यारहववा-बारहंवा गिरे तो नवां, काल करे तो चौथा गुणस्थान) ।

12 ग्यारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक - दसवां गुणस्थान गति मार्गणा दो - गिरे तो दसवां, काल करे तो चौथा गुणस्थान ।

11 बारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक - दसवां गुणस्थान गति मार्गणा एक - तेरहवां गुणस्थान ।

1, तेरहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक - बारहवां । गति मार्गणा एक चौदहवां गुणस्थान ।

1· चौदहवे गुणस्थान की आगति मार्गणा एक - तेरहवां गुणस्थान । गति मार्गणा एक - मोक्ष ।

21. ध्यान द्वार

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान पाये जाते हैं । चौथे और पांचवें में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान और धर्मध्यान पाये जाते है । छठे मे आर्त्तध्यान और धर्मध्यान होता है । सातवें मे केवल धर्मध्यान ही है। आठवें से तेरहवें तक शुक्लध्यान पाया जाता है और चौदहवे गुणस्थान मे परमशुक्ल ध्यान होता है ।

मन की एकाग्रता को ध्यान कहते है ।

22. दण्डक द्वार

पहले गुणस्थान में चौबीस दण्डक, दूसरे में चौबीस में से पांच स्थावर के छोड़कर उन्नीस, तीसरे और चौथे मे (उन्नीस मे से तीन विकलेन्द्रिय के छोड़कर) सोलह, पांचवें में संज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य - ये दो छठे से चौदहवें गु. तक मनुष्य का एक दण्डक पाया जाता है ।

23. जीवयोनि द्वार

पहले गुणस्थान मे चौरासी लाख जीवयोनि । दूसरे गु मे (एकेन्द्रिय

52 लाख छोडकर) बत्तीस लाख । तीसरे चौथे गु मे (तीन विकलेन्द्रिय की छह लाख घटाकर छब्बीस लाख, पाचवे गु मे (चौदह लाख मनुष्यो की और चार लाख तिर्यचो की- इस प्रकार) अठारह लाख, छठे गु से चोदहवे गु तक मनुष्य की चौदह लाख जीवयोनिया पायी जाती है ।

24. निमित्त द्वार

पहले एव तीसरे गुणस्थान मे दर्शन मोहनीय का उदय निमित्त होता है । दुसरे गुण मे दर्शन मो का अनुदय एव चरित्र मो अनन्तानुबधी का उदय निमित्त होता है । चोथे गुणस्थान मे दर्शन मोहनीय का क्षय,उपक्षम या क्षायोपशम निमित्त होता है । पाचवें गु से सातवें गुणस्थान चरित्र मो का क्षायोपशम निमित्त होता है । आठवे से दसवे गु तक चरित्र मो का क्षय या उपशम निमित्त होता है । ग्यारहवे गु मे चारित्र मोहनीय का उपशम निमित्त होता है । बारहवे गु मे चारित्र मो का क्षय निमित्त होता है । तेरहवे गु मे ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय एवं अन्तराय कर्म का क्षय तथा योग का सद्‌भाव निमित्त होता है । चौदहवे गु मे योग का अभाव निमित्त होता है ।

25. चारित्र द्वार

पहले से चौथे गुणस्थान तक चारित्र नही होता, पाचवे गु मे देश चारित्र, छठे औ़र सातवे गु मे तीन चारित्र होते है - 1 सामायिक 2 छेदोपस्थानीय और 3. परिहार विशुध्दि । आठवे, नौवे गु मे दो चारित्र होते है - 1 सामायिक 2 छेदोपस्थानीय । दसवे गु मे 1 सूक्ष्मसम्पराय चारित्र होता है । ग्यारहवे से चौदहवे गु तक यथाख्यात चारित्र होता है ।

26 आकर्ष द्वार

जीव एक भव की अपेक्षा और अनेक भवो की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान को उत्कृष्ट कितनी बार स्पर्श सकता है,उस स्पर्श की सख्या विशेष को आकर्ष

पहले गुणस्थान का तीसरा भग (सादि सपर्यवसित),

और पांचवा गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट पृथकत्व हजार बार प्राप्त हो सकता है। अनेक भवो की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट असख्यात बार प्राप्त हो सकता है। दूसरा गुणस्थान एक की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट दो बार और अनेक भवो की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट पांच बार प्राप्त हो सकता है। छठा और सातवां गुणस्थान मिलाकर एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट पृथकत्व 100 बार, अनेक भवो की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट पृथकत्व 1000 बार। आठवा, नवा, दसवा, गुणस्थान एक भव मे जघन्य 1 बार उत्कृष्ट 4 बार, अनेक भवो की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट नौ बार। ग्यारहवां गुणस्थान एक भव मे जघन्य 1 बार उत्कृष्ट 2 बार। अनेक भवो की अपेक्षा जघन्य 2 बार उत्कृष्ट चार बार। बारहवा, तेरहवा, चोदहवा गुण. एक भव मे एक बार और अनेक भवो मे भी एक बार।

27. समकित द्वार

क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से चौदहवे गु तक होता है।उपशम सम्यक्त्व चौथे गु से ग्यारहवे गु. तक होता है। क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व चौथे से सातवे गु. तक होता है। सास्वादन सम्यक्त्व दूसरे गु मे होता है। मिथ्यात्व और मिश्र गु में सम्यक्त्व नही है।

28. अन्तर द्वार

पहले गुणस्थान के तीन भंग है - 1 अनादि अपर्यवसित (सदा से मित्यादृष्टि है और सदा रहेगे) 2. अनादि- सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि नही, किन्तु अन्त है),3 सादि - सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि भी हे और अन्त भी है)।

इन तीन भंगो मे से तीसरे भग का अन्तर ज अन्तर्मुहूर्त और उ 2 छासठ सागर झाझेरी है। दूसरे गुणस्थान का अन्तर जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग का, उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद परावर्तन का। तीसरे से लेकर ग्यारहवे गु तक (चोथा गुण. छोडकर) का अन्तर ज अन्तर्मुहूर्त और उ देशोन ([illegible] कम) अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है। चोथा गुण का अन्तर

जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन अर्धपुदगल परावर्तन काल । बारहवे, तेरहवे और चौदहवे गु का अन्तर नही है ।

टिप्पणी – जीवाभिगम सुत्र मे सादि सपर्यवसित मिथ्या दृष्टि का अन्तर 66 सागरोपम झाझेरी कहा है । तदनुसार थोकडे मे उल्लेख किया है । कर्म ग्रन्थो के मन से मिथ्या दृष्टि का अन्तर 132 सागरोपम झाझेरी कहा गया है । उनके अनुसार 66 सागरोपम झाझेरी सम्यगदृष्टि रह कर जीव सम्यग मिथ्या दृष्टि को प्राप्त करके पून 66 सागरोपम सम्यक दृष्टि रह कर फिर मिथ्या दृष्टि बनता है । तदनुसार मिथ्या दृष्टि का अन्तर 132 सागरोपम झाझेरी माना गया है ।

29. क्षेत्र प्रमाण द्वार

सास्वादन आदि सभी गुणस्थान वाले जीव लोक के असख्यातवे भाग मे रहे हुए है, मिथ्यादृष्टि सम्पूर्ण लोक मे है और समुद्घात अवस्था मे सयोगी भी सम्पूर्ण लोकव्यापी होते है ।

30. गुणस्था स्पर्शना द्वार

3-4 थे गुण वाले आठ-आठ राजू को, दूसरे गुण - वाले बारह राजू को, 5 वे गुण वाले छह राजू को, 12 वे गुण - वाले राजू के अस भाग को तथा शेष गुणस्थान वाले सात राजू प्रमाण लोक को स्पर्श करते है ।

31. अल्पबहुत्व द्वार (जीव प्रमाण)

सबसे कम उपशमक (8-11 वे गुण वर्ती) तथा उपशात मोही (11 वे गुणवर्ती) जीव एक समय मे 54 तक पाये जाते है श्रेणि के सपूर्ण काल की अपेक्षा सख्यात पाये जाते है इनके क्षपक (8-10 वें गुणस्थानवर्ती) उससे 12 वे और14 वे गुण वाले परस्पर तुल्य जीव स गुण (प्रतिपदमान की अपेक्षा 108) उससे 8,9,10 गुण मे परस्पर तुल्य विशेषाधिक (प्रतिपध्यमात की अपेक्षा 162) । उनसे तेरहवे गुण वाले जीव स गुण और ये (पृथक्त्त्व करोड)।

उनसे सातवें गुण सं. गुणा । (प्रथक 100 करोड) उनसे छठे गुण वाले सं गुणा ये ज. और उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार करोड पाये जाते है । उनसे 5 वे गुण वाले असं. गुणा उससे दूसरे गुण वाले अस गुणा इनसे तिसरे गुण वाले असं गुणा उससे चौथे गुण वाले असं गुणा.उससे पहले गुण वाले अनंत गुणा ।

६. पुच्छिंस्सुणं (वीर स्तुति) अर्थ सहित

पुच्छिंस्सु णं समणा माहणा य
अगारिणो या परतित्थिया य।
से केइ णेगंत हियं धम्म –माहु
अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥1॥

अन्वयार्थ = समणा श्रमणो, यमाहणा = और ब्राह्मणो, अगारिणो = गृहस्थो,पर तित्थया य = और परतीर्थिको ने, पुच्छिस्सु = पूछा कि, से केइ =वह कौन है,णेगंतहियं = एकान्त हितकर, अणेलिसं साहु = अनुपम श्रेष्ठ, धम्म - धर्म को,सम्मिक्खयाए = सम्यक् प्रकार से विचार कर, आहु = कहा।

भावार्थ – श्रमण, ब्राह्मण, क्षत्रियादि गृहस्थ और शाक्य आदि अन्य मतावलम्बी लोगो ने पूछा कि वे कौन है जिसने एकान्त रुप से आचारण योग्य हितकर श्रुत चरित्र रुप अनुपम श्रेष्ठ धर्म का कथन सम्यक् रुपेण किया।

कहं च णाणं कहं दसणं से,
सीलं कहं णाय सुयस्स आसी।
जाणासि णं भिक्खु। जहा तहेणं,
अहा सुयं बूहि जहा णिसत ॥2॥.

अन्वयार्थ –से णाय सुयस्स = उस ज्ञात पुत्र का, णाण = ज्ञान कैसा था ? कह दसण = दर्शन कैसा था,सील कहं आसी = यम नियम रुप आचरण कैसा था ? भिक्ख = हे भिक्षु, जहा तहेण जाणासि = जैसा उनको जानते हो, अहा सुयं = जैसा सुना है, जहा णिसत = जैसा निश्चय किया, बूहि-कहिये।

भावार्थ – हे गुरुवर्य। क्षत्रिय कुल आभूषण श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वस्तु के विशेष धर्मो को जानने का बोध ज्ञान कैसा था ? सामान्य धर्मो को जानने वाला उपयोग दर्शन कैसा था ? उनका यम नियम रुप शील कैसा था ? हे भगवन्। यह आप यथार्थ रुप मे जानते हो, उनके बारे मे जैसा सुना हो, अथवा गुरुकुल मे रहते आपने जैसा देखा हो, उसे अनुग्रह कर मुझे कहिए।

खेयण्णए से कुसले महेसी,
अणंत णाणी य अणंत दंसी।
जसंसिणो चक्खु पहे ठियस्स,
जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ॥3॥

अन्वयार्थ – से खेयन्नए = वे संसार के दुःखो को जानने वाले थे, कुसले महेसी = निपुण महर्षि थे, अणंत णाणीय अणंत दसी = अनन्त ज्ञानी और अनन्त दर्शी थे, जसंसिणो = यशस्वी, चक्खु पहे ठियस्स = लोचन मार्ग पर स्थित, धम्मं जाणाहि = धर्म को जानो, धिइं च पेहि = और धैर्य को देखो विचारो ।

भावार्थ – श्रमण भगवान महावीर स्वामी कर्मो के फलस्वरुप उत्पन्न होने एवं चतुर्गति संसार परिभ्रमण के दुःखो को जानने वाले थे तथा कर्मों को हटाने, निवारण के उपदेश मे निष्णात थे तपश्चरण करने एव परीषहोपसर्गो को सहने से महर्षि थे । वे अविनाशी ज्ञानवान् थे, अनतदर्शी थे, नरेन्द्रो, देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों से बढकर यशस्वी थे, भवस्थ केवली अवस्था मे लोक के चक्षु पथ पर स्थित थे। उनके श्रुत एवं चारित्र धर्म को जानो एवं उनके धैर्य को देखो ।

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से णिच्च णिच्चेहिं समिक्ख पण्णे
दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥4॥

अन्यवार्थ- उड्ढं अहेयं तिरियं = ऊपर नीचे तिरछे, दिसासु = दिशाओं में, तसा य ज = जो त्रस और, थावर जे य पाणा = स्थावर जो प्राणी रहते है, णिच्च णिच्चेहि = नित्य और अनित्य से, सम्मिक्ख = सम्यक् प्रकार से जानकर, से पन्ने = उन प्रज्ञा पुरुष ने, दीवेव दीपक वत्, समिय = समता युक्त, धम्म = धर्म का, उदाह = कथन किया है ।

भावार्थ – उर्ध्व, अध- और तिरछी दिशाओ मे जो भी त्रस और स्थावर प्राणी है, उनकी नित्य और अनित्य उभय अवस्थाओ को सम्यक् तया [illegible]

पदार्थों के यथार्थ स्वरूप के [illegible] करने के [illegible]

डूबते हुए समस्त प्राणियों के लिए द्वीप के समान [illegible]

चारित्र धर्म की [illegible]

से सव्व दंसी अभिभूय णाणी

णिराम गंधे धिइमं ठियप्पा ।

अणुत्तरे सव्व जगंसि विज्जं

गंथा अईए अभए अणाऊ ।।5।।

अन्वयार्थ - से सव्वदंसी = वह सर्वदर्शी, अभिभूय णाणी = अपराजेय ज्ञानवाले, णिराम गंधे = मूल गुण और उत्तर गुण की विशुध्द पालना करने वाले , धिइम = धैर्यवान, हियप्पा = आत्म स्वरुप मे रहने वाले, सव्व जगसि-अखिल विश्व में, अणुत्तरे विज्ज = सर्वोत्तम विद्वान, गथा अइए = ग्रन्थियो से रहित, अभए-निर्भय, अणाउ = आयु से रहित ।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर सर्वदर्शी, केवल ज्ञानी थे, मूलगुणो और उत्तर गुणों के विशुध्द पालक थे, परम धैर्यवान् आत्म स्वरुप मे रमण करने वाले थे । अखिल विश्व में सर्वोत्तम ज्ञानी तथा वाह्य आभ्यन्तर ग्रन्थियो से रहित थे, समग्र भयों से रहित और चतुर्विध आयु से विमुक्त थे।

से भूइ पण्णे अणिए अचारी,

ओहतंरे धीरे अणंत चक्खू ।

अणुत्तरं तप्पइ सूरिए वा,

वइ रोयणिंदे व तमं पगासे ।।6।।

अन्वयार्थ - से भूइ पण्णे = वे अनन्त ज्ञानी, अणिए आचारी = इच्छानुसार विचरण करने वाले, ओहंतरे = संसार तरने वाले, धीरे = धैर्यवत, अणत चक्खू = अनन्त दर्शनवान्, सूरिए व = सूर्य की तरह, अणुत्तर = सर्वाधिक, तप्पई = तपता है, वइ रोयणिन्दे व = अग्नि सदृश, तम पगासे = अन्धकार से प्रकाश करने वाले हैं ।

भावार्थ - श्री महावीर स्वामी अनन्त ज्ञानी, अप्रतिबध्द ।

संसार सागर मे तिरने वाले, धैर्यवान, अनन्त दर्शनधारी, सूर्य के समान प्रकाशवान हो तप रहे थे। वे अग्नि के समान अज्ञान अन्धकार को नष्ट कर पदार्थों को यथार्थ रुप में प्रकाशित करते थे।

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं
णेया मुणी कासव आसुपण्णे
इंदेव देवाण महाणुभावे
सहस्स णेया दिविणं विसिट्ठे ॥7॥

अन्वयार्थ – आसुपण्णे = शीघ्र बुध्दि वाले, कासव = काश्यप गोत्रिय, मुणी = मुनि, जिणाणं = जिनवरों के, इणं अणुत्तरं = इस सर्वश्रेष्ठ, धम्मं णेया = धर्म के प्रणेता है, दिविणं = स्वर्गलोक मे, सहस्स देवाणं = हजारों देवताओं का, इंदेव = इन्द्र नेता हैं, महाणुभावे विसिट्ठे = महान् प्रभावशाली है।

भावार्थ – शीघ्र पारगामी तीक्ष्ण बुध्दि वाले, काश्यप गौत्रवान् मुनि श्री वर्धमान स्वामी ऋषभादि जिनेश्वर भगवंतो के इस सर्वश्रेष्ठ धर्म के आद्य प्रणेता है। जिस तरह देवलोक मे हजारों देवताओं का नेता इन्द्र महान प्रभावशाली होता है उसी प्रकार भगवान् महावीर त्रिलोक मे सर्वोत्तम श्रेष्ठ, अद्वितीय महाप्रभावक है।

से पण्णया अक्खय सागरे वा,
महोदही वावि अणंत पारे
अणाइले वा अकसाइ मुक्के
सक्केव देवाहि वई जुइमं ॥8॥

अन्वयार्थ – से सागरे वा = वे श्रमण भगवान् महावीर समुद्र सदृश, पण्णया अक्खय = प्रज्ञा से अक्षय, महोदही वावि = स्वयं भू रमण समुद्र वत, अणंत पारे = असीम सामर्थ्यवान, अणाइले वा = निर्मल मतिमान, अकसाई = कषाय से रहित, मुक्के = संयोगो से विमुक्त, सक्केव = शकेन्द्र की तरह, देवाहि वई = देव के अधिपति, ज्जुइमं = अत्यन्त तेजस्वी है।

भावार्थ – भगवान् महावीर प्रज्ञा से समुद्र के समान अक्षय है, स्वयं

[illegible]

[illegible] है, [illegible]

[illegible] है

से वीरिएणं पडिपुण्ण वीरिए

सुदंसणे वा णग सव्व सेहे ।

सुरालए वासी मुदागरे से,

विरायए णेग गुणोव वेए ॥9॥

अन्वयार्थ- से = वे वर्धमान स्वामी, वीरिएणं = [illegible] पडिपुण्ण = पूर्ण शक्ति सम्पन्न, सुदंसणे वा = जिस प्रकार सुमेरु [illegible] सेहे = सब पर्वतों में श्रेष्ठ, सुरालये = देवलोग मे, वासि = रहने वाले को मुदागरे = हर्षित करने वाले, णेग गुणों–ववेए = अनेक गुणों से युक्त होकर विरायए = सुशोभित होता है ।

भावार्थ – वीर्यान्तराय कर्म का समूल उच्छेद करने से श्री वर्धमान स्वामी [illegible] से परिपूर्ण शक्ति सम्पन्न है, सब पर्वतो में सुमेरु पर्वत प्रधान है उसी प्रकार सर्व दर्शनों मे जिन दर्शन सर्वश्रेष्ठ है । जैसे देवलोक में रहने वालों को देवलोक हर्षजनक है वैसे ही वीर जिनेश्वर अनेक गुणों से सम्पन्न होने से अखिल विश्व को अपने गुणो से आनन्द देनेवाले है, अतः प्रीतिकर लगते हैं ।

जाइ जसो दंसण णाण सीले ॥14॥

अन्वयार्थ – महतो पव्वयस्स = महान सुमेरु पर्वत का, सुदंसणस्स गिरिस्स = सुदर्शन गिरि का, जसो पवुच्चई = यश कहा जाता है, [illegible] – एसो तरह, समणे णाय - पुत्ते एतोवमे = ज्ञात पुत्र श्रमण भगवान महावीर को इसी की उपमा दी जाती है, जाइ जसो दसण णाण सीले = जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील से श्रेष्ठ है ।

भावार्थ – उस महान् पर्वत सुदर्शन गिरि का यश पूर्वोक्त प्रकार से गया है, उसी के समान ज्ञातपुत्र श्रमण महावीर है । वे वीर भगवान [illegible] महान्, यश मे अद्वितीय, दर्शन मे अनुपमेय, ज्ञान मे [illegible] भी

सर्वोत्तम है। सर्वप्रधान उपमा देने की दृष्टि से ही यहां सुमेरु का परिचय दिया गया है।

गिरिवरे वा निसहाययाणं,
रुयए व सेट्ठे वलयायताणं
तओवमे से जग भूइ पण्णे,
मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे ॥15॥

अन्वयार्थ - आयाण = लम्बे आकार वाले, गिरिविरे = पर्वतो मे श्रेष्ठ, निसह व = निषध प्रधान है, वलयायताणं = वर्तुल पर्वतो मे, रुयए व = जैसा रुचक पर्वत, सेट्ठे = श्रेष्ट है, जगभूइ पण्णे = संसार मे अधिक बुध्दिमान को, तओवमे = वही उपमा है, पण्णे = बुध्दिमान, मुणीण मज्झे = मुनियो के मध्य मे, तमुदाहु = भगवान् महावीर को श्रेष्ठ कहते है।

भावार्थ – जेसे दीर्घ आकार वाले पर्वतो मे गिरिराज निषध प्रधान है, अथवा गोलाकार पर्वतों मे रुचक पर्वत श्रेष्ठ है, उसी तरह संसार के समस्त ज्ञानवान मुनियों मे सर्वोत्तम प्रज्ञावान भगवान् महावीर स्वामी है, ऐसा बुध्दिमान पुरुषो ने कहा है।

अणुतरं धम्म-मुई रइत्ता
अणुत्तरं झाण वर झियाइं
सुसुक्क सुक्कं अपगंड सुक्कं
संखिदु - एगंतवदात-सुक्कं ॥16॥

अन्वयार्थ - अणुत्तर धम्म - मुई रइत्ता = सर्वोतम श्रुत - चरित्र धर्म को कहकर, अणुत्तरं झाण वरं झियाइ = सर्वोत्तम श्रेष्ठ ध्यान ध्याते थे, सुसुक्क सुक्कं = श्रेष्ठ शुक्ल वस्तुवत् शुक्ल था, अपगड सुक्कं = दोष रहित शुक्ल था, संखिन्दु = शख और चन्द्रमा वत्, एगंतवदात सुक्कं = एकान्त रूप से विशुध्द शुक्ल।

भावार्थ - ज्ञान पुत्र श्रमण भगवान् महावीर सर्वोत्तम श्रेष्ठ, श्रुत और चारित्र धर्म का निरूपण करके अनुत्तर ध्यान करते थे। उनका ध्यान [illegible] शुक्ल वस्तु के समान शुक्ल, निर्दोष तथा शंख अथवा चन्द्रमा [illegible]

सर्वथा स्वच्छ और शुध्द होता था ।

अणुत्तरग्ग परमं महेसी
असेस कम्मं स विसोहइत्ता ।
सिध्दि गइ साइ – मणतपत्ते,
णाणेण सीलेण य दंसणेण ।।17।।

अन्वयार्थ – स महेसी = वे महर्षि, नाणेण सीलेणं य दसंणेण - ज्ञान, चरित्र और दर्शन से, असेस कम्मं = सम्पूर्ण कर्मो को, विसोहइत्ता = शोधन करके, अणुत्तरग्ग = सर्वोत्तम अग्र, परमं सिध्दि = प्रधानसिध्द, गई = गति को प्राप्त हुए, साइ - मणत पत्ते = जिसका आदि है, अन्त नही ।

भावार्थ – महर्षि वीर जिनेश्वर ने ज्ञान, शील और दर्शन के द्वारा सम्पूर्ण कर्मो का विशोधन - क्षय करके, सर्वोत्तम श्रेष्ठ सिध्दि प्राप्त की, जिसकी आदि तो है, अन्त नही है ।

रुक्खेसु णाए जह सामली वा
जसि रइं वेदयति सुवण्णा
वणेसु वा णंदण माहु सेड्ढ,
णाणेण सीलेण य भूइपण्णे ।।18।।

अन्वयार्थ – जह = जैसे, रुकखेसु णाए = वृक्षों मे जगत्प्रसिध्द, सामली वा - शाल्मली वृक्ष है, जसि - जिस पर, सुवण्णा - सुपर्ण = भवन पति विशेष, रइ वेदयइ = आनन्द का अनुभव करते है, वणेसु वा णदण सेड्ढ माहु = वनो मे सर्वश्रेष्ठ नन्दन वन कहा है, णाणेण सीलेण य भूइ पण्णे = ज्ञान और चरित्र से सर्वोत्तम श्रेष्ठ महावीर स्वामी को कहते है ।

भावार्थ – जैसे वृक्षो मे देवकुरु क्षेत्र मे रहा शाल्मली वृक्ष सर्वश्रेष्ठता के रुपमे प्रसिध्द है, उन पर भवनपति देव सुपर्णकुमार रमण का आनन्द लेते है अथवा सम्पूर्ण वनो मे नन्दन वन सर्वोत्तम देवो का क्रीडा स्थल है, उसी प्रकार जीवरक्षा की प्रमुख प्रज्ञा वाले भगवान् महावीर ज्ञान शील मे सर्वोत्तम कहे जाते है ।

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ
चंदोव ताराण महाणुभावे
गंधेसु वा चंदण माहु सेट्ठं
एवं मुणीणं अपडिण्णमाहु ।।19।।

अन्वयार्थ – सद्दाण= शब्दो मे थणियं = मेघ गर्जन, अणुत्तरे = प्रधान है और ताराणं = ताराओ मे, महाणुभावे चंदो = महा प्रभावी चन्द्रमा श्रेष्ठ है ,तथा गंधेसु चन्दण सेट्ठ माहु = गंधो मे चन्दन गन्ध श्रेष्ठ है । एव = इसी प्रकार मुणीण = मुनियो मे, अपडिण्णमाहु = कामना विमुक्त भगवान महावीर श्रेष्ठ कहे जाते हैं ।

भावार्थ – सम्पुर्ण शब्दो मे मेघगर्जन श्रेष्ठ है,समस्त नक्षत्रो मे प्रकाश वाला चन्द्रमा प्रधान है और गध वाले पदार्थो में गोशीर्ष चन्द्रन प्रधान है उसी प्रकार मुनियो मे नि.स्पृह निराकांक्षी महावीर को बुध्दिमान लोग सर्वश्रेष्ठ कहते है

जहा सयंभु उदहीण सेट्ठे
नागेसु वा धरणिंद –माहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रसवेजयंते ,
तवोवहाणे मुणि वेजयंते ।।20।।

अन्वयार्थ - जहा उदहीण = जैसे समुद्रो मे, संयभू सेट्टे = स्वयभू रमण समुद्र श्रेष्ठ है,नागेसु धरणिंद सेट्टे माहु = नाग कुमारो धरणेंद्र को श्रेष्ठ कहते है खोओदए वा रस वेजयंते = इक्षु रसोदक सब रसों मे श्रेष्ठ है,तवो वहाणे = विशिष्ट तप के कारण, मुणि वेजयंते = मुनि श्री भगवान् महावीर सर्वश्रेष्ठ है ।

भावार्थ – समुद्रों मे स्वयंभू रमण समुद्र श्रेष्ठ है, नाग कुमारो मे धरणेन्द्र प्रमुख है, इक्षु रसोदक सर्व रसवानो मे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त तपस्वियो में श्रमण महावीर स्वामी सर्वश्रेष्ठ है ।

हत्थीसु एरावण माहु णाए
सीहो मियाणं सलिलाण गंगा
पक्खी सु वा गरुले वेणुदेवे

णिव्वाण - वादीणिह णाय पुत्ते ॥21॥

अन्वयार्थ - हत्थीसुणाए = हाथियो में जगत्प्रसिध्द, एरावणमाहु = ऐरावत हाथी को कहते है, मियाणं सीहो = मृगो में सिह, सलिलाण गगा = नदियोमे गगा, पक्काखीसु वा गरुले वेणुदेवे = पक्षियो मे वेणु देव गरूड श्रेष्ठ है, इह निव्वाण वादीण = इस ससार मे मोक्ष वादियो मे, णाय पुत्ते = ज्ञात पुत्र महावीर प्रधान है ।

भावार्थ - इन्द्रवाहन रुप मे प्रसिध्द ऐरावत हाथी समग्र हाथियो मे श्रेष्ठ है, पशुओ मे वनराज सिह प्रमुख है, नदियो के ज लो मे गगा जल सर्वोत्तम है, पक्षियो मे वेणुदेव अर्थात् गरुड प्रधान है, उसी प्रकार निर्वाणवादियो मे ज्ञात पुत्र भगवान् महावीर सर्वश्रेष्ठ है ।

जोहेसु णाए जह वीस सेणे,
पुप्फेसु वा जह अरविंद माहु
खत्तीण सेड्डे जह दंतवक्के
इसीण सेड्डे तह वद्धमाणे ॥22॥

अन्वयार्थ - जहा णाए = जैसे जग जाहिर, वीससेणे जाहेसु = विश्वसेना वासुदेव योध्दाओ मे, सेड्ड = श्रेष्ठ है, जहा पुप्फुस = जैसे फूलो मे, अरविद माहु = कमल को प्रधान कहते है, जह खत्तीण = जैसे क्षत्रियो के मध्य मे, दत वक्के = दन्त वक्र चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, तह = उसी प्रकार, इसीण वध्दमाणे सेड्डे = ऋषियो मे वर्धमान स्वामी श्रेष्ठ हैं ।

भावार्थ - जैसे योध्दाओ मे वासुदेव जगत्प्रसिध्द योध्दा है, जैसे पुष्पो मे कमल पुष्प प्रधान है, जैसे क्षत्रियो मे दन्त चक्रवर्ती श्रेष्ठ है, उसी प्रकार ऋषियों मे वर्धमान स्वामी प्रधान है ।

दाणाण सेड्ड अभयप्पयाणं,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति
तवेसु वा उत्तम बंभ चेरं,
लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते ॥23॥

अन्वयार्थ – दाणाणं = समस्त दोनो मे, अभय - प्पयाणसेट्ठं = अभयदान श्रेष्ठ है, सच्चेसु = सत्य वचनो मे, अणवज्जं वयंति = पीडाकारी न हो, उस सत्य वचन को श्रेष्ठ कहते है, तवेसु = तपो मे, बभचेरं उत्तम = नव कोटि युक्त ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है, समणे = श्रमणो मे, णायुपुत्त = ज्ञात पुत्र वर्धमान स्वामी, लोगुत्तमे = संसार मे सर्वोत्तम है ।

भावार्थ – जगत् के सर्वदानो मे सर्वश्रेष्ठदान अभयदान है, समस्त सत्य वाक्यो में दु·ख न पहुँचाने, घात न करने वाला वाक्य श्रेष्ठ है, तपो ने नव बाड सहित ब्रह्मचर्य का पालन करना श्रेष्ठ तप है, उसी प्रकार ज्ञात पुत्र भगवान् महावीर तीन लोक मे सर्वोत्तम है ।

ठिईण सेट्ठा लव सत्तमा वा,
सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा ।
निव्वाण सेट्ठा जह सव्व धम्मा,
ण णाय पुत्ता परमत्थि णाणी ।।24।।

अन्वयार्थ – ठिईण = स्थिति वालो मे, लव सत्तामा = पॉच अणुत्तर विमानवासी देव, सेट्ठा = श्रेष्ठ है, सभाण = सब सभाओ मे, सुहम्मा सभा सेट्ठा = सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है, जह सव्व धम्मा = जैसे सर्वधर्मो मे, निव्वाण सेट्ठा = मोक्ष श्रेष्ठ है,ण णाय पुत्ता परमत्थि णाणी = ज्ञात पुत्र महावीर स्वामी से कोई श्रेष्ट ज्ञान वान् नही है ।

भावार्थ – जितने भी स्थिति वाले है, उनमे पॉच अनुत्तर विमानो मे रहने वाले देव सर्वोत्कृष्ट स्थितिवाले है, समस्त सभाओ मे सुधर्मा सभा अनेक क्रीडा स्थलो से सम्पन्न होने से श्रेष्ठ है, जैसे सभी धर्मो - कुप्रावचनिक भी अपने दर्शन को निर्वाण प्रदाता कहते हैं । अत· निर्वाण श्रेष्ठ है, इसी प्रकार ज्ञात पुत्र से श्रेष्ठ कोई ज्ञानवान नही है ।

पुढ़ो वमे धुणइ विगय गेहि
न सण्णिहिं कुव्वइ आसु पण्णे ।
तरिउं समुद्दं च महाभवोघं,

अभयंकरे वीर अणंत चक्खू ॥25॥

अन्वयार्थ - पुढोवमे = पृथ्वी के समान, सबके आधार भूत, धुणइ = कर्म मल को दूर करने वाले, विगय गेही = अनासक्त है, आसु पण्णे = तीव्र बुद्धि वाले, ण सण्णिहिं कुव्वइ = न संग्रह करते हैं । समुद्दं व = समुद्रवत्, महाभवोघं = विशाल संसार को, तरिउं = पार कर गये, अभयंकरे = प्राणियों को अभयदाता, वीर = महावीर जिनेश्वर, अणंत चक्खू = अनन्त दर्शन वाले हैं

भावार्थ - भगवान महावीर सर्वप्राणियों के लिए पृथ्वी के समान आधारभूत है, अष्ट प्रकार के कर्मदल समूह को नष्ट करनेवाले है, गृध्दि भाव से सर्वथा रहित है, सर्वत्र सर्वदा उपयोगवान है, किसी भी वस्तु की सन्निधि नही करते है, महाभयकर जन्म-मरण रुप संसार को तैर कर पाए हुए हैं, परम तत्व मोक्ष को प्राप्त हो गए हैं, अभ्यंकर है और अनन्त ज्ञान - दर्शन सम्पन्न है ।

कोहं च माणं च तहे व मायं
लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा
एयाणि वंता अरहा महेसी,
न कुव्वइ पावं ण कारवेइ ॥26॥

अनवयार्थ - अरहा महेसी = अरिहंत महर्षि, कोहं च माणं च तहेव मायं = क्रोध, मान और माया तथा उसी प्रकार, चउत्थं लोहं = चौथे रुप, एयाणि = इन, अज्झत्थ दोसा = अध्यात्म दोषो को, वंता = छोड करके, ण पावं कुव्वइ = न पाप करते है, न कारवेइ = न करवाते है ।

भावार्थ - अर्हन् महर्षि महावीर क्रोध, मान, माया और चौथे लोभ कषाय रुप आत्मा को विकृत करने वाली वैभाविक वृत्ति को त्याग करके चल रहे थे । वे स्वय न पापमय प्रवृत्ति का सेवन करते थे और न पाप का सेवन करवाते थे।

किरिया - किरिय वेणइयाणु वायं,
अण्णाणियाणं पडियच्च ठाण ।
से सव्व वाय इइ वेयइत्ता,
उवट्ठिए सजम दीह राय ॥27॥

अन्वयार्थ - किरिय - अकिरिय = क्रियावादी, अक्रियावादी के मत को वेणइया - अणुवायं = विनय वादी के कथन को, अण्णाणियाण = अज्ञान वदियों के, ठाणं = मत को, पडियच्च = जानकर, से इति = उस वीर प्रभु ने इस प्रकार, सव्व वायं = सब वादियों के मत को, वेयइत्ता = जानकर के, संजम दीह राय = संयम मे जीवन भर के लिए, उवट्ठिए = स्थित हुए है।

भावार्थ - क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी तथा अज्ञानवादियो के मत को जानकर, अर्थात् प्रतिति करके उस वीर प्रभु ने सभी वादो को जानकर जीवन - पर्यन्त सयम भाव मे स्थिर हुए।

से वारिया इत्थी सराइभत्तं,
उवहाणवं दुक्ख खयट्ठयाए।
लोगं विदित्ता आरं परं च,
सव्वं प्रभू वारिय सव्व वारं ॥28॥

अन्वयार्थ - से प्रभु = उन प्रभु महावीर स्वामी ने, सराइ भत्त इत्थी वारिया = रात्रि भोजन सहित स्त्री को छोडकर के, दुक्ख- खटट्ठयाए = दुखो को क्षय करने के लिए, उवहाणव = तपस्या मे लगे थे, आरं पर च लोग विदित्ता = इस लोक और परलोक को जानकर, सव्व वारं सव्वं वारिया = सब प्रकार के पापों को छोड दिया।

भावार्थ - प्रभु महावीर ने रात्रि भोजन के साथ - साथ स्त्री सेवन, ससर्ग का भी परित्याग कर दुःखों को क्षय करने के लिए तपश्चर्या मे लग गए। इस लोक और परलोक तथा इनके कारणों को जानकर के समस्त पापकर्मो का पूर्णरुपेण त्याग कर दिया था।

सोच्चा य धम्मं अरहंत भासियं,
समहियं अट्ठ - प ओव सुद्धं।
तं सद्दहणा य जणा अणाउ,
इंदेव देवाहिव आगमिस्संति ॥29॥

अन्वयार्थ - अरहंत भासियं = अरिहत देव द्वारा कथित, समाहियं =

युक्ति युक्त, अट्ठ - पओव - सुध्द = अर्थ और पदो से पूर्ण शुध्द, धम्म सोच्चा = धर्म को सुनकर, तू सदद हणा = उनमे श्रध्दान रखने वाले, जणा = मनुष्य, अणाउ = आयु कर्म रहित होकर मोक्ष को पाते है, या इदेव = अथवा वे इन्द्र, देवाहिव = देवताओ के अधिपति, आगमिस्सति = होते है ।

भावार्थ - अहिरत प्रभु द्वारा प्रतिपादित युक्ति- युक्त, अर्थ और पद दोनो दृष्टियो से निर्दोष धर्म को सुनकर उस पर जो श्रध्दा रखते है, वे भव्य जन आयुकर्म से रहित होकर मुक्ति को पाते है अथवा इन्द्र के समान देवताओ के स्वामी बनते है ।

७. दशवैकालिक के चार अध्ययन - अर्थसहित

दुमपुप्फिया प्रथम अध्ययन

धम्मो मंगलमुक्किटठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं णमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।।1।।

अन्वयार्थ - अहिंसा = प्राणियो की हिसा का त्याग करना तथा जीवो की रक्षा करना, संजमो - संयम और तवो = तपरुप धम्मो = श्रुत - चारित्र रुप धर्म, मंगलं = कल्याणकारी और उक्किट्ठं = श्रेष्ठ है । जस्स = जिसका , मणो = मन, सया = सदा, धम्मे - धर्म मे लगा रहता है, त = उसको, देवा = देव, वि-भी, नमंसंति = नमस्कार करते है ।।1।।

भावार्थ - श्रुत - चारित्र रुप धर्म मे लीन प्राणी देवो का भी पूज्य बन जाता है ।

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रस ।
ण य पुप्फंकिलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ।।2।।

अन्वयार्थ - जहा = जिस प्रकार, भमरो = भ्रमर, दुमस्स = वृक्ष के, पुप्फेसु = फूलों में से, रसं = रस को, आवियइ = पीता है, य = और, पुप्फं = फूल को, ण किलामेइ = पीड़ित नही करता, य = और सो = वह भ्रमर, अप्पयं = अपनी आत्मा को, पीणेइ = संतुष्ट कर लेता है ।।2।।

भावार्थ - जैसे भ्रमर अनेक वृक्षो के फूलों से थोडा-थोडा रस चूसता है । इस प्रकार वह फूलो को कष्ट नही पहुचाता हुआ अपनी आत्मा को संतुष्ट कर लेता है ।

एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ।।3।।

अन्वयार्थ - एमेए = इसी प्रकार ये, लोए = लोक मे, जे = जो, मुत्ता = द्रव्य भाव परिग्रह से मुक्त, समणा = श्रमण तपस्वी, साहुणो = साधु, संति = है वे, पुप्फेसु = फूलो मे, विहगमा = पक्षियों के, व = समान, दाणभत्तेसणे = दाता द्वारा दिए हुए आहारादि की गवेषणा मे, रया = रत रहते है ।।3।।

भावार्थ - साधु, गृहस्थियो को असुविधा न पहुचाते हुए अनेक घरो से थोडा थोडा प्रासुक आहारादि ग्रहण करने मे ठीक उसी प्रकार रत रहते है,

त्यागता है, वह सकप्पस्स = इच्छाओ के, वस गओ = वश मे होकर, पए पए = पद - पद पर, विसीअंतो = खेदित होकर, सामण्णं = श्रमण धर्म का, कहु नु = किस प्रकार, कुज्जा = पालन कर सकता है ।।1।।

भावार्थ – जो इन्द्रियो के विषयो का त्याग नहीं करता, उसकी इच्छाए हमेशा बढती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता । सन्तोष न होने से मानसिक कष्ट होता है, जिससे चारित्र-धर्म की आराधना नही हो सकती । अतः सर्वप्रथम इन्द्रियो को वश में करना चाहिए ।

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ ।।2।।

अन्वयार्थ – जे = जो पुरुष, अच्छंदा = पराधीन होने के कारण, वत्थ = वस्त्र, गंध = गन्ध, अलकारं = आभूषण, इत्थीओ - स्त्रीयों को और सयणाणि = शय्या को, न = नही, भुंजंति = भोगता है, से = वह, चाइत्ति = त्यागी, ण = नही, वुच्चइ = कहा जाता है ।।2।।

भावार्थ – जो पुरुष रोग आदि किसी कारण से पराधीन होकर विषयों का सेवन नही कर सकता, वह त्यागी नही कहलाता, किन्तु अपनी इच्छा से विषयों का त्याग करने वाला ही वास्तव मे सच्चा त्यागी कहलाता है।

जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठीकुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ ।।3।।

अन्वयार्थ – जे = जो पुरुष, लध्दे - प्राप्त हुए, वि = भी, कंते = मनोहर, पिए = प्रिय, भोए = भोगने योग्य, य = और, साहीणे = स्वाधीन, भोए = भोगो को, पिट्ठिकुव्वइ = उदासीनतापूर्वक, चयई = त्याग देता है, से = वह, हु =निश्चय से, चाइत्ति = त्यागी, वुच्चइ = कहलाता है ।

भावार्थ – भोगो की प्राप्ति होने पर भी और भोगो की स्वतत्रता रहते हुए भी जो भोगो को नहीं भोगता, वही आदर्श त्यागी कहलाता है ।

समाइ पेहाए परिव्वयंतो सिया मणो निस्सरइ बहिद्धा ।
ण सा महं णोवि अहं पि तीसे, इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ।।4।।

अन्वयार्थ – समाइपेहाए = समभाव पूर्वक, परिव्वयतो = संयम मार्ग मे

विचरण करते हुए साधु का, मणो = मन, सिया = कभी, बहिध्दा = सयम से बाहर, निस्सरइ - निकल जाए तो, सा = वह स्त्री, मह = मेरी, ण = नही है, और, अह = मै, पि =भी, तीसे-उसका, णो वि = नही हू, इच्चेव = इस प्रकार विचार कर, ताओ = उस स्त्री पर से, राग = राग भाव को, विणएज्ज् = दूर करे ।।4।।

आयावयाही चय सोगमल्लं । कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं ।।
छिदाहि दोस विणएज्ज रागं । एवं सुही होहिसि सपराए ।।5।।

अन्वयार्थ – आयावयाही = आतापना लो और शरीर को तपस्या से सुखा डालो, सोगमल्ल = सुकुमारता को, चय = त्याग दो, कामे = काम-भोगो को, कमाही = दूर करो, खु = निश्चय ही, दुक्ख = दु ख,कमियं = दूर होगा, दोस = द्वेष को, छिदाहि = नष्ट करो, राग = राग को, विणइज्ज = दूर करो, एव = ऐसा करने से, सपराए = ससार मे, सुही = सुखी, होहिसि = होओगे ।।5।।

भावार्थ – पूर्वोक्त गाथा मे सूत्रकर्त्ता ने मनोनिग्रह का अन्तरग उपाय बतलाया है। अब मनोनिग्रह का बाह्य उपाय बतलाते हुए कहते है कि सयम से बाहर जाते हुए मन को वश मे करने के लिए शरीर की सुकोमलता का त्याग कर के ऋतु अनुसार आतापना लेनी चाहिए, तपस्या करनी चाहिए और राग - द्वेष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए । ऐसा करने से प्राणी सुखी होता है। .

पक्खदे जलिय जोइं, धूमकेउं दूरासयं ।
णेच्छति वतयं भोतु, कुले जाया अगंधणे ।।6।।

अन्वयार्थ – अगधणे = अगन्धन नामक, कुले = कुल मे, जाया = उत्पन्न हुए सर्प, जलिय = जलती हुई, धूमकेउ = धुआ निकलती हुई = दुरासय कठिनाई से सहने योग्य, जोइ = अग्नि मे, पक्खदे = गिर जाते है किन्तु, वतय - वमन किए हुए विष को, भुत्तु = भोगने की, न इच्छति = इच्छा नही करते ।।6।।

भावार्थ – सती राजमती रथनेमि से कहती है कि अगधन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प, अग्नि मे जल कर मर जाना तो पसद करते है, किन्तु उगले हुए विष को पुन पीना नही चाहते ।

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वंत इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥7॥

अन्वयार्थ – अजसोकामी = हे अपयश के इच्छुक ! ते = तुझे, धिरत्थु = धिक्कार हो, जो = जो, तं = तू जीवियकारणा = असयम रुप जीवन के लिए, वतं = वमन किए हुए को, आवेउं-पीना, इच्छसि = चाहता है। इसकी अपेक्षा तो, ते = तेरे लिए, मरणं = मर जाना, सेयं = श्रेष्ठ, भवे है ॥7॥

भावार्थ – सती राजमती चंचल चित्त बने हुए रथनेमि को सयम स्थिर करने के लिए उपदेश देती है कि संयम धारण कर के असंयम मे आना निन्दनीय है। ऐसे असंयम पूर्ण और पतित जीवन की अपेक्षा तो सयमावस्था मे मृत्यु हो जाना अच्छा है।

अहं च भोगरायस्स, तं चसि अंधगवण्हिणो।
मा कुले गंधणा होमो, संजम णिहुओ चर ॥8॥

अन्वयार्थ – अहं च = मै राजमती, भोगरायस्स = भोजराज उग्रसेन की पुत्री हूँ, च = और, तं = तू, अंधगवण्हिणो = अन्धकवृष्णि = समुद्रविजय का पुत्र,असि = है, गधणा कुले = गन्धन कुल मे उत्पन्न सर्प के समान, मा होमो = मत हो, निहुओ = मन को स्थर रखकर, संजमं = संयम का, चर पालन कर ॥8॥

भावार्थ – राजमती, रथनेमि से कहती है कि हम दोनो उच्च कुल मे उत्पन्न हुए है। अत· उगले हुए विष को पुनः पी जाने वाले गन्धन कुल के सॉप के समान न होना चाहिए।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारीओ।
वाया-विद्धोव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥9॥

अन्वयार्थ – तं = हे मुनि ! तुम, जा = जा = जिन = जिन, नारीओ स्त्रियो को,दिच्छसि = देखोगे, जइ = यदि उन-उन पर, भावं = बुरे भाव, काहिसी = करोगे तो, वाया-विध्दोव्व = वायु से प्रेरीत, हडो व्व = हड नामक वनस्पती की भाति, अट्ठि अप्पा = अस्तिर आत्मा वाले, भविस्ससि = हो जाओगे ॥9॥

भावार्थ – राजमती रथनेमि से कहती है कि है मुनि। जिस किसी भी स्त्री को देखकर यदि तुम इस प्रकार काम - मोहित हो जाओगे, तो जैसे समुद्र के किनारे खडा हुआ हड नाम का वृक्ष हवा के एक झोके से समुद्र मे गिर पडता है, वैसे तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जाएगी।

तीसे सो वयणं सोच्चा, सजयाइ सुभासियं।
अकुसेण जहा णागो, धम्मे सपडिवाइओ ॥10॥

अन्वयार्थ - सो = वह, रथनेमि, तीसे = उस, सजयाइ = सयमवती साध्वी के, सुभासिय = सुभाषित, वयण = वचन, सोच्चा = सुनकर, धम्मे = धर्म मे, सपडिवाइओ = स्थिर हो गया, जहा = जैसे, अकुसेण = अकुश से, णागो = हाथी वश मे हो जाता है।

भावार्थ – ब्रह्मचारिणी राजमती के सुन्दर वचन सुनकर रथनेमि धर्म - मार्ग मे उसी प्रकार स्थिर हो गए, जिस प्रकार अकुश से हाथी वश मे हो जाता है।

एवं करेति संबुद्धा, पडिया पवियक्खणा।
विणियट्टति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो। त्ति बेमि।

अन्वयार्थ – सबुध्दा = तत्वज्ञ, पंडिया = पाप से डरने वाले पण्डित, पवियक्खणा = विचक्षण मनुष्य, एव = ऐसा ही, करेति = करते है अर्थात् भोगेसु = भोगो से, विणियट्टति - निवृत्त हो जाते है, जहा = जैसे, से = वह पुरिसुत्तमो = पुरुषो में उत्तम रथनेमि भोगो से निवृत्त हो गया ॥11॥ त्ति बेमि = हे जम्बू। जैसा मैने भगवान से सुना है, वैसा ही कहता हूँ।

भावार्थ – जो विवेकी होते है, वे विषय - भोगो के दोषो को जानकर उनका परित्याग उसी प्रकार कर देते है, जैसे रथनेमि ने कर दिया।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

खुड्डियायार तीसरा अध्ययन

जो निर्ग्रन्थ महर्षियो के आचरण करने योग्य नही है, ऐसे 52 अनाचार

का वर्णन इस अध्ययन में किया गया है ।

संजमे सुट्ठिअप्पाणं, विप्पमुक्काण ताइणं ।
तेसिमेयमणाइण्णं, णिग्गंथाणं महेसिणं ।।1।।

अन्वयार्थ – सजमे = सयम में, सुट्ठिअप्पाणं = भली भांति स्थिर आत्मा वाले, विप्पमुक्काण = सांसारिक बन्धनों से रहित, ताइणं = छः काय जीवो के रक्षक, तेसिं = उन, निग्गंथाण = परिग्रह रहित, महेसिण = महर्षियो के, एय = ये = आगे कहे जाने वाले, अणाइण्णं = अनाचार है ।

उद्देसियं कीयगडं णियागमभिहडाणि य ।
राइभत्ते सिणाणे य, गंधमल्ले य वीयणे ।।2।।

अन्वयार्थ – 1 उध्देसिय = औद्देशिक, 2. कीयगडं = साधु के लिए खरीदा हुआ, 3. नियागं = किसी का आमत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार, 4 अभिहडाणि = साधु के लिए सामने लाया हुआ, य = और 5 राइभत्ते = रात्रि भोजन, य = और 6 सिणाणे = स्नान, 7. गध-सुगधित पदार्थो का सेवन, 8. मल्ले = फूला दि की माला, य = और 9 वीयणे = पंखादि से हवा लेना ।।2।।

सण्णिही गिहिमत्ते य, रायपिडे किमिच्छए ।
संवाहणा दंतपहोयणा य, संपुच्छणा देहपलोयणा य ।।3।।

अन्वयार्थ – 10, संनिही = घी गुड आदि वस्तुओ का सचय करना, 11. गिहिमत्ते = गृहस्थ के पात्र मे भोजन करना, य = और, 12 रायपिडे = राजपिंड का ग्रहण करना, 13, किमिच्छए = तुमको क्या चाहिए इसप्रकार याचक से पूछकर जहां उसकी इच्छानुसार दान दिया जाता हो, ऐसी दानशाला आदि से आहारादि लेना, 14. संवाहणा = मर्दन करना, य = और, 15 दंतपहोयणा = अंगुली आदि से दांत धोना, 16 सपुच्छणा = गृहस्थो से सावद्य कुशल = प्रश्न आदि पूछना, य = और 17 देहपलोयणा = दर्पण

आदि से कुछ देखना ।3।

अट्ठावए य नालीए, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो ।।4।।

अन्वयार्थ - 18. अट्ठावए = जुआ खेलना, य = और, नालीए = चौपड़ = पासा शतरंज आदि खेलना, य = और 19. छत्तस्स धारणट्ठाए = छत्र धारण करना, 20. तेगिच्छं = रोग का इलाज करना, 21. पाए पाहणा = पैरों मे जूते आदि पहिनना, च = और 22. जोइणो = अग्नि का, समारंभं = आरम्भ करना ।।4।।

सिज्जायरपिंडं च, आसंदी पलियंकए ।
गिहंतरणिसेज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य ।।5।।

अन्वयार्थ - 23. सिज्जायरपिंडं = शय्यातर का आहार लेना, च = और, 24. आसंदी = बेत आदि के बने हुए आसन पर बैठना, 25 पलियंकए = पलग पर बैठना, 26 गिहंतरणिसिज्जा = गृहस्थ के घर बैठना या दो घरों के बीच बैठना, य = और, 27 गायस्सुव्वट्टणाणि = मैल उतारने के लिए शरीर पर उबटन करना ।

गिहिणो वेयावडियं, जा य आजीववत्तिया ।
तत्ता णिव्वुड भोइत्तं, आउरस्सरणाणि य ।।6।।

अन्वयार्थ - 28 गिहिणो = गृहस्थ की, वेयावडिय = वैयावृत्य करना अर्थात् उसे आहारादि देना, य = और, जा = जो, 29 आजीववत्तिया = जाति, कुल आदि बताकर आजीविका करना, 30 तत्तानिव्वुडभोइत्तं = जो अच्छी तरह से प्रासुक नहीं हुआ है, ऐसे मिश्र आहार पानी का सेवन करना, य = और, 31 आउरस्सरणाणि = रोग अथवा भूख से पीड़ित होने पर पहले भोगे हुए पदार्थों को याद करना या शरण चाहना ।।6।।

मूलए सिगबेरे य, उच्छुखंडे अणिव्वुडे ।

कंदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए ।।7।।

अन्वयार्थ - 32 अनिव्वुडे = सचित्त, मूलए - मुल्ला, य = और 33 सिंगबेरे = अदरख, 34 उच्छुखंडे = इक्षुखण्ड- गंडेरी, य = और, 35 कंदे = कन्द वज्रकन्द आदि, 36. सच्चित्ते = सचित्त, मूले = मूल = जड, 37 फले = फल, आम, नीबू आदि, य = और 38 आमए = सचित्त, बीए - तिलादि बीजो का सेवन करना ।।7।।

सोवच्चले सिधवे लोणे, रोमालोणे य आमए ।
सामुद्दे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए ।।8।।

अन्वयार्थ - 39 आमए = सचित्त, सोवच्चले = संचल नमक, 40 सिधवे लोणे = सैन्धव नमक, 41 रोमालोणे = रोमा नमक, 42 सामुद्दे = समुद्र का नमक, य = और 43 पंसुखारे = ऊषर नमक, य = और 44 आमए = सचित्त, कालालोणे = काला नमक का सेवन करना ।।8।।

धूवणे त्ति वमणे य, वत्थीकम्म विरेयणे ।
अंजणे दंतवणे य, गायब्भंगविभूसणे ।।9।।

अन्वयार्थ - 45 धूवणे त्ति = अपने वस्त्र आदि को धूप दे कर सुगन्धित करना,य = और 46 वमणे = औषधिआदि से वमन करना, 47 वत्थीकम्म = मलादि की शुध्दि के लिए बस्ती कर्म करना, 48 विरेयणे = जुलाब लेना, 49 अंजणे = आंखो मे अंजन लगाना, 51. गायाब्भग = सहस्त्रपाक आदि तेलो से शरीर की मालिश करना, य = और 52. विभूसणे = शरीर को विभूषित करना ।।9।।

सव्वमेयमणाइण्णं, णिग्गंथाण महेसिणं ।
सजमम्मि य जुत्ताण, लहुभूयविहारिणं ।।10।।

अन्वयार्थ - सजमम्मि = संयम, य = और तप मे,जुत्ताणं = लगे हुए,

लहुभूयविहारिण = वायु के समान अप्रतिबध विहार करने वाले,निग्गथाण = निग्रथ, महेसिण = महर्षिणो के, एय = ये,सव्व = सभी, आणइन्न = अनाचार है ।।10।।

पंचासव परिण्णाया, तिगुत्ता छसु सजया ।
पचणिग्गहणा धीरा, णिग्गथा उज्जुदसिणो ।।11।।

अन्वयार्थ - पंचासवपरिण्णाया = पाच आश्रवो के त्यागी, तिगुत्ता = मन, वचन और काय = गुप्ति से युक्त, छसु सजया = छ काय जीवो की रक्षा करने वाले, पचनिग्गहणा = पाच इन्द्रियो के निग्रह करने वाले, धीरा = परीषह उपसर्ग सहन करने मे धीर, उज्जुदसिणो = सरल स्वभावी, निग्गथा = निर्ग्रन्थ होते है ।।11।।

आयावयंति गिम्हेसु, हेमतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसलीणा, संजया सुसमाहिया ।।12।।

अन्वयार्थ - सुसमाहिया = प्रशस्त समाधिवत, संजया = सयमी मुनि, गिम्हेसु = ग्रीष्म ऋतु मे, आयावयति = सूर्य की आतापना लेते है, हेमतेसु = हेमत ऋतु मे, अवाउडा = अल्प वस्त्र या वस्त्र रहित रहते है, वासासु = वर्षा ऋतु मे, पडिसंलीणा = कछुए की तरह इन्द्रियो को वश मे करके रहते है ।।12।।

भावार्थ - जिस ऋतु मे जिस प्रकार की तपस्या से अधिक कायक्लेश होता है, उस ऋतु मे मुनि वही तपस्या करते है ।

परीसहरिउदंता, धूयमोहा जिइंदिया ।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ।।13।।

अन्वयार्थ - परीसहरिउदता = परीषह रुपी शत्रुओ को जीतने वाले, धूयमोहा = मोह,ममता के त्यागी, जिइदिया = इद्रियो को जीतने वाले, महेसिणो = महर्षि, सव्वदुक्खपहीणट्ठा = सभी दु खो का नाश करने के लिए, मोक्ष प्राप्ति के लिए, पक्कमति = पराक्रम करते है = सयम ओर तप मे प्रवृत्त होते है ।।13।।

दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहित्तु य।
के इत्थदेवलोएसु, केइ सिज्झंति णीरया ।।14।।

अन्वयार्थ – दुक्कराई = दुष्कर क्रियाओं को, करित्ताणं = कर के, य = और, दुस्सहाइ = दु:सह कष्टो को, सहित्तु = सहनकर के, केइ = कितनेक, देवलोएसु = देवलोकों मे उत्पन्न होते है और केइत्थ = कई इसी भव मे, णीरया = कर्म - रज से रहित हो कर, सिज्झंति = सिध्द हो जाते है - मोक्ष चले जाते है ।।14।।

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
सिध्दिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे। त्ति बेमि।

अन्वयार्थ – सिध्दिमग्ग = मोक्षमार्ग के, अणुप्पत्ता = साधक, ताइणो = छः काय जीवो के रक्षक मुनि, संजमेण = संयम से, य = और, तवेण = तप से, पुव्वकम्माइं = पहले बध हुए कर्मो को, खवित्ता = क्षय कर के , परिनिव्वुडे = निर्वाण प्राप्त करते हैं ।।15।। त्ति बेमि = पूर्ववत ।

छज्जीवणिया चतुर्थ अध्ययन

इस अध्ययन में छः काय जीवों का स्वरुप तथा उसकी रक्षा का उपाय बतलाया गया है –

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं, इह खलुछज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता सेय मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ।।1।।

अन्वयार्थ – आउसं = हे आयुष्यमन् शिष्य । मे = मैने, सुय-सुना है कि, तेण = उन, भगवया = भगवान् ने, एव - इस प्रकार, अक्खाय = कहा है कि, इह = इस जिनशासन मे, खलु = निश्चय से, छज्जीवणिया = छ काय के जीवो का कथन करने वाला, नाम = नामक, अज्झयण = अध्ययन है, समणेणं = श्रमण - तपस्वी, कासवेण = काश्यपगोत्रीय, भगवया = भगवान, महावीरेण = महावीर ने, पइया = सम्यक प्रकार से उसकी प्रुपणा की है, सुयक्खाया = सम्यक् प्रकार से कथन किया है, सुपण्णत्ता = भली प्रकार से बतलाया है । शिष्य ने पूछा = भगवन् । क्या, अज्झयण = उस अध्ययन का,

अहिज्जिउ = अध्ययन करना = सीखना, मे - मेरे लिए, सेयं = कल्याणकारी है। गुरु ने कहा = हाँ। धम्मपण्णत्ती - उस अध्ययन को सीखने से धर्म का बोध होता है।

कयरा खलु सा छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउ अज्झयण धम्मपण्णत्ती ||2||

अन्वयार्थ - कयरा = वह छज्जीवणिया अध्ययन कौन-सा है,जिसका अध्ययन करने मेरे लिए कल्याणकारी है। शेष शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है।

इमा खलु या छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता सेय मे अहिज्जिउ अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ||3||

अन्वयार्थ - अब गुरु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते है कि इमा - वह छज्जीवणिया अध्ययन इस प्रकार है। शेष शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है।

तजहा-पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया।

अन्वयार्थ - तंजहा = जैसे कि, पुढविकाइया = पृथ्वीकायिक = पृथ्वीकाय के जीव, आउकाइया = अप्कायिक (जल) के जीव, तेउकाइया = तेउकायिक (अग्निकाय) संबधी जीव, वाउकाइया = वायु के जीव, वणस्सइकाइया = वनस्पतिकाय के जीव, तसकाइया = त्रस काय के जीव।

पुढवी चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण। आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएण। तेऊ चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएण। वाऊचित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएण। वणस्सई चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएण ||4||

अन्वयार्थ - सत्थपरिणएण = शस्त्र - परिणत के, अण्णत्थ = अतिरिक्त

पुढयी = पृथ्वीकाय, आऊ = अप्काय, तेऊ = अग्निकाय, वाऊ = वायुकाय और, वणस्सई = वनस्पतिकाय, चित्तमंतमक्खाया = सचित्त कही गई है, अणेगजीवा = यह अनेक जीवो वाली है, पुढोसत्ता = उसमें अनेक जीव पृथक् = पृथक रहे हुए है। पाचो स्थावरकाय सचित्त है । वे अनेक जीव रुप है । उन जीवो का अस्तित्व पृथक - पृथक है । इन कायो के जो - जो शस्त्र है, उनसे जब तक परिणत न हो जाए अर्थात् दूसरा शस्त्र न लग जाए, तब तक ये सचित्त रहते है। शस्त्र - परिणत होने पर अचित्त हो जाते है । आगे वनस्पतिकाय का विशेष वर्णन करते है।

तंजहा – अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया बीयरुहा सम्मुच्छिमा, तणलया, वणस्सइ काइया सबीया चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अण्णत्थ सत्थपरिणएणं ।।5।।

अन्वयार्थ – तंजहा = वह इस प्रकार है, अग्गबीया = ऐसी वनस्पति जिसका बीज अग्रभाग पर होता है, जैसे कोरट का वृक्ष, मूलबीया = जिसका बीज मूल् भाग मे होता है, जैसे कुद् आदि, पोरबीया = जिसका बीज (पर्व गॉठ) में होता है, जैसे गन्ना आदि, खंधबीया = जिसका बीज स्कन्ध मे होता है, जैसे बड, पीपल आदि, बीयरुहा = बीज से उगने वाली वनस्पति, जैसे चौबीस प्रकार के धान्य, संमुच्छिमा = बिना बीज के अपने आप उत्पन्न होने वाली वनस्पति, जैसे अंकुर आदि, तणलया = तृण, लता आदि ये सब, वणस्सइकाइया = वनस्पतिकायिक है, अणेगजीवा = उसमे अनेक जीव है, पुढोसत्ता = वे भिन्न - भिन्न सत्ता वाले है, सत्थपरिणएण = शस्त्र परिणत के, अन्नत्थ = अतिरिक्त, सबीया = बीज सहित वनस्पति, चित्तमतमक्खाणा = सचित्त कही गई है । अब त्रसकाय का वर्णन किया जाता है -

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा, तंजहा – अंया, पोयया जराउया, रसया, संसेइमा, संमुच्छिमा, उब्भिया, उववाइया । जेसिं केसिं च पाणाण, अभिक्कंतं, पडिक्कंतं, संकुचियं, पसारियं, रुयं, भंतं, तसिय, पलाइयं आगइगइविण्णाया, जे य कीडपयंगा, जा य कुंथु–पिवीलिया, सव्वे बेइंदिया सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया , सव्वे णेरइया, सव्वे मणुआ, सव्वे देवा, सव्वे पाणा परमाहम्मिया । एसो खलु

छट्ठो जीवणिकाओ तसकाओत्ति पवुच्चइ ।।6।।

अन्वयार्थ – से = अब, जे = जो, इमे = ये आगे कहे जाने वाले, तसा पाणा = त्रस प्राणी है, वे पुण = फिर, अणेगे = अनेक तथा, बहवे = बहुत प्रकार के है । तजहा = जैसे कि,अडया- अडे से उत्पन्न होने वाले, पोयया = पोतज (जन्म के समय चर्म से आवृत्त होकर कोथली सहित उत्पन्न होने वाले), जराउया = जरायु सहित पैदा होने वाले, रसया = रस मे उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रियादि, ससेइमा = पसीने से उत्पन्न होने वाले, समुच्छिमा = समूर्च्छिम (देव नारकी के अतिरिक्त बिना माता - पिता के सयोग से होने वाली जीवों की उत्पत्ति), उब्भिया : जमीन फोडकर उत्पन्न होने वाले, उववाइया - उपपात जन्म वाले देव नारकी आदि, जेसि केसि च = इनमे से कोई - कोई, पाणाण = प्राणी, अभिक्कंतं = सामने आना , पडिक्कत = पीछे सरकना, सकुचिय = शरीर को सकुचित कर लेना, पसारिय = शरीर को फैलाना, रुय - शव्द का उच्चारण करना, भतं = इधर - उधर भ्रमण करना, तसिय = भयभीत होना, पलाइय = डर से भागना, आगइगइ = आगति और गति, वित्राया = आदि क्रियाओ को जानने वाले है, य = और जे = जो, कीडपयंगा = कीडे ओर पतगे है, ये = और जा = जो, कुथुपिपीलिया - कुथुवा और चीटियॉ है, वे सव्वं = सभी बेइदिया = बेइन्द्रिय, सव्वे = सभी, तेइदिया = तेइंद्रिय, सव्वे = सभी, चउरिदिया = चौरिन्द्रिय,सव्वे-सभी, पचिदिया = पंचेन्द्रिय, सव्वे = सभी, तिरिक्खजोणिया = तिर्यंच, सव्वे = सभी, नेरइया = नारकी के जीव, सव्वे = सभी, मणुआ = मनुष्य, सव्वे = सभी,देवा-देव, सव्वे = सभी, पाणा = प्राणो, परमाहम्मिया = परम सुख के अभिलाषी है । ऐसो = यह, खलु = निश्चय करके छट्ठो = छठा, जीवनिकाओ - जीवनिकाय, तसकाओत्ति = त्रसकाय, पवुच्चइ = कहा जाता है।

भावार्थ – सभी प्राणी सुख को चाहते है । अत· किसी की हिसा नही करनी चाहिए ।

इच्चेसिं छण्ह जीवाणिकायाणं नेव सयं दडं समारभिज्जा, णेवन्नेहि दडं समारभाविज्जा, दडं समारभंतेऽवि अण्णे ण समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएण ण करेमि, ण कारवेमि, करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाण

वोसिरामि ॥7॥

अन्वयार्थ - मुनि, इच्चेसि = इन, छण्हं = छ :, जीवनिकायाण - जीवनिकायो के, दडं = हिस रुप दंड का, सयं = स्वयं, नेव समारंभिज्जा - आरम्भ न करे, अन्नेहिं = दूसरो से, दंडं = हिसा रुप दड का, नेव समारभाविज्जा = आरम्भ न करावे और, दंडं = हिंसा रुप दण्ड का, समारभते = आरम्भ करते हुए , अन्नेऽवि = अन्य जीवों को, न समणुजाणिज्जा = भला भी न समझे । अव शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् । मै, जावज्जीवाए - जीवन पर्यत, तिविहं - तीन करण से करना, कराना और अनुमोदना से ओर तिविहेणं - तीन योग अर्थात्, मणेण - मन से, वायाए = वचन से, और काएण = काया से, न करेमि = न करुँगा, न कारवेमि = न कराऊँगा और करतंपि = करते हुए, अन्नं = दूसरे को, न समणुजाणामि = भला भी नही समझूँगा । भंते = हे भगवन् । तस्स - उस दण्ड का, पडिक्कमामि - प्रतिक्रमण करता हूँ , निदामि = आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ, गरिहामि = गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ । अप्पाणं = हिंसा - दण्ड सेवन करने वाले पापात्मा को, वोसिरामि = त्यागता हूँ।

पढमे भंते । महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं । सव्वं भंते । पाणाइवाय पच्चक्खामि । से सुहुमं वा, बायरं वा, तसं वा, थावरं वा, णेव सय पाणे अइवाइज्जा, णेवण्णेहिं, पाणे अइवायाविज्जा पाणे अइवायंते वि अण्णे ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते । पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । पढमे भंते । महव्वए उवट्ठिओमि, सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं ॥8॥

अन्वयार्थ - भते = हे भगवान । पढ मे = प्रथम ,महव्वए = महाव्रत मे पाणाइवायाओ = प्राणातिपात से, वेरमणं = निवर्तन होता है, अत, भंते = हे भगवन् । मै, सव्वं = सभी प्रकार की, पाणाइवायं = प्राणातिपात रुप हिसा का, पच्चक्खामि = त्याग करता हूँ , से = अभी से लेकर, सुहुमं = सूक्ष्म, वा अथवा, बायर-बादर, तसं- त्रस, वा = अथवा, थावरं = स्थावर प्राणियो के, पाणे = प्राणों को, सयं = स्वयं, न अइवाइज्जा = हनन नही करुँगा और नेव- न, अन्नेहि = दूसरो से, पाणे = प्राणियो के प्राणो का, अइवायाविज्जा = हनन

कराऊगा। पाण = प्राणियो के प्राणो का। अइवायते = हनन करने वाले, अन्नेऽवि - दूसरो को, न समणुजाणिज्जा - भला भी नही जानूँगा, जावज्जीवाए = जीवन पर्यन्त, तिविह - तीन करण (करना, कराना, अनुमोदना) से, तिविहेण = तीन योग अर्थात् मणेण = मन से, वायाए = वचन से, काएण - काया से, न करेमि = न करूँगा, न कारवेमि = न कराऊगा, करतपि = करते हुए, अन्ने = दूसरो को, न समणुजाणाणि = भला भी नही समझूँगा, भते = हे भगवन् । मै तस्स = उस हिसा रुपी पाप से, पडिक्कामि = निवृत्त होता हूँ, निदामि - उस पाप की निदा करता हूं, गरिहामि = गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ, अप्पाण - हिंसा रुप दड सेवन करने वाली आत्मा को, वोसिरामि = त्यागता हूँ, भते = हे भगवन् । मै सव्वाओ = सभी, पाणाइवायाओ = प्राणातिपात से, वेरमणं = निवृत्ति रुप, पढमे - प्रथम, महव्वए = महाव्रत मे, उवट्ठिओमि = उपस्थित होता हूँ ।

भावार्थ – शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् । मै प्रथम महाव्रत के पालन मे सावधान होता हूँ और पूर्वकाल मे किए हुए हिसा सबधी पाप से निवृत्त होता हूँ ।

अहावरे दुच्चे भंते । महव्वए मुसावायाओ वेरमणं । सव्व भते ! मुसावाय पच्चक्खामि, से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा, णेव सय मुस वइज्जा, णेवण्णेहि मुसं वायाविज्जा, मुसं वयंते वि अण्णे ण समुणजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि करत पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते । पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । दुच्चे भंते । महव्वए उवट्ठिओमि, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण ॥9॥

अन्वयार्थ – भते = भगवन् । अहावरे - इसके बाद, दुच्चे - दूसरे, महव्वए - महाव्रत मे, मुसावायाओ = मृषावाद से,वेरमण = निवर्तन होता है । भंते = हे भगवन् । मै, सव्व = सभी प्रकार के, मुसावाय = मृषावाद का, पच्चक्खामि - त्याग करता हूँ । से = वह इस प्रकार, कोहा = क्रोध से, वा = अथवा, लोहा वा - लोभ से, भया वा = भय से, अथवा, हासा वा = हॅसी से, सय = मै स्वय, मुसावाय = असत्य, नेव वइज्जा = नही बोलूँगा, नेवऽन्नहि = न दूसरो से,

मुसं = असत्य, वायाविज्जा = बोलाऊँगा, मुसं = असत्य, वयतेऽपि - बोलते हुए, अन्ने = दूसरो को, न समणुजाणिज्जा = भला भी नही समझूँगा। जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है । भते = हे भगवन्। मै, सव्वाओ = सभी, मुसावायाओ = मृषावाद को, वेरमण = त्याग रुप, दुच्चे - दूसरे, महव्वए = महाव्रत मे, उवट्ठिओमि = उपस्थित होता हूँ।

अहावरे तच्चे भंते । महव्वए अदिण्णादाणाओ वेरमणं । सव्व भते । अदिण्णादाणं पच्चक्खामि । से गामे वा, नगरे वा, रण्णे वा, अप्पं वा, बहु वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, णेव सयं अदिण्ण गिण्हिज्जा , णेवन्नेहिं अदिण्णं गिण्हाविज्जा, अदिण्णं गिण्हंते वि अन्ने ण समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएण ण करेमि,ण कारवेमि, करंतं पि अन्नं ण समणुजाणामि । तस्स भंते । पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।तच्चे भंते । महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं ।।10।।

अन्वयार्थ – भते = हे भगवन् । अहावरे - इसके बाद, तच्चे - तीसरे, महव्वए = महाव्रत मे, अदिण्णादाणाओ - अदत्तादान से, वेरमणं - निवर्तन होता है, भंत = हे भगवन् । मै, सव्व सभी प्रकार के, अदिण्णादाणं - अदत्तादान का, पच्चक्खामि = प्रत्याख्यान करता हूँ , से = वह इस प्रकार कि, गामे - ग्राम में, वा - अथवा नगरे वा - नगर में अथवा, रण्णे वा = वन मे, अप्प वा = अल्प अथवा, बहुं वा = बहुत, अणुं - सूक्ष्म, वा = अथवा, थूल वा = स्थूल, चित्तमंतं वा = सचेतन अथवा, अचित्तमत वा = अचेतन आदि किसी भी, अदिण्णं = बिना दिए हुए पदार्थ को, सयं = मै स्वय, नेवगिण्हिज्जा = ग्रहण नहीं करुंगा, नेवऽन्नेहिं - न दूसरो से और अदिन्न = बिना दिए हुए पदार्थ को गिण्हाविज्जा - ग्रहण कराऊँगा और , गिण्हते वि = ग्रहण करते हुए, अन्ने = दूसरो को, न समणुजाणिज्जा = भला भी नही समझूँगा । जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है । भंते = हे भगवन् । मै, अदिन्नादाणाओ = अदत्तादान से, वेरमणं = निवृत्ति रुप, तच्चे = तीसरे, महव्वए = महाव्रत मे, उवट्ठिओमि = उपस्थित होता हूँ ।

अहावरे चउत्थे भंते । महव्वए मेहुणाओ वेरमण । सव्वं भंते । मेहुण

पच्चक्खामि, सेदिव्व वा माणुस वा तिरिक्खजोणिय वा, णेव सयं मेहुण सेविज्जा, णेवन्नेहि मेहुण सेवाविज्जा, मेहुणं सेवते वि अण्णे ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएण ण करेमि ण कारवेमि करत पि अण्णं ण समणुजाणामि। तस्स भते। पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि। चउत्थे भंते। महव्वए उपट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमण ॥11॥

अन्वयार्थ - भते = हे भगवन। अहावरे = इसके बाद, चउत्थे = चौथे, महव्वए - महाव्रत मे, मेहुणाओ = मैथुन से, वेरमण = निवर्तन होता है। भते = हे भगवन्। मै, सव्व = सभी प्रकार के, मेहुण = मैथुन का, पच्चक्खामि = प्रत्याख्यान रकता हूँ , से = वह इस प्रकार की, दिव्व = देव सबधी, वा = अथवा, माणुसं = मनुष्य सबधी वा = अथवा तिरिक्खजोणिय = तिर्यच सबधी, इन तीनो जातियो मे किसी के भी साथ, मेहुण = मैथुन, सयं = मै स्वय, नेवसेविज्जा = सेवन नही करूँगा, नेवऽन्नेहि = न दूसरो से, मेहुणं = मैथुन, सेवाविज्जा = सेवन कराऊँगा और मेहुण = मैथुन, सेवतेऽवि = सेवन करने वाले, अन्ने = दूसरो को, न समणुजाणिज्जा - भला भी नही समझूगा। जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है। भते = हे भगवन्। मै, सब्वाओ = सभी प्रकार के, मेहुणाओ = मैथुन से, वेरमण = निवृत्ति रुप, चउत्थे = चौथे, महव्वए - महाव्रत मे, उवट्ठिओमि = उपस्थित होता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ।

अहावरे पंचमे भते। महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं। सव्व भंते। परिग्गह पच्चक्खामि से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमत वा अचित्तमतं वा नेव सय परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, णेवन्नेहि परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गहं परिगिण्हतेवि अन्ने ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएणं ण करेमि ण कारवेमि करंतं पि अन्न ण समणुजाणामि। तस्स भते। पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पंचमे भंते। महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ॥12॥

अन्वयार्थ - भते - हे भगवन्। अहावरे - इसके बाद, पचमे - पाँचवे, महव्वए - महाव्रत मे, परिग्गहाओ - परिग्रह से, वेरमण - निवर्तन होता है। अत , भते - हे भगवन्। मै, सव्व - सभी प्रकार के, परिग्गहं - परिग्रह

पच्चक्खामि - त्यागता हूँ, से - वह इस प्रकार है : अप्पं वा - अल्प अथवा बहु वा - बहुत , अणुं वा - सूक्ष्म अथवा, थूल वा - स्थूल, चित्तमत वा - सचेतन, अचित्तमंत वा - अथवा अचेतन, परिग्गहं - परिग्रह, सय - मै स्वय, नेव परिगिण्हिज्जा - ग्रहण नही करुँगा , नेवऽन्नेहि - न दूसरो से, परिग्गह - परिग्रह को, परिगिण्हाविज्जा - ग्रहण कराऊँगा, परिग्गह - परिग्रह को, परिणिग्हतेऽवि -ग्रहण करने वाला, अन्ने- दूसरो को, न समणउजाणिज्जा - भला भी न समझूॅगा । जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है । भंते - हे भगवन् । मै सव्वाओ - सभी प्रकार के , परिग्गहाओ - परिग्रह से, वेरमणं - निवर्तन रुप, पंचमे - पॉचवे, महव्वए - महाव्रत मे, उवट्ठिओमि - उपस्थित होता हूँ ।

भावार्थ – शिष्य सभी प्रकार के परिग्रह से विरमण रुप पॉचवे महाव्रत को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है ।

अहावरे छट्ठे भंते । वए राइभोयणाओ वेरमणं । सव्वं भंते ! राइभोयण पच्चक्खामि । से असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, णेव सयं राइ भुंजिज्जा, णेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुजंते वि अन्ने ण समणुजाणेज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि, करंतंपि अन्नं ण समणुजाणाणि । तस्स भंते । पडिक्कमामि । णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । छट्ठे भंते । वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमण । इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए, उव सपजित्ता णं विहरामि ।।13।।

अन्वयार्थ – भंते - हे भगवन् । अहावरे - इसके बाद, छट्टे- छठे, वए - व्रत मे, राइभोयणाओ - रात्रि - भोजन का, वेरमणं - त्याग होता है, अतः भते - हे भगवन् । मै, सव्वं - सभी प्रकार के, राइभोयणं - रात्रि - भोजन का, पच्चक्खामि - त्याग करता हूँ । से - वह इस प्रकार है कि, असण वा - अन्नादि अथवा, पाण वा - पानी आदि अथवा, खाइमं वा - खाद्य, मेवा अथवा, साइमं,वा - स्वाद्य - लोग,इलायची आदि,सय - मै स्वयं, राइं - रात्रि मे, नेव- नही, भुंजिज्जा - खाऊँगा, नेवन्नेहि - न दूसरो को, राइ - रात्रि मे, भुंजाविज्जा - खिलाऊँगा और राइं - रात्रि मे, भुंजतेऽवि - भोजन करने वाले, अन्ने - दूसरो को, न समणुजाणिज्जा - भला भी न समझूंगा । जावज्जीवाए से वोसिरामि तक

शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है । भंते - हे भगवन् । मै, सव्वाओ - सभी प्रकार के, राइभोयणाओ - रात्रि भोजन से, वेरमणं - निवृत्ति रुप, छट्ठे - छठे, वए = व्रत मे, उवट्ठिओमि = उपस्थित होता हूँ । यहा से नए पेराग्राफ इच्चेयाइ = ये पहले कहे हुए, पच महव्वयाइं = पाच महाव्रतो को और राइभोयणवेरमण छट्ठाइ = रात्रि भोजन विरमण रुप छठे व्रत को , अत्तहियट्ठयाए = आत्म - कल्याण के लिए, उवसपज्जित्ता ण = स्वीकार कर के मै, विहरामि = सयम मे विचरता हूँ।

भावार्थ - अपनी आत्मा के कल्याण के लिए शिष्य अहिसा आदि पाच महाव्रतो और छठे रात्रि भोजन त्याग रुप व्रत का पालन करने की प्रतिज्ञा करता है ।

छः काय के जीवो की रक्षा के बिना चारित्र : धर्म का पालन नही हो सकता है । अतः छः काय के जीवो की रक्षा के विषय मे सूत्रकार कहते है -

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा सजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खाय - पावकम्मो, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्तें वा, जागरमाणे वा, पुढवि वा, भित्ति वा, सिलं वा, लेलुं वा ससरक्खं वा काय, ससरक्ख वा वत्थ, हत्थेण वा, पाएण वा, कट्ठेण वा, किलिचेण वा, अंगुलियाए वा, सिलागाए वा, सिलागहत्थेण वा, ण आलिहिज्जा, ण विलिहिज्जा, न घट्टिज्जा ण भिंदिज्जा, अन्नं ण आलिहाविज्जा, ण विलिहाविज्जा न घट्टाविज्जा, ण भिदाविज्जा, अन्नं आलिहत वा, विलिहत वा, घट्टत वा, भिदत वा, न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण ण करेमि, ण कारवेमि करंतपि अन्न ण समणुजाणाणि । तस्स भते। पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।।14।।

अन्वयार्थ - सजय = विरय-पडिहय = पच्चक्खाय पावकम्मे = सयमी, पापो से विरक्त, कर्मो की स्थिति को प्रतिहत करने वाला तथा पाप = कर्मो के वध का प्रत्याख्यान करने वाला, से = वह पूर्वोक्त महाव्रतो को धारण करने वाला, भिक्खु = साधु, वा = अथवा भिक्खुणी वा = साध्वी दिया वा = दिन मे अथवा, राओ वा = रात्रि मे, एगओ, वा = अकेला अथवा, परिसागओ वा = साधु - समूह मे, सुत्ते वा = सोते हुए, जागरमाणे वा - अथवा जागते हुए, से = इस प्रकार, पुढवि वा = पृथ्वी को अथवा भित्ति वा = दीवार को, सिल वा =

शिला को अथवा, लेलुं वा = ठेले को, ससरक्ख वा काय = सचित्त रज सहित वस्त्रो को, हत्थेण वा = हाथ से अथवा, पाएण वा = पैर से, कट्ठेण वा लकडी से अथवा, किलिचेण वा = डडे से, अगुलियाए वा = अगुलि से अथवा, सिलागाए वा = लोहे की छड से अथवा, सिलागहत्थेण वा = लोहे की छडियो के समूह से, ण आलिहिज्जा = सचित्त पृथ्वी पर लिखे नही, ण विलिहिज्जा = विशेष लिखे नही, ण घट्टिज्जा = एक स्थान से दूसरे स्थान पर डाले नही, ण भिदिज्जा = भेदन न करे, अण्णं = दूसरे से, ण आलिहाविज्जा = लिखावे नही, ण विलिहाविज्जा = औरो से विशेष लिखावे नही, ण घट्टाविज्जा = एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिरावे नही, न भिंदाविज्जा = भेदन न करावे, आलिहत वा = लिखने वाला, विलिहत वा = विशेष लिखने वाले, घट्टत वा = एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले, भिदत वा = भेदन करने वाले, अण्णं = दूसरो को, ण समणुजाणिज्जा = भला भी नही समझे शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् । मै, जावज्जीवाए = जीवन पर्यन्त, तिविह = तीन करण और, तिविहेणं = तीन योग से अर्थात् मणेण = मन से, वायाए = वचन से, काएण = काया से, ण करेमि = न करुँगा, ण कारवेमि = न कराऊँगा , करतपि = करते हुए, अण्ण = दूसरो को, ण समणुजाणामि = भला भी नही समझूँगा । भंते = हे भगवान् । मै, तस्स = उस पाप से, अर्थात सचित्त पृथ्वी जन्य पाप से पडिक्कमामि = पृथक होता हूँ, णिदामि = आत्मसाक्षी से निदा करता हूँ , गरिहामि = गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ , अप्पाणं = ऐसे पापकारी कर्म से अपनी आत्मा को, वोसिरामि = हटाता हूँ ।

भावार्थ – इस सूत्र में पृथ्वीकाय की यतना का वर्णन किया गया है । अब आगे के सूत्र मे अप्काय का यतना का वर्णन किया जाएगा ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, सजय – विरय – पडिहय – पच्चक्खाय – पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से उदंग वा, ओसं वा, हिमं वा, महिय वा, करग वा हरितणुग वा, सुध्दोदगं वा, उदउल्लं वा कायं, उदउल्ल वा वत्थ, सिसिणिध्द वा काय ससिणिध्द वा वत्थं, ण आमुसिज्जा, ण संफुसिज्जा, न आविलिज्जा,

ण पविलिज्जा, ण अक्खोडिज्जा ण पक्खोडिज्जा, ण आयाविज्जा ण पयाविज्जा, अन्नं ण आमुसाविज्जा ण सफुसाविज्जा ण आविलाविज्जा ण पविलाविज्जा ण अक्खोडाविज्जा ण पक्खोडाविज्जा, ण आयाविज्जा, ण पयाविज्जा, अण्णं आमुसंतं वा, संफुसंत वा, आवीलतं वा, पवीलत वा, अक्खोडत वा , पक्खोडंतं वा, आयावत वा, पयावत वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेण वायाए काएण ण करेमि, ण कारवेमि, करत पि अण्णं ण समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।।15।।

अन्वथार्थ : से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है, साधु अथवा साध्वी, उदग वा = जल को, ओस वा = ओस को, हिम वा = बर्फ को, महिय वा = धूअर के पानी को, करग वा = ओले के पानी को, हरितणुग वा = हरियाली पर पडे हुए जल बिंदुओ को, सुध्दोदग वा = आकाश से गिरे हुए जल को, उदउल्ल वा काय = जल से भीगे हुए शरीर को, उदउल्ल वा वत्थ = जल से भीगे हुए वस्त्र को, ससिणिध्द वा काय - कुछ - कुछ भीगे हुए शरीर को, ससिणिध्द वा वत्थ = कुछ - कुछ भीगे हुए वस्त्र को, न आमुसिज्जा = जरा भी स्पर्श न करे, न सफुसिज्जा = अधिक स्पर्श न करे, न आवीलिज्जा = एक बार न निचोडे, न पवीलिज्जा = बार बार न निचोडे, न अक्खोडिज्जा = न झटके, न पक्खोडिज्जा- बार-2 न झटके, न आयाविज्जा = न सुखावे, न पयाविज्जा = बार बार न सुखावे , अन्न = दूसरे से, न आमुसाविज्जा = जरा भी स्पर्श न करावे, न सफु साविज्जा = बार - स्पर्श न करावे, न आविलाविज्जा = न निचोडवावे, न पवीलाविज्जा = बार-2 न निचोडवावे, न अक्खोडाविज्जा - झटकावे नही, न पक्खोडाविज्जा = बार -बार झटकावे नही, न आयाविज्जा - न सुखवावे, न पयाविज्जा = बार - बार न सुखवावे तथा, आमुसत वा = जरा भी स्पर्श करने वाले, सफुसत वा = बार - बार स्पर्श करने वाले, आवीलत वा = निचोडने वाले, पवीलत वा = बार - निचोडने वाले, अक्खोडत वा = झटकाने वाले, पक्खोडतका = बार - बार झटकाने वाले, आयावत वा = सुखाने वाले, पयावत वा = बार - बार सुखाने वाले, अन्न = दूसरे को, न समणुजाणिज्जा = भला नही समझे जावज्जीवाए से वोसिरामि तक का अर्थ पूर्ववत है ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय - विरय - पडिहय- पच्चक्खाय - पावकम्मे दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से अगणिं वा, इंगालं वा, मुम्मरं वा, अच्चि वा, जालं वा, अलाय वा, सुध्दागणिं वा उक्कं वा, ण उजिज्जा, ण घट्टिज्जा, ण भिदिज्जा न उज्जालिज्जा, ण पज्जालिज्जा ण निव्वाविज्जा, अन्नं ण उजाविज्जा, ण घट्टाविज्जा, ण भिदाविज्जा, ण उज्जालाविज्जा, ण पज्जालाविज्जा, ण निव्वाविज्जा, अन्नं उंजतं वा घट्टंतं वा, भिदंतं वा, उज्जालंतं वा, पज्जालत वा, निव्वावंतं वा, ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिवहेणं मणेमण वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि, करंतं पि अण्णं ण समणुजाणाणिमि तस्स भंते ! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।।16।।

अन्वयार्थ - से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है, साधु अथवा साध्वी, अगणि वा = अग्नि को, इंगाल वा = अंगारे को, मुम्मुर वा = चिनगारी, बकरी आदि के मीगणो की अग्नि को, अच्चि वा = दीपक की शिखा की अग्नि को, जालं वा = अग्नि के साथ मिली हुई ज्वाला को, अलाय वा = जलता हुआ कडा या काष्ट की अग्नि को, सुध्दागणिं वा = काष्ठादि रहित शुध्द अग्नि को, उक्कं वा = उल्कापात रुप अग्नि को, न उजिज्जा = ईधन डालकर न बढावे, न घट्टिज्जा = संघट्टा न करें, न भिदिज्जा = छिन्न - भिन्न न करे, न उज्जालिज्जा = जरा भी न जलावे, न पज्जालिज्जा = प्रज्ज्वलित न करे, न निव्वाविज्जा = न बुझावे, अन्नं = दूसरे से, न उंजाविज्जा = ईधन डालकर न बढवावे, न घट्टाविज्जा = संघट्टा न करवावे, न भिदाविज्जा = छिन्न - भिन्न न करवावे, न उज्जालाविज्जा = न जलवावे, न पज्जालाविज्जा = प्रज्वलित न करवावे,न निव्बाविज्जा = न बुझवावे तथा, उंजंत वा = ईधन डालकर बढाने वाले, घट्टंतं वा = संघट्टा करने वाले, भिंदतं वा = छिन्न - भिन्न करने वाले, उज्जालंतं वा = जलाने वाले, पज्जालंतं वा = प्रज्वलित करने वाले, अन्नं = दूसरे को, न समणुजाणिज्जा = भला भी न समझे । जावज्जीवाए से वोसिरमि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत है । अब वायुकाय की यतना के विषय में वर्णन किया गया है -

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय-विरय - पडिहय - पच्चक्खाय- पावकम्मो, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा ,

जागरमाणे वा, से सिएण वा, विहुयणेण वा, तालियटेण वा, पत्तेण वा , पत्तभगेण वा, साहाए वा, साहाभंगेण वा, पिहुणेण वा, पिहुणहत्थेण वा , चेलेण वा, चेलकन्नेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, अप्पणो वा काय, बाहिरं वावि पोग्गल, ण फुमिज्जा, ण वीएज्जा, अन्न ण फुमाविज्जा, ण वीआविज्जा, अण्ण फुमतं वा, वीयत वा ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि, ण कारवेमि, करतपि अण्णं ण समणुजाणाणि, तस्स भते ! पडिक्कमामि णिदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिहामि ।।17।।

अन्वयार्थ – से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है । साधु अथवा साध्वी, सिएण वा = चामर से, विहुयणेण वा = पङ्खे से, तालियटेण वा - ताड वृक्ष के पखे से, पत्तेण वा = पत्तो से, पत्तभगेण वा = पत्तो के टुकडो से साहाए वा - शाखा से, साहाभंगेण वा = शाखा से टुकडो से, पिहुणेण वा - मोर के पखों से, पिहुणहत्थेण वा = मोरपिच्छी से, चेलेण वा = वस्त्र से, चेलकन्नेण वा = कपडे के पल्ले से , हत्थेण वा = हाथ से, मुहेण वा = मुख से, अप्पणो = अपने, काय - शरीर को, वा = अथवा, बाहिर वा वि = बाहरी पुद्‌गलो को , न फुमिज्जा = फूॅक न मारे, न वीएज्जा = पखे आदि से हवा न करे, अन्न = दूसरे से, न फुमाविज्जा = फूॅक न लगवावे, न वीआविज्जा = पखे आदि से हवा न करावे, फुमतं वा = फूॅक देने वाले, वीअत वा = हवा करने वाले, अन्न = दूसरे को, न समणुजाणिज्जा = भला भी न समझे । जीवज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है। अब वनस्पतिकाय की यतना का वर्णन किया जाता है ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय – विरय – पडिहय – पच्चक्खाय – पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से बीएसु वा, बीयपइट्ठेसु वा,रुढेसु वा, रुढपइट्ठेसु वा, जाएसु वा , जायपइट्ठेसु वा, हरिएसु वा, हरियइट्ठेसु वा, छिन्नेसु वा, छिन्नपइट्ठेसु वा, सचित्तेसु वा, सचित्त कोलपडिनिस्सिंएसु वा,ण गच्छेज्जा, भ चिट्ठेज्जा, ण निसीइज्जा, ण तुअट्टिज्जा, अन्न ण गच्छाविज्जा, ण चिट्ठाविज्जा, ण निसीयाविज्जा, ण तुअट्टाविज्जा, अन्न गच्छतं वा, चिट्ठंत वा निसीअतं वा , तुअट्टत वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएण न करेमि न कारवेमि, करंतपि अण्ण न समणुजाणामि। तस्स भंते !

पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।।18।।

अन्वयार्थ – से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है, साधु अथवा साध्वी, वीएसु वा = बीजो पर, वीयपइट्ठेसु वा = बीजो पर रखे हुए शयन आसनादि पर, रुढेसु वा = बीज उग कर जो अकुरित हुए हो, उन पर , रुढपइट्ठेसु वा = अंकुरित वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, जाएसु वा = पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर जायपइट्ठेसु वा = पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर, हरिएसु वा = हरी दूब आदि पर, हरियिइट्ठेसु वा = हरी दूब आदि पर रखे हुए आसनादि पर, छिन्नपइट्ठेसु वा = वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओ पर रखे हुए आसानादि पर, सचित्तेसु वा = ऐसी वनस्पति जिस पर अंडा आदि हो, सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा = घुन लगे हुए काठ पर, न गच्छेज्जा = न चले, न चिट्ठेज्जा = खडा न होवे, न निसीइज्जा = न बैठे, न तु अट्टिज्जा = न सोवे, अन्नं = दूसरे को, न गच्छाविज्जा = न चलावे, न चिट्ठाविज्जा = न खड़ा करे, न निसीआविज्जा = न बैठावे , न तुअट्टाविज्जा = न सुलावे, गच्छंतं वा = चलते हुए , चिट्ठंतं वा = खडे हुए , निसीअतं वा = बैठते हुए , तु अट्टंतं वा = सोते हुए, अन्नं = दूसरे को, न समणुजाणिज्जा = भला भी न जाने । जावज्जीवाए से वोसिरामि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत । आगे त्रसकाय की यतना का वर्णन किया जाता है -

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय – विरय – पडिहय – पच्चक्खाय – पावकम्मो, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से कीडं वा, पयंगं वा, कुंथु वा, पिवीलियं वा, हत्थंसि वा, पायंसि वा, बाहुंसि वा, उरुंसि वा, उदरंसि वा, सीसंसि वा, वत्थंसि वा, पडिग्गहंसि वा, कंबलंसि वा, पायपुच्छणंसि वा, रयहरणंसि वा, गुच्छगंसि वा, उडगंसि वा, दंडगंसि वा, पीढगंसि वा,फलगंसि वा, सेज्जंसि वा, संथारगंसि वा , अण्णयरंसि वा, तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहियपमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणिज्जा, नो णं संघाय मावज्जिजज्जा ।।19।।

अन्वयार्थ – से भिक्खु वा से जागरमाणे तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत है, साधु अथवा साध्वी, कीड वा = कीडे - मकोडे को, पयंगं = वा - पतगे को,

कुथु = वा कुथुवा को, [illegible]

= पॉव पर, बाहुसिवा = भुजा पर, [illegible]

सीससि वा = सिर पर, [illegible]

कबलसि वा = कम्बल पर, [illegible]

रयहरणसि वा = रजोहरण पर, [illegible]

वस्त्र पर, उडगसि वा = स्थण्डिल पात्र पर, [illegible]

= चौकी पर, फलगसि वा = पट्टे पर, [illegible]

सथारे पर वा = अथवा, तहप्पगारे - इसी प्रकार के, [illegible]

उवगरणजाए = उपकरण पर पडे हुए कीडे आदि जीव को, तओ = उस स्थान से

अर्थात हाथ- पैर आदि पर से, संजयामेव = यतना पूर्वक, पडिलेहिय = पडिलेहिय

= बार - बार भली प्रकार से प्रतिलेखना करके, पमज्जिय पमज्जिय = बार - बार

सम्यक प्रकार से पूँज कर, एगत = एकान्त स्थान में, अवणिज्जा = रख दे, किन्तु

उन जीवो को, नो ण संघायनावज्जेज्जा = इस प्रकार इकट्ठा करके न रखे कि

जिससे उन्हे पीडा हो।

अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥1॥
अजयं चिट्ठमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावय कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥2॥
अजयं आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बधइ पावय कम्मं, तं से होइ कडुय फलं ॥3॥
अजयं सयमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुय फलं ॥4॥
अजयं भुंजमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुय फल ॥5॥
अजयं भासमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बधइ पावय कम्मं, त से होइ कडुय फलं ॥6॥

अन्वयार्थ - अजय = अयतना पूर्वक, चरमाणो - चलता हुआ, [illegible] खडा होता हुआ, आसमणो = बैठता हुआ, सयमाणो = सोता हुआ, [illegible] भोजन करता हुआ और, भासमाओ = वोलता हुआ [illegible]

स्थावर जीवो की, हिसइ = हिसा करता है । अ = जिससे, पावयं = पाप, कम्मं = कर्म का, बंधइ = बंध होता है । तं = वह पाप कर्म, से - उस प्राणी के लिए कडुय = कटुक, फल = फलदायी, होइ = होता है ।।1।।

भावार्थ – इन छः गाथाओं में अयतनापूर्वक चलने, खडा रहने, बैठने, सोने आदि का कटु फल बतलाया गया है, जो स्वयं उसी आत्मा को भोगना पडता है ।

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए ।
कहं भुंजंतो भासंतो, पाव कम्मं ण बंधइ ।।7।।

अन्वयार्थ – अब शिष्य प्रश्न करता है = हे भगवन । यदि ऐसा है, तो मुनि कहं कैसे चरे-चले, कह = कैसे, चिट्ठे- खड़ा रहे, कहं - कैसे, आसे = बैठे, कह = कैसे, सए = सोवे, कहं = कैसे भुंजतो = भोजन करता हुआ और कहं = कैसे, भासतो = बोलता हुआ, पावं = पाप, कम्मं = कर्म, न = नही, बंधइ = बाधता है ।।7।।

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं ण बंधइ ।।8।।

अन्वयार्थ – गुरु उत्तर देते है कि जयं = यतनापुर्वक, चरे = चले, जय = यतनापूर्वक, चिट्ठे = खडा रहे, जयं = यतनापूर्वक, आसे = बैठे, जय वयतनापुर्वक, सए-सोवे, जयं = यतनापुर्वक, भुंजतो = भोजन करता हुआ और, जय = यतनापुर्वक, भासंतो = बोलता हुआ, पावं = पाप, कम्मं = कर्म, न = नही, बधइ = बांधता है ।

सव्वभूयप्पभूयस्स संमं भूयाइं पासओ ।
पिहियासवस्स दंतस्स, पावकम्मं ण बंधइ ।।9।।

अन्वयार्थ – सव्वभूयप्पभूयस्स = संसार के समस्त प्राणियो को अपनी आत्मा के समान समझने वाले, संमं = सम्यक् प्रकार से, भूयाइ = सभी जीवो को, पासओ = देखने वाले, पिहियासवस्स = आश्रवों को रोकने वाले और, दंतस्स = इन्द्रियों को दमन करने वाले के, पावं = पाप, कम्मं = कर्म, न = नही, बंधइ = बँधता है ।।9।।

पढमं णाण तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए ।
अण्णाणी किं काही, कि वा णाही सेयपावगं ।।10।।

अन्वयार्थ – पढमं = पहले, नाणं = ज्ञान है, तओ = उसके पश्चात, दया = दया है, एव = इस प्रकार, सव्व सजए = सभी साधु, चिट्ठइ = आचरण करते है । अन्नाणी = सम्यक ज्ञान से रहित अज्ञानी पुरुष, कि = क्या, काही = कर सकता है और, किवा = कैसे, सेयपावगं = पुण्य और पाप को, नाही = जान सकता है ।

भावार्थ – सबसे पहला स्थान ज्ञान का है और उसके बाद दया अर्थात क्रिया है। ज्ञानपूर्वक क्रिया से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । अज्ञानी, जिसे साध्य-साधन का भी ज्ञान नही है, वह क्या कर सकता है ? वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है ?

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ।।11।।

अन्वयार्थ – सोच्चा = सुनकर ही, कल्लाणं - कल्लाण को जाणइ - जानता है, सोच्चा = सुनकर ही, पावग - पाप को, जाणइ = जानता है और, उभयं पि = दोनो को भी, सोच्चा = सुनकर ही, जाणइ = जानता है, अतः जं = जो,सेय = आत्मा के लिए हितकारी हो, त = उसका, समायरे = आचरण करे ।।11।।

भावार्थ - हिताहित का ज्ञान सुनकर ही होता है । इसलिए इनमे से जो श्रेष्ठ हो, उसी मे प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

जो जीवे वि ण याणेइ, अजीवे वि ण याणेइ ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो णाहीइ संजमं ।।12।।

अन्वयार्थ – जो = जो, जीवे वि = जीव के स्वरुप को, न = नही याणेइ = जानता और, अजीवे वि = अजीव के स्वरुप को भी, न = नही, याणेइ = जानता । जीवाजीवे = इस प्रकार जीवाजीव के स्वरुप को, अयाणतो = नही जानने वाला, सो = वह साधक, सजम = सयम को, कह = कैसे, नाहीइ = जानेगा अर्थात नही जान सकता ।।12।।

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणेइ ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु णाहीइ संजमं ।।13।।

अन्वयार्थ - जो = जो जीवे वि = जीव का स्वरुप वियाणेइ = जानता है तथा, अजीवे वि = अजीव का स्वरुप भी, वियाणेइ = जानता है । इस प्रकार, जीवाजीवे = जीव और अजीव के स्वरुप को, वियाणंतो = जानने वाला, सो = वह साधक, हु = निश्चय ही, सजम = सयम के स्वरुप को, नाहीइ = जान सकेगा।

जया जीवमजीवे य, दो वि एए वियाणेइ ।
तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ।।14।।

अन्वयार्थ - जया = जब आत्मा, जीवमजीवे = जीव और अजीव , ए ए = इन दोनो को, वियाणइ = जान लेता है, तया = तब, सव्व जीवाण = सभी जीवो की, बहुविहं = बहुत भेदों वाली, गइं = नरक, तिर्यच आदि नानाविध गति को भी, जाणइ = जान लेता है ।। 14।।

भावार्थ - इस गाथा मे तथा आगे की गाथाओं में ज्ञान प्राप्ति से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक का क्रम बतलाया गया है ।

जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ।
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ।।15।।

अन्वयार्थ - जया = जब आत्मा, सव्वजीवाण = सभी जीवो की, बहुविह - बहुत भेदों वाली, गइ = नरक तिर्यच आदि नानाविध गति को, जाणइ = जान लेता है, तया = तब, पुण्ण = पुण्य, च = और पाव = पाप को, च = तथा, बध = बन्ध, च = और, मुक्ख = मोक्ष को भी, जाणइ = जान लेता है ।।15।।

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ।
तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।।15।।

अन्वयार्थ - जया = जब, पुण्ण = पुण्य, च = और, पाव = पाप को, च =

तथा, बध = बन्ध, च = और, मुक्ख = मोक्ष को भी, जाणइ = जान लेता है, तया = तब, जे दिव्वे = जो देव, य = ओर, जे माणुसे = मनुष्य सबधी, भोए = काम भोग है, उनकी, निव्विदए = असारता को समझ कर उन्हे छोड देता है ||16||

जया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।

तया चयइ सजोग, सब्भितरबाहिर ||17||

अन्वयार्थ – जया = जब, जे दिव्वे = जो देव, य = और, जे माणुसे - मनुष्य सबधी, भोए = काम = भोगो की, निव्विदए = असारता को समझ कर उन्हे छोड देता है, तया = तब, सब्भितरबाहिर = राग - द्वेष कषाय रुपआभ्यतर और माता-पिता तथा सम्पत्ति रुप बाह्य, सजोग = सयोग को, चयइ = छोड देता है।

जया चयइ सजोगं, सब्भिंतरबाहिरं ।

तया मुण्डे भवित्ता ण, पव्वइए अणगारिय ||18||

अन्वयार्थ – जया - जब, सब्भितरबाहिर- आभ्यन्तर और बाह्य, सजोग - सयोग को, चयइ - छोड देता है, तया- तह तब, मुण्डे - द्रव्य और भाव से मुण्डित, भवित्ताण - होकर, अणगारिय - अनगार वृत्ति को, पव्वइए - ग्रहण करता है ||18||

जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारिय ।

तया संवरमुक्किटंठ, धम्मं फासे अणुत्तर ||19||

अन्वयार्थ – जया = जब, मुण्डे = द्रव्य और भाव से मुण्डित, भवित्ताण = होकर, अणगारिय अनगार वृत्ति, पव्वइए = ग्रहण करता है, तया = तब, उक्किट्ठ = उत्कृष्ट और, अणुत्तर = सर्वश्रेष्ठ, सवर धम्मं = सवर धर्म को, फासे = प्राप्त करता है ||19||

जया सवरमुक्किट्ठ, धम्म फासे अणुत्तर ।

तया धुणइ कम्मरय, अबोहिकलुस कड ||20||

अन्वयार्थ – जया = जब, उक्किट्ठ = उत्कृष्ट और, अणुत्तर = प्रधान, सवरं धम्म = सवर धर्म को, फासे = प्राप्त करता है । तया तब, अबोहिकलुस आत्मा के मिथ्यात्व से उपर्जित किए हुए, कम्मरय = कर्म रुपी रज को,

झाड देता है ||20||

जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कड।
तया सव्वत्तगं णाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ||21||

अन्वयार्थ - जया = जब, अबोहिकलुस कड = आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम द्वार उपार्जित किए हुए, कम्मरय = कर्म रुपी रज को, धुणइ = झाड देता है, तया = तब, सव्वत्तग - सभी पदार्थो को जानने वाले, नाण = केवल ज्ञान, च = और दसण = केवल - दर्शन को, अभिगच्छइ = प्राप्त कर लेता है ||21||

जया सव्वत्तगं णाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली ||22||

अन्वयार्थ - जया = जब, सव्वत्तग = सभी पदार्थो को जानने वाले, नाण = केवल ज्ञान, च = और, दंसणं = केवल दर्शन को, अभिगच्छइ = प्राप्त कर लेता है, तया = तब, जिणो = राग - द्वेष का विजेता, केवली- केवल ज्ञानी होकर, लोग = लोक, च = और अलोगं = अलोक के स्वरुप को भी, जाणइ = जान लेता है || 22||

जया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसि पडिवज्जइ ||23||

अन्वयार्थ - जया = जब, जिणो = राग-द्वेष का विजेता, केवली = केवल ज्ञानी हो कर, लोग = लोक, च = और, अलोगं - अलोक को, जाणइ = जान लेता है, तया = तब आत्मा, जोगे = मन, वचन और काया के योगो का, निरुंभित्ता = निरोध कर के, सेलेसि = शैलेशीकरण को, पडिवज्जइ = प्राप्त करता है ||23||

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिध्दिं गच्छइ णीरओ ||24||

अन्वयार्थ - जया = जब, जोगे = मन, वचन और काया के योगो का, निरुभित्ता = निरोध कर के, सेलेसि = शैलेशीकरण, पडिवज्जइ = प्राप्त करता है, तया = तब **आत्मा**, नीरओ = कर्म रुपी रज से रहित होकर और, कम्म= समस्त कर्मो का, खवित्ताण = क्षय करके सिध्दि = मोक्ष मे गच्छइ = चला जाता

है ||24||

जया कम्मं खवित्ताण, सिध्दिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिध्दो हवई सासओ ||25||

अन्वायार्थ - जया = जब नीरओ = कर्म रुपी रज से रहित होकर और कम्मं = समस्त कर्मो का, खमित्ताण = क्षय करके, सिध्दिं = मोक्ष, गच्छइ = चला जाता है, तया = तब आत्मा, लोगमत्थयत्थो = लोक के अग्रभार पर स्थित, सासओ = शाश्वत, सिध्दो = सिध्द, हवइ = हो जाता है ||25||

सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स णिगाम साइस्स।
उच्छोलणा पहोअस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ||26||

अन्वयार्थ - सुहसायगस्स = सुख मे आसक्त रहने वाले, सायाउलगस्स = सुख के लिए व्याकुल रहने वाले, निगामसाइस्स = अत्यत सोने वाले, उच्छोलणा पहोयस्ण = शरीर की विभूषा के लिए हाथ - पाँव आदि धोने वाले, तारिसगस्स समणस्स = साधु को, सुगई = सुगति मिलना, दुल्लहा = दुर्लभ है ||26||

तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खतिसंजमरयस्स ।
परीसहे जिणंतस्स, सुल्लहा सुगई तारिसगस्स ||27||

अन्वयार्थ - तवोगुणपहाणस्स = तप रुपी गुणां से प्रधान, उज्जुमइ = सरल बुध्दि वाले, खतिसजमरयस्स = क्षमा और संयम मॅं रत, परीसहे = परीषहों को, जिणतस्स = जीतने वाले, तारिसगस्स = साधु को, सुगई = सुगति , सुल्लहा = [illegible] सुलभ है ||27||

भावार्थ - तप सयम मे अनुरक्त, सरल प्रकृति वाले तथा दारुण परीषहों को समभावपूर्वक सहन करने वाले साधक के लिए सुगति प्राप्त होना सरल है

सयम स्वीकार करते है, तो ते = वे, खिप्प = शीघ्र, अमरभवणाइ = स्वर्ग अथवा मोक्ष को, गच्छति = प्राप्त हो जाते है ।।28।।**भावार्थ** – पूर्ण वैराग्य के साथ थोडे समय तक पालन किया हुआ संयम भी सुगति देने वाला होता है ।

इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मदिट्ठी सया जए।
दुल्लहं लहित्तु सामण्णं, कम्मुणा ण विराहिज्जासि । त्ति बेमि।

अन्वयार्थ – सया = सदा, जए = यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाला, सम्मदिट्ठी–सम्यग्दृष्टि, दुल्लहं = दुर्लभ, सामण्णं = साधुपने की, लहित्तु - प्राप्त करके, इच्चेय = पूर्वोक्त स्वरुप वाले, छज्जीवणिय = छ· जीवनिकाय की, कम्मुणा = मन, वचना, काया से, ण विराहिज्जासि = विराधना न करे ।।29।। तिबेमि = श्री सुधर्मा स्वामी, जम्बूस्वामी से कहते है कि जैसा मैने भगवान् महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही कहा है ।

।। छज्जीवणिया नामक चौथा अध्ययन समाप्त ।।

अर्थ सहयोगी

| जय गुरु नाना || || जय गुरु राम ||

आचार्य श्री १००८ श्री रामलालजी जी म. सा. द्वारा घोषित
ज्ञान चेतना वर्ष - २००५-०६ पर हार्दिक शुभकामनाएं

रामेशाचार्य महान है तव संयम गुण खान ।
ऐसे सुज्ञानी आचार्य श्री को मेरा अनेक प्रणाम ।।

राम गुरु का है फरमान,
हर श्रावक बन जाये क्रियावान ।

शुभेच्छुक

सुन्दरलाल विनोदकुमार दुगड़

63, पार्क स्ट्रीट, पोस्ट - कोलकाता
(पश्चिम बंगाल)

Tel : (033) - 22299840 / 22160031
(O) (033) - 22483350 / 51466941
(Mo.)(033) - 9830032021